अनातोली कुज़्नेत्सोव



दास्तान चलती है

नौजवान की डायरी से

दास्तान चलती है

अनातोली कुज़्नेत्सोव

नौजवान की डायरी से

परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ

अनुवाद : गोपीकृष्ण गोपेश

ISBN: 81-87425-83-0

मूल्य : रु. 70.00

प्रथम संस्करण : जनवरी 2006

परिकल्पना प्रकाशन
द्वारा, जनचेतना, डी-68, निरालानगर,
लखनऊ—226 020 द्वारा प्रकाशित

क्रिएटिव प्रिन्टर्स 628/एस-8, शक्तिनगर, लखनऊ द्वारा मुद्रित

आवरण : रामबाबू

DASTAAN CHALTI HAI *by Anatoly Kuznetsov*

अनुक्रम

हिस्सा पहला

हिस्सा दूसरा

हिस्सा तीसरा

हिस्सा पहला

गाड़ी में–

तो, मैं निकल पड़ा हूँ। मेरी जेब में एक क़ागज़ है। यह क़ागज़ मेरी तरह-तरह की जानकारियों का सबूत है, और उसके हिसाब से मुझे सयाना होना और माना जाना चाहिए। पर, अभी कल की ही तो बात है कि मैं स्कूल में पढ़ रहा था, और महज़ एक लड़का था—क्या मजाक है!

मैंने स्कूल की पढ़ाई अभी-अभी खत्म की है, पर ऐसी परेशानी मैंने पहले कभी नहीं जानी—इससे अधिक असहाय और मज़बूर मैं जीवन में कभी नहीं हुआ। मैं क्या हूँ, जैसे कोई कुत्ते का पिल्ला है, जो कहीं भटक गया है और इधर से उधर मारा-मारा फिर रहा है।

इस बात की चर्चा मैं किसी से कभी नहीं करूँगा, पर अपनी डायरी में तो लिख ही लूँगा, और लिख लेनी भी चाहिए, क्योंकि मुसीबत हर ओर से मुँह फैला रही है, और मेरा मन है कि सहम रहा है। दस साल से हम बराबर सुनते रहे हैं कि सारे रास्ते हमारे लिए खुले हुए हैं, लेकिन इस समय मुझे ऐसा लग रहा है, जैसे कि सारे रास्ते मेरे लिए बन्द हैं।

तो, फिर हमें क्यों बतलाया गया कि जीवन फूलों की सेज है, और हमें क्यों ढाला गया उस तरह के साँचे में! हमने बराबर सोचा-समझा कि जवानों के लिए तमाम रास्ते खुले हुए हैं, और होते-होते हम इस भावना के आदी हो गये। पर, मैं सत्तरह साल का हुआ तो सहसा ही मैंने कुछ और ही अनुभव किया। मुझे लगा कि मेरे सामने रास्ता सिर्फ़ एक है, और वह है कारखाने का, जीतोड़ मेहनत और तेल से चिकटे पेशबन्दों का।

हुआ कुछ ऐसा कि जर्मन भाषा और ट्रिगनॉमेट्री से मुझे नफ़रत हो गई। अगर मैं थोड़ी-बहुत कोशिश करता, उधर ध्यान देता, रट-रटा लेता ओर इम्तहान में नक़ल करने के लिए कुछ नोट-वोट बना लेता तो कुछ न कुछ बात बन जाती, परन्तु यह सब मैंने किया नहीं। इतिहास के मामले में किस्मत उसे ज़वाब दे गयी। नतीज़ा यह हुआ कि तीन विषयों में थर्ड क्लास मिला, और साथ ही प्रेम की दावत भी कि आइए, अछूती ज़मीनों में काम कीजिए—न जी चाहे तो गिरोह में शामिल हो जाइए और जूतों में पॉलिश मारिए! बेवक़ूफ़ कहीं के, बुद्धि मारी गयी है तुम्हारी! मतलब क्या है, पदक तुम्हारे पास है नहीं और इन्स्टीट्यूट में दाखिल होने के सपने देख रहे हो? खैरियत

इसी में है कि जहाँ हो, चुपचाप वहीं बने रहो!

कैसा अज़ीब-अज़ीब सा लग रहा है मुझे! आख़िर मेरा होगा क्या? हालत यह है जैसे कि चारों ओर अँधेराघुप है, ताबड़तोड़ पानी बरस रहा है ओर कहीं एक खिड़की भी ऐसी नज़र नहीं आ रही जहाँ उजाला हो। और, मैं हूँ कि ऐसे में मैदान के बीचोबीच खड़ा हूँ। कोई नहीं है मेरे आगे-पीछे, मेरी बात पूछने वाला। मदद, इमदाद, सहायता, सबके नाम पर है मेरी जेब में एक क़ागज़—एक सार्टिफ़िकेट, और बस! और, मैं जीवन में प्रवेश कर रहा हूँ! आख़िर, मैं अपना करूँ क्या? सचमुच सवाल है कि मैं करूँ क्या?

वीक्तोर ने पोलीटेक्नीकल इंस्टीट्यूट में नाम लिखाने के लिए अर्जी दी है। पता नहीं, वह सपने क्या बुन रहा है! लेकिन, इतना ज़रूर है कि दिन-दिन भर ट्रिगनॉमेट्री घोटता रहता है। मैं सोचता हूँ कि उसे असलियत समझनी चाहिए। रत्ती भर भी तो आशा नहीं है। आख़िर उसे आता-जाता कितना है! पर, यूना की बात दूसरी है। मैं सोचता हूँ कि उसका दाखिला ज़रूर हो जायेगा। और, चूँकि मैं यह बात जानता हूँ इसलिए मैं यह भी जानता हूँ कि आगे से उसका रास्ता अलग होगा, और मेरा रास्ता अलग!

हर रोज़ एक घण्टा कम—

गाड़ी के इस कम्पार्टमेण्ट में सोने की व्यवस्था आम है, और हमारे अपने डिब्बे के मुसाफ़िरों की गिनती छः। हालत वैसे बहुत बुरी नहीं है। दूसरे डिब्बों में तो सात-सात, यहाँ तक कि आठ-आठ मुसाफ़िर तक हैं। हम पूर्व की ओर बढ़ रहे हैं। जा रहे हैं सूरज से मिलने, और हर चौबीस घण्टे में एक घण्टा अपने आप घटता चला जाता है। उसपर मजा यह कि पता नहीं चलता।

मास्को समय पूरी की पूरी लाइन में माना जाता है, पर मास्को से आने वाले लोग समय के इस सवाल को लेकर खासा परेशान होते हैं, और कुछ समझ नही पाते—

"आप तो सोने लगे? क्या बज रहा है?"

"बारह!"

"सचमुच! पर किस घड़ी से?"

"स्थानीय घड़ी से।"

"ओह, स्थानीय समय है यह। हमारा तो यह खाने का वक़्त है। हम तो अब भी मास्को का ही साथ दिये जा रहे हैं..."

हमारे कण्डक्टर का नाम चाचा कोस्त्या है। सिर के बाल लाल हैं। आदमी बड़बड़िया और शैतान है। दम लेना तो जैसे जानता ही नहीं। हर वक़्त इधर-उधर भाग-दौड़ करता, लोगों को डाँटता-फटकारता, और हर जिस-तिस के साथ पीता-पिलाता रहता है। बदरंग, चंचल आँखें बराबर नाचती रहती हैं, जैसे कि हर बात का भेद ले

लेना चाहती हों। पास की तमाम चीज़ों में उसे सबसे ज़्यादा घमण्ड है अपनी बड़ी पीतल की घड़ी पर। घड़ी क्या है, एलार्मवाली क्लॉक हो जैसे। टिक-टिक ऐसे करती है जैसे कि निहाइयों पर ताँबे की हथौड़ियों पर हथौड़ियाँ पड़ रही हों। चाचा कोस्त्या इस घड़ी के सामने सभी घड़ियों को हेच समझता है और कोई इस 'मशीन' की आवाज़ सुनने आये तो इन्कार कभी नहीं करता।

"तुम इसे घड़ी कहते हो, घड़ी है यह? तुम मुझे मुफ़्त दो तो मैं न लूँ—अब ज़रा मेरी घड़ी की आवाज़ सुनो... नौ नग हैं इसमें... क्रोनोमीटर है!"

हम सब आपनी घड़ियाँ इसी क्रोनोमीटर से मिलाते हैं।

चाचा कोस्त्या समय सिर्फ़ वही मानता है जो सारी लाइन में माना जाता है। वैसे उसने यह स्वीकार किया है कि व्लदिवोस्तोक पहुँचने पर वह अपनी घड़ी सात घण्टे आगे कर लेता है और अपने आराम के दिन आम लोगों की तरह बिताता है, यानी वहाँ वह वहाँ के समय के हिसाब से वक़्त गुजारता है, और अपनी वर्दी तक उठाकर एक किनारे रख देता है। एक बार सिद्धान्त-रूप से उसने घर पर भी 'स्टैण्डर्ड' समय से रहने की कोशिश की। पर, बात बड़ी भद्दी लगी, क्योंकि जब उसने सोने की तैयारी की तो दूसरे लोग सो-सोकर उठने लगे। दूसरे यह कि मास्को की घड़ी में दिन के चार बजे तो व्लदिवोस्तोक के तमाम के तमाम शराबखाने बन्द हो गये।

पर, प्रकृति के नियमों के साथ समझौता करने का वैसे कोई खास महत्व नहीं, क्योंकि चाचा कोस्त्या जब घर जाता है तो बहुत थोड़े समय के लिए जाता है। जाने पर बीबी को तनख्वाह का लिफ़ाफ़ा थमाता है, स्कूल में कम नम्बर पाने के लिए लड़के के ढंग से कान खींचता है, दो-चार दिन ठहरता है, और फिर दो हफ़्तों के लिए चल खड़ा होता है। यानी, फिर अपनी घड़ी सात घण्टे पीछे कर लेता है, और फिर सफ़र करने लगता है पचास मील फ़ी घण्टे की रफ़्तार से।

मेरे डिब्बे के पाँच के पाँचों साथी मुझसे अलग हैं, यानी भरती के लोग हैं। मैं इस मानी में अभी बिल्कुल कोरा हूँ, और दुनियादारी का तो नाम तक नहीं जानता। कौन कहेगा कि संगठित श्रम-भरती केन्द्रों का नाम मैंने नहीं सुना। मैंने तो उनके दीवारिया इश्तहार तक देखे पर, मुझे तो गुमान तक न हुआ कि मेरा भी उनसे कुछ अला-भला हो सकता है; यानी मेरे तो दिमाग़ में यह बात तक न आयी कि अपने पैसों से रेल-टिकिट खरीदने और बिल्कुल अनजानी दुनिया में कदम बढ़ाने की भला क्या ज़रूरत! हर शहर में ऐसे एजेण्ट हैं जो तीन साल के कण्ट्रैक्ट पर दस्तखत करवाते हैं, पेशगी देते हैं, रेल का टिकिट कटाते हैं और नकदी ऊपर से देते हैं कि इतने हर दिन के हिसाब से यह रहा आपका सफ़र का भत्ता। इसके अलावा तरुण-कम्युनिस्ट-लीग की क्षेत्रीय कमेटियाँ भी हैं। यह कमेटियाँ अछूती ज़मीनों के फ़ार्मों और साइबेरियाई निमार्ण-स्थलों पर जाकर काम करने के लिए लोगों की भरती करती हैं।

व्लदिवोस्तोक जाने वाली हमारी इस गाड़ी में इस तरह की भरती के एक सौ

लड़के-लड़कियाँ सफ़र कर रहे हैं। एक सिर्फ़ मैं ही ऐसा हूँ जिसने अपना टिकिट आप खरीदा है। वैसे मुझे एक फ़ायदा है और वह फ़ायदा काफ़ी बड़ा है। मैं किसी अण्ट्रैक्ट-कण्ट्रैक्ट से बँधा नहीं, यानी जिस दिन फ़कीर की मौज आये उस दिन झोपड़ा फूँक सकता है।

इर्कूत्स्क पहुँचने में पाँच दिन लगते हैं। गाड़ी के डिब्बे बड़े आरामदेह हैं। उनमें शीशे लगे हैं, और 'ज़रूरी हवाकश' भी हैं। मैंने चाचा कोस्त्या से उनकी बात चलाई। ज़वाबमिला—"तुम चाहो या न चाहो, यह हवाकश हैं कि हवा देंगे और तुम हो कि तुम्हें हवा खानी पड़ेगी।" सब कुछ है, परन्तु इसपर भी इस सकरे पिंजरे में पाँच दिन तक बन्द रहना और ऊँघते चले जाना जितना खलता है, उतना ही मुश्किल लगता है। बड़ी घुटन होती है और हवा होने पर भी हवा की कमी पल-पल खटकती है। यह तो पहले ही लिख चुका हूँ कि हमारा कम्पार्टमेण्ट 'आम' है, और इन रेलवे लाइनों पर 'खुश' कहलाता है। हर स्टेशन पर किसान औरतें इसपर टूट सी पड़ती हैं। इन औरतों के साथ भारी-भरकम बण्डल होते हैं और पलटन की पलटन बच्चे। यह होती हैं, नयी बस्तियों में बसने वाली, बाज़ार करने वाली, औरजाने कौन-कौन! इनकी मंजिलें लम्बी नहीं होतीं इसलिए डिब्बे में मुसाफ़िरों की आवा-जाही बराबर लगी रहती है। गलियारे में साज-सामान का पहाड़ का पहाड़ अड़ा रहता है। इस तरह ऐसा शोर-शराबा और धक्का-धुक्की होती है कि चाचा कोस्त्या जैसे कस-बल और तेज गले वाला आदमी न हो तो काम ही न चले, मुसीबत आई रहे। कुछ लोग उतरते हैं तो कुछ दूसरों को भींचे चले आते हैं... इसके पास टिकिट नहीं है... इसने चढ़ा ज़्यादा ली है, पीना शुरू किया है तो पीता चला गया है... किसी की 'अच्छी-खासी' बीवी ने मुँह-हाथ धोने वाला कमरा अन्दर से बन्द कर बच्चे के गन्तरे धोने शुरू कर दिये हैं, और बाहर खड़े क़तार की क़तार लोगों की किटकिटाहट और लानत-मलामत की उसे कोई परवाह नहीं है...

यहाँ दिल बहलाव का मात्र साधन है तेल से चिकटे, कुत्ते के कानों वाले ताश के पत्तों की गड्डी। ताश ल्योश्का का है, और हम घण्टों बैठे 'दुराका'* खेलते रहते हैं।

एक गूँगी-बहरी औरत जाने किस स्टेशन पर इस डिब्बे में घुस आयी है, और घर पर बनी तस्वीरों के पोस्टकार्ड बेच रही है। पर, यह कार्ड वह सिर्फ़ मर्दो को ही दिखलाती है, और सो भी बहुत लुका-छिपाकर। एक दूसरी बुढ़िया दूसरे दरवाज़े से झाँकने की कोशिश करती है, पर पहिली औरत इतनी ज़ोर से तड़पती है कि बुढ़िया के होश उड़ जाते हैं। औरत जैसे कि कहती हो—"जहाँ कोई तुम्हारी बात न पूछे, वहाँ अपनी नाक मत भिड़ाओ।" पोस्टकार्डो पर अज़ीब-अज़ीब मुद्राओं में औरत और मर्द नज़र आते हैं। औरतों का लिबास ऐसा है कि सारा बदन झलकता है, और मर्द देखने में विदेशी मालूम होते हैं। तस्वीरों में नीचे कुछ लिखा हुआ है, जैसे "मेरा इन्तज़ार

* बेवक़ूफ नामक ताश का खेल।

करना... मैं सूरज की तरह आऊँगी... रंग में सुनहली... उसी तरह चमचमाती हुई," या, "मेरा प्यार पवित्र है, मैं तुम्हारे प्रति ईमानदार हूँ।"

अचानक ही मैं अकेला-अकेला सा अनुभव करने लगता हूँ और यह अकेलापन मुझे काटने लगता है... यूना जीतोड़ मेहनत कर रही होगी—दाखिले के इम्तहान जल्दी ही शुरू होंगे। और, मैं—आख़िर किस घाट लगूँगा मैं?

और, मैं धँसता चला जा रहा हूँ अनजाने अंधकार में, चला जा रहा हूँ। साइबेरिया। मुझे कुछ नहीं पता कि वहाँ क्या करूँ-धरूँगा मैं, और किसी के किसी काम का भी साबित हो सकूँगा या नहीं! इस समय मेरी समझ में यह नहीं आता कि आख़िर मुझमें इतनी हिम्मत आयी कहाँ से कि मैं चल पड़ा और गाड़ी पर सवार हो गया। शायद यह सारा किया-धरा माँ का है। वे रोईं और उन्होंने मुझसे मिन्नतें कीं कि मैं किसी तरह खिलौने के कारखाने में काम कर लूँ। बोलीं—"वहाँ लोगों की ज़रूरत है। काम अच्छा है, और घर के पास भी है। जैसे दूसरे करते हैं, वैसे ही तुम भी काम करोगे।"

जैसे दूसरे करते हैं, वैसे ही मैं भी कारखाने में काम करूँगा—है न? यानी, तनख्वाह घर लाऊँगा, शनिवार को कोई फ़िल्म-विल्म देख आऊँगा, इतवार को पड़ोसियों के साथ हाते में 'दोमिनो' खेलूँगा या सुअरों के लिए बाड़ा तैयार करूँगा, और आख़िर को शादी कर लूँगा—जहाँ तक हो सकेगा किसी अर्जिन-दर्जिन के साथ। ठीक है, पर इस सबके बाद भला मैं क्या ज़वाब दूँगा उन सपनों को, जो मैंने छठे दर्जे में देखे थे? कैसे मन के लड्डू फोड़ता रहा था कि मैं समुद्र की यात्राएँ करूँगा, दूर-दूर देशों के सफ़र करूँगा, और...

यूना, यूना, भला क्या कह सकता हूँ मैं!?

गाड़ी इतनी तेज रफ़्तार से चल रही है कि हिचकोलों के मारे आगे लिखना मुमकिन नहीं। तो, यहीं तक सही!

बीती बातें—

हम तीन थे—साशा, वीक्तोर और मैं। स्कूल में सब हमें 'तीन बन्दूक़ची' या 'तीन टैंकबाज'* के नाम से पुकारते थे। पर, हम सदा कहते थे कि भाई, यह दूसरा नाम तो बिल्कुल गलत है। बात यह थी कि हममें से केवल वीक्तोर सात साल की उम्र से अपनी किताबों पर टैंक की चित्रकारी करता रहा था। वैसे साशा हवाई जहाज़ पर रंग चढ़ाता था, और मैं पानी के जहाज़ पसन्द करता था।

पर, आम तौर पर यह था कि हममें से किसी एक को अगर कोई नया शौक़ चर्राता तो बाक़ी हम दोनों भी उसी रोग की शिकार हो जाते। वीक्तोर के पापा ने कैमरा खरीदा

* नाम का सम्बन्ध एक लोकप्रिय सोवियत गीत से है। गीत में एक टैंक पर एक साथ काम करने वाले तीन मित्रों का वर्णन है।

तो हम तीनों के तीनों फ़ोटोग्राफ़ी के पीछे पागल हो उठे। साशा ने एक क्रिस्टल-सेट जोड़कर तैयार किया तो हम सभी की जेबें वाल्वों, कन्डेंसरों और लम्बे-लम्बे तारों से फूली रहने लगीं। मैंने ख़रगोश पालना शुरू किया तो मुसीबत की मार कि एक दिन वीक्तोर की माँ को ख़रगोश के बच्चे पिआनो के नीचे रखे एक खाली डिब्बे में कुछ नज़र आये और उनके सामने पातगोभी और दूब की कुछ पत्तियाँ फैली मिलीं। इसपर वीक्तोर का बुखार क़ायदे से उतारा गया।

वीक्तोर ने 'तरुण गार्ड' नामक फिल्म छः बार देखी, तो मैंने नौ बार और साशा ने पन्द्रह बार। दूसरी ओर आठवें दर्जे तक हम लड़कियों के ऐसे कट्टर दुश्मन रहे कि समझौता किसी तरह मुमकिन ही नहीं। पर, नवें दर्जे में मोहब्बत करने पर आये तो तीनों के तीनों ने यूना से एक साथ मोहब्बत की। फिर, डाह ने साही के काँटे बोये तो वीक्तोर और साशा में झगड़ा हो गया, और हमारी दोस्ती के तार ढीले पड़ने लगे।

आज इसकी बात सोचता हूँ तो लगता है कि इस झगड़े की जड़ यूना न थी, बल्कि कोई और ही चीज़ थी। मिसाल के लिए कोम्सोमोल की ही बात हो सकती है।

हम सबने एक साथ कोम्सोमोल में नाम लिखाया, और इसे लेकर हम उमड़े-उमड़े फिरे। वीक्तोर बोला—"यह हमारे जीवन का पहिला सच्चा और बड़ा कदम है। कोम्सोमोल के सदस्य के लिए ज़िन्दगी चलाना आसान होता है, और वह 'असदस्य' से कहीं ज़्यादा कुछ कर-करा सकता है, सफलता प्राप्त कर सकता है।" बस, यहीं सारा तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। ज़िन्दगी चलाने से क्या मतलब? और हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है आख़िर?... बस, तो, लिखना-पढ़ना तो सारा हो गया गोल, शाम की शामें बीत गयीं बहस-मुबाहिसे में।

साशा बोला—"देश मेरे लिए बहुत पवित्र है। अगर देश के लिए ज़रूरत पड़े तो मत्रोसोव* की तरह मैं भी अपनी जान की बाजी लगा सकता हूँ।" वीक्तोर ने व्यंग्य से पूछा—"यह बतलाओ कि तुम्हारा यह देश तुम्हें नया फ़्लैट कब देगा?" साशा अपने पापा के साथ पुराने टूटे-फूटे मकान के एक छोटे से कमरे में रहता था। फ़र्श के लकड़ी के टुकड़े सड़-गल रहे थे। पापा से नये फ़्लैट का वायदा किया जा चुका था, पर वायदा था कि खिंचता ही चला जा रहा था।

साशा हम तीनों में सबसे लम्बा था। बदन उसका कोनहा और भद्दा था, और कंठ उसका हम सबके कण्ठ से पहले फूटा था। आदमी मुँहफट और दो टूक बात कहने वाला था। एक बार किसी बात की धुन सवार होती तो उसे पूरा करने के बाद ही चैन लेता। फ़ोटोग्राफी हममें से सिर्फ़ उसी ने सही और सच्चे मानों में सीखी। कुछ दिनों शॉर्ट वेव के पीछे भी दीवाना रहा। उस समय दुनिया के कोने-कोने से उसके सहयोगियों ने उसे पत्र लिखे। उसके पापा एक ब्रेक-कारखाने में काम करते तो वह

* अलेक्सान्द्र मत्रोसोव—1941-45 के देशभक्तिपूर्ण युद्ध के नायक। अवसर आने पर वे दुश्मन की मशीनगन के दहाने के सामने लेट गये।

अक्सर वहाँ जाता और अपनी ज़रूरत के कुछ पुर्जे तैयार कर लाता। होते-होते उसने अपने लिए एक शिकंजा बना लिया और सीढ़ी के नीचे की एक कोठरी में अपना 'मिस्त्रीखाना' खोल दिया।

जगह अच्छी और मजे की थी। वहाँ तरह-तरह के तेजाब गन्धाते रहते। इस्पात के टुकड़े, बोल्टू, ढिबरियाँ और तार के टुकड़े अटे पड़े रहते। बेंच पर जब-तब ही किसी न किसी पड़ोसी का रेडियो-सेट खुला रखा रहता। आसपास पड़ी रहती टूटी हुई चिड़िया की कूकवाली घड़ी, टेलीविजन का लेंस, और ढेर का ढेर अगड़-खंगड। छोटी सी खिड़की से आसमान की थोड़ी सी झलक मिलती। ईंटों की दीवार पर जहाँ-तहाँ कबूतर फुदकते।

यहीं और बस यहीं हम सारे झगड़े-टंटे करते। मेरे यहाँ कहीं कोई ऐसी जगह न थी, जहाँ हम बैठते और आराम से अकेले दो बातें करते। वीक्तोर के माता-पिता के पास एक बड़ा फ़्लैट तो था ही, गरमी के लिए अपनी एक बंगलिया भी थी और वीक्तोर की 'पढ़ाई का अपना एक कमरा' अलग भी था। इसपर भी पता नहीं क्यों, वहाँ कुछ मन जमता सा न था। दूसरी ओर, इस चिड़ियाखाने में हम हर तरह आज़ाद होते और गला फाड़-फाड़कर इस तरह चिल्लाते कि होते-होते हमारी आवाज़ बैठ जाती। आम तौर पर साशा अपनी बेंच पर बैठा किसी न किसी काम में जुटा रहता। पर, जब बहस ज़ोर पकड़ती और वह गरम हो उठता तो जुड़ाई कहीं की कहीं कर जाता। इसके बाद वह जुड़ाईवाला लोहा एक ओर को लोका देता और तेहे में आपे से बाहर होकर हमें मुट्ठियाँ दिखलाने लगता।

साशा में जो भावना उठती, अक्सर ही बहुत ज़ोर से उठती और इसके लिए वह कड़े से कड़े शब्दों का इस्तेमाल करता। वीक्तोर उससे अन्धाधुंध बहस करता और ज़िन्दगी से मिसालें देता। मैं दोनों में से एक न एक का साथ देता, और यह निर्भर करता बात के वजन पर, यानी मुझे जिसकी बात में ज़्यादा सच्चाई मालूम होती मैं उसी का समर्थन करता।

वीक्तोर साशा को 'कंगला देशभक्त' कहना शुरू करता तो साशा और काटती हुई बात सोचता और उसे 'खानाबदोश चूहा' कहकर चिढ़ाता।

एक दिन वीक्तोर ने यूना के बारे में कोई ऐसी-वैसी बात कही तो साशा ने टेलीविजन का एक कीमती लेंस खींचकर उसके सिर पर दे मारा। इसके बाद खुल्लम-खुल्ला तौर पर दोनों एक दूसरे के दुश्मन हो गये, और काम रह गया एक कि जब मिलें तो एक दूसरे पर कीचड़ उछालें।

दूसरा शौक़ जो हमें चर्राया वह था सिक्कों का, पर साशा ने इसमें हमारा साथ न दिया। उसने कारखाने के लड़कों से दोस्ती कर ली और मुझे बुलाना-चलाना बन्द कर दिया। यों हो सकता है कि इस रवैये के मूल में इम्तहान रहे हों। यह सच है कि इम्तहान नज़दीक आ गये थे और कोर्स की किताबों से हमें सिर उठाने की फ़ुर्सत न मिलती थी।

अब मैं हर समय वीक्तोर के 'पढ़ने के कमरे' में बना रहता, और हम दोनों भौतिक विज्ञान और रसायनशास्त्र में सिर खपाते रहते। एक दिन हमने मन बदलना चाहा और हम 'कैफ़े' गये। कहना न होगा कि वहाँ क़दम रखने के पहले सयाना तो हमने अपने को मान ही लिया। वीक्तोर ने मुझे बीयर, अंगूर की शराब और वोदका का मिलाना सिखलाया, और हमने इस 'कॉकटेल' की अन्धाधुंध पिलायी की। अन्त में हमें धक्के दे-देकर बाहर निकाला गया तो हम लगे यूना का मकान ढूँढ़ने कि चलकर उसके रूप के गुण गाये जायें। पर, सौभाग्य से मकान नहीं मिला तो हम वीक्तोर के 'पढ़ने के कमरे' में आ गये और सुबह तक फ़र्श पर बिछे कालीन पर पड़े सोते रहे। सबेरे मैं घर पहुँचा तो देखता क्या हूँ कि माँ ने रोना-धोना शुरू कर दिया है। मालूम हुआ कि वे पूछताछ के लिए मिलिशिया-स्टेशन तक को टेलीफोन कर चुकी हैं।

...पर, यह सारी बीती बातें हैं, और बार-बार इन में सिर खपाने से हाथ आना कुछ नहीं। साशा के और मेरे रास्ते हमेशा-हमेशा के लिए अलग हो चुके हैं। मुझे तो यह भी नहीं मालूम कि अब वह किसी इन्स्टीट्यूट में अपनी तक़दीर आज़माने जा रहा है या नहीं। वीक्तोर अपनी गरमी वाली बँगलिया में रहने लगा है, और दाखिले के इम्तहान की तैयारी में है। मैं उससे बिना मिले चला आया हूँ। मास्को में आख़िरी दिन मुझे उसका पत्र मिला। वही पत्र इस समय मैं मास्को से व्लदिवोस्तोक जाने वाली गाड़ी के इस डिब्बे की तीसरी बर्थ पर लेटा पढ़ रहा हूँ। गुजरे हुए ज़माने ने इस पत्र के सिवाय और कुछ भी नहीं छोड़ा है मेरे पास...

वीक्तोर का पत्र–

"तोल्या, मेरे यार,

मुझे कैसा अज़ीब-अज़ीब सा लगता है, तुम सोच नहीं सकते। इन वृत्तों और लम्बों में मेरा ज़रा भी जी नहीं लगता। मेरे चारों ओर झुण्ड के झुण्ड फ़ैशनबाज लड़के और लड़कियाँ हैं। लड़कियाँ स्लैक डाटे गली में साइकिलें दौड़ाती हैं। सभी वॉलीबाल खेलते हैं, शाम को टेप रेकार्डर की धुन पर नाचते हैं, यानी हर ढंग से जीवन का रस और आनन्द लेते हैं। दूसरी ओर मैं हूँ कि बेवक़ूफ़ की तरह बैठा सह-स्पर्श-रेखाएँ घोटता रहता हूँ, और लड़के-लड़कियों के हँसी-मजाक और ठहाके मेरे कानों में बजते रहते हैं।

है न आख़िर यह बिल्कुल बेमतलब बात? मेरी ज़िन्दगी इन बेहूदी सह-स्पर्श रेखाओं पर निर्भर करे, आख़िर क्यों? अगर इनकी झलक मुझे कभी न मिले, अगर इनकी चर्चा मेरे सामने कभी न की जाये तो सचमुच मुझे कितनी खुशी हो! जानते हो, इस सारी मुसीबत की जड़ है वह रेडियो-सेट जिसे लेकर हम कुछ ऊबड़-खाबड़ करते रहे थे। मेरे 'बड़े मियाँ' ने मुझे वह काम करते देख लिया और मुझे इसी के लिए बना मान लिया। फिर तो रट लगानी शुरू कर दी पोलीटेकनीक और रेडियो विभाग

की। अगर तुम मुझसे सच-सच पूछो तो मैं यह बिल्कुल नहीं जानता कि मैं खुद क्या बनना चाहता हूँ और मुझमें किस चीज़ की प्रतिभा है। फ़िलहाल, रेडियो में क़िस्मत आज़माने जा रहा हूँ, क्योंकि 'बड़े मियाँ' को इसकी धुन सवार हो गयी है। लेकिन, कल अगर वे कहें कि सुनते हो, तुम्हें अब से मूर्त्ति-कला के इंस्टीट्यूट में जाना है, तो मैं बिन मुँह खोले, सीधे-सादे ढंग से वहाँ जाना शुरू कर दूँगा। कहो, है न यह भयानक बात?

लेकिन मेरा ख़्याल है कि बिना कोशिश किये तुम जो हिम्मत हार बैठे हो, यह भी कोई सही तरीका नहीं है। यह तो महज हाथ-पैर फुलाना है, और 'मैं नहीं जानता कि मैं क्या चाहता हूँ' से भी गिरी हुई बात है। ऐसी बुजदिली भी क्या!? मुझे देखो, तीन-तीन विषयों में मैंने थर्ड क्लास नम्बर पाये हैं, और यह नम्बर, साफ़ है कि, फ़र्स्ट क्लास के दायें-बायें भी नहीं फटकते, यानी उससे मीलों दूर हैं, पर इससे क्या अन्तर पड़ता है?

दो टूक बात कहने के लिए माफ़ करना। तुम्हारा इस तरह हथियार डाल लेना और दूर भाग निकलने की योजना बना लेना, मुझे पसन्द नहीं। मैंने इस विषय पर बहुत सिर मारा है, और मेरा विचार है कि हमें इस तरह हथियार नहीं डालने चाहिए। मैं कहता हूँ कि पोलीटेकनीक के लिए अगर तुम अर्जी दे देते तो क्या कोई बुरी बात हो जाती? आख़िरकार वायरलेस सेटों में तो तुम्हें भी उतनी ही दिलचस्पी थी जितनी मुझे! भाई मेरे, एक-एक ग्यारह होते हैं, और इससे काम आसन होता है। हम एक के बजाय दो होते तो एक-दूसरे की हिम्मत बढ़ाते, नक़ल करने-कराने में एक दूसरे का हाथ बँटाते, और ज़ाने क्या-क्या करते। फ़िलहाल, लड़ना तो हमें चाहिए। और भाग्य पर भरोसा भी करना चाहिए।

तोल्या, देखो, बात यह है कि जीता वह है जो लोहा लेने में दूसरों से इक्कीस उतरता है। आदमी को राह के रोड़ों का सीना चीरते बेधड़क आगे ही बढ़ते जाना चाहिए। और, मान लो यह अड़ंगे उसके पार किये पार न हों तो उसे अपने तरीक़ों में फेर बदल कर देना चाहिए। पर, आगे तो, हर हालत में, बढ़ना ही चाहिए! सुन रहे हो, जैसे भी हो, वैसे बढ़ना चाहिए! मैं तो सिर्फ़ एक यही बात जानता हूँ और इसी में विश्वास रखता हूँ।

तोल्या, मात्र एक तुमहो जिसके सामने मैं अपना दिल खोलकर रख सकता हूँ। कभी साशा भी मेरे साथ था, पर अब तो वह बीती हुई बात है। इस समय और अब मुझे सबसे ज़्यादा कमी खलती है तुम्हारे सवालों की, जानकारी के मामले में तुम्हारी उत्सुकता की और तुम्हारी खोज-बीनों की। कोई भी तो आस-पास ऐसा नहीं है जिससे मैं दो बातें कर सकूँ। पास-पड़ोस के सारे के सारे लोग गँवार हैं और ऐसे हैं कि चिराग लेकर खोजो तब शायद कहीं मिलें। चुन-चुनकर जमा किये गये हैं यहाँ। कभी यों भी लगता है कि इन सब को इस तरह यहाँ एक साथ तो होना ही चाहिए, क्योंकि

कहते हैं न 'पानी में पानी मिले, मिले कीच में कीच।' जिधर देखो उधर इनकी मनहूस शक्लें नज़र आती हैं। चेहरे तामलोटों से लगते हैं। यह हर तरह अपने आप से सन्तुष्ट हैं। अपनी-अपनी ज़मीन-जायदादें और अपनी-अपनी सनकें हैं। और, इनके बाल-बच्चे भी बिल्कुल उन्हीं के साँचों में ढले हैं, बिल्कुल अपने माँ-बाप के अवतार हैं।

हमारी बंगलिया के दाहिने किसी रेस्तोराँ-वेस्तोराँ जैसी चीज़ के मैनेजर का लम्बा-चौड़ा, आलीशान बँगला है। बाईं ओर की इमारत और भी तड़कीली-भड़कीली है। उसे भी देखकर जी मिचलाता है। जायदाद है किसी ट्रस्ट के सप्लाई डायरेक्टर की। और क़तार के नुक्कड़वाली बंगलिया अभी-अभी बनकर खत्म हुई है। जानते हो किसकी है? वह है उस भिखारी की, जो अपनी अन्धी बीवी के साथ शहर के बाहरी इलाकों में जाने-आने वाली गाड़ियों के चक्कर काटता और हर जिस-तिस के समाने हाथ फैलाता घूमता है—'भाइयो, दो अपाहिज खड़े हैं आपके सामने... कोई नहीं है हमारे आगे-पीछे... लड़ाई में मैं था... अब उसकी बात क्या करूँ आपसे! दो-चार कोपेक मेहरबानी कर दें तो एक टुकड़ा रोटी ले लूँ।' मैंने भी उसे जो बना सो दे दिया था कि जाओ, भाई, 'एक टुकड़ा रोटी खरीद लो'। उस समय शायद तुम भी थे मेरे साथ... थे न?...

तोल्या, आओ न मेरे यहाँ। हम बातें करेंगे, कुछ सोचें-समझेंगे और एक साथ इम्तहान की तैयारी करेंगे। आओगे तो तुमसे यूना के हालचाल भी मालूम होंगे... देखो, आना, ज़रूर आना!

शुभ कामनाएँ लो—तुम्हारी राह देखूँगा!

तुम्हारा सैदव

वीक्तोर"

"सफ़र तुम्हारा लम्बा है'—

आख़िर साइबेरिया का खास इलाका शुरू कहाँ से होगा? हर दिन वही मैदान, वही जंगल, वही झुरमुट, वही नदियाँ और खिड़कियों के बीच से लौ देते और पीछे छूटते वही खेत-खलिहान। उराल का सिलसिला कभी का पार हो गया, पर हमने नहीं जाना। अब न पहाड़ हैं और न दर्रे। अब है पहाड़ियों से भरपूर सिर्फ़ गाँव-गँवई का पसारा। चुसोवाया नदी के पास-पड़ोस के एक स्टेशन पर एक सादा, धारीदार खम्भा नज़र आया है... यह है योरोप और एशिया के बीच की सीमा—यहाँ है, बस, एक चौकी।

तो यह एशिया है!

गाड़ी रुकती है तो सारे के सारे मुसाफ़िर पैर सीधे करने के लिए प्लैटफ़ार्म पर उमड़ पड़ते हैं। कुछ लोग पास की दुकानों से दही, भुने हुए चूजे और अखबार के

क़ागज़ों में लिपटे गरमागरम आलू खरीदते हैं। अगर गाड़ी जंगल की किसी साइडिंग में खड़ी हो जाती है तो हम फूल चुनते हैं, साँप की छतरियाँ खोजते फिरते हैं, और स्ट्रॉबेरी तोड़ते है। पर, इसके लिए लोग पटरी से बहुत दूर नहीं जाते। बस, कुछ क़दमों के ही फासिले पर रहते हैं कि वॉलीबॉल के खेल में गेंद फेंकी जाये तो वहाँ तक पहुँच जाये...

एक स्टेशन पर घुमन्तू खानाबदोशों का एक गिरोह गाड़ी पर टूट पड़ा। यह मैले-कुचैले, हट्टे-कट्टे, तस्वीर लेने के लायक लोग भी अपने झुण्ड के झुण्ड अधनंगे बच्चों और काहिल कुत्तों के साथ कहीं, किसी गुप्त काम से, जाते लगे। मेरी समझ में यह खानाबदोश कभी भी नहीं आये। इन मज़बूत, पोढ़े लोगों और इनकी काली-कलूटी, हड्डी बीवियों में भला कौनसी ताकत है कि इनके पैरों में सदा चक्कर बना रहता है?

सुबह का खाना खाते हैं तो शाम के खाने का ठिकाना नहीं होता। जाड़ा-गरमी, आँधी-पानी सब यों ही झेलते हैं। हमेशा खुले में रहते हैं। मज़बूर हैं, भीख माँगते हैं। हाथ-पैर जोड़ते हैं, गिड़गिड़ाते हैं। इसपर भी इनसे किसी खिलौने के कारखाने की स्थायी नौकरी की बात कर तो देखिए! भूल से भी हाँ न करेंगे। फिर भी, यह चिड़ियों की तरह जीते हैं। इनकी ज़िन्दगी में जहाँ सादगी है, वहीं सरलता भी है। न यह किसी दिक्कत-मुसीबत में खपते हैं और न ही इस जीवन से थकते हैं। इसके लिए आदमी में अकूत बेफ़िक्री के सिवाय और कुछ भी होना चाहिए। इनके दिल और दिमाग़ की गहराई में पैठना मेरे बस की बात नहीं। मेरे सामने तो केवल एक बार सवाल आया इरादा करने का और भाग निकलने का; और सचमुच कितनी मुश्किल हुई मुझे इसमें भी! उसपर भी मन डरता रहा और एक गुंजाइश बनाये रहा कि अगर बोझ उठाये न उठा तो भाग खड़ा होऊँगा वापस। दूसरी ओर, यह खानाबदोश हैं कि इनकी क़िस्मत में मंजिल ही नहीं है...... यहाँ से वहाँ और वहाँ से वहाँ भटकते रहना ही इनकी ज़िन्दगी है। कोई कामधाम नहीं। न जुताई करते हैं, न बोआई और न कटाई। जन्म के दिन से आख़िरी दिन तक राह की खाक फिरते छानते हैं, यानी पूरी की पूरी ज़िन्दगी सफ़र में बिता देते हैं......

"बाँके जवान, इधर आओ, तुम्हारी क़िस्मत का हाल बतला दूँ। अपनी हथेली पर रूबल रखो और देखो कि कैसे बतलाती हूँ मैं सारी सच्चाई।"

मिलिशिया के सिपाही ने बार-बार सीटी बजाई। खानाबदोश औरतों का दल काई की तरह फटा। कुछ इधर-उधर भागीं तो कुछ गाड़ी के कम्पार्टमेण्टों के नीचे घुस गयीं। पर, फिर हड़बड़ाते हुए, बेहयाई से दरवाज़ों के आसपास आ जमा हुईं। हो सकता है कि इस बेसब्री और भाग-दौड़ के पीछे रहा हो गाड़ी का यहाँ केवल पाँच मिनट के लिए ठहरना।

एक घिनौनी, पोपले मुँहवाली बुढ़िया तो जैसे मेरी जान के पीछे पड़ गयी। उसके

पैर काले और जगह-जगह फटे हुए नज़र आये। सो, अपना घेरेदार घाँघरा झुलाती वह पूरी गाड़ी भर मेरा पीछा करती रही। कभी बायें से मेरे आगे आ जाती तो कभी दायें से—"एक रूबल हाथ पर रखो, जवान। इतनी कंजूसी अच्छी नहीं। ग़रीब बंजारिन हूँ। एक रूबल दे दोगे तो एक टुकड़ा रोटी खरीद लूँगी! सच-सच बतलाऊँगी तुम्हें।"

मुझे घबराहट हुई। साथ ही मन भी उसके लिए दुखा। वह बुरी तरह गिड़गिड़ाने लगी। फिर बोली—"मैं बतला दूँ कि तुम अपनी रकम कहाँ रखते हो? यहाँ, इस जेब में रकम है।"

मेरी हालत ऐसी हो गयी कि कोई पर से भी मुझे छू देता तो मैं धरती पर भहरा पड़ता—मेरे पास के रूबल सचमुच मेरी दाहिनी जेब में थे। पर असलीयत मेरे दिमाग़ में बाद में आयी। शायद अनजाने मेरे हाथ ने वह जेब दबा रखी थी।

मेरा बस चलता तो मैं उससे कह देता—"बाबा, मेरी जान छोड़ो।" पर, कुछ मन-सा न हुआ। मैंने उसे तीन रूबल का एक नोट दे दिया। वह बोली—"सफ़र तुम्हारा लम्बा है... किसी सरकारी दफ़्तर से फ़ायदा पहुँचेगा तुम्हें... कोई ईंट की बेगम है तुम्हारी बगल में, लेकिन उसके मन में फूल का बादशाह है।"

इतना कहने के बाद बुढ़िया बंजारिन ने मेरे सिर का एक बाल तोड़ा, हाथ के शीशे पर रखा और तीन रूबल की माँग की। भाग्य से ठीक इसी समय गाड़ी चल पड़ी।

यह बात पाँच स्टेशनों तक मेरा मन मथती रही। इसके बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि मुफ़्तखोर होने से बुरा अैर कुछ नहीं। सचमुच अगर यह पोस्टकार्ड बेचने वाले, यह भीख माँगने वाले और यह भविष्य का ठेका लेने वाले हमारे बीच न होते तो हमारी यह दुनिया कहीं ज़्यादा अच्छी होती, और कहीं ज़्यादा पाक-साफ़...

बूढ़ी औरत, तू भी बड़ी मजाकिया है। हम सबका सफ़र लम्बा है, हममें से हर एक को किसी न किसी सरकारी दफ़्तर में काम है, और लगभग सभी के दिल में कोई न कोई ईंट की बेगम बसी हुई है। वैसे तो हम सब एक दूसरे से बहुत अलग हैं, पर सभी में कुछ न कुछ ऐसा है जो बहुत कुछ एक सा है।

इस डिब्बे के लोग—

गाड़ी के पहिये घड़घड़ाते हुए हमें तीसरे दिन की सीमा में ले आये हैं। हमने किलोमीटर की गिनती हज़ारों में करनी शुरू कर दी है। इस बीच हमने 'दुराका' की कोई सौ बाजियाँ खेली हैं, दर्जनों गिलास चाय पी हैं, क़ायदे से आसपास नज़र दौड़ायी है और एक दूसरे से थोड़ी-बहुत जान-पहचान कर ली है।

वस्योक—मेरे बराबर की तीसरी बर्थ पर है—उम्र से जवान, तबीयत से शैतान और अकड़ और बिल्कुल आवारों जैसा। वैसे मेरा यह दुबला-पतला, हल्का-फुलका पड़ोसी, मजे का संगीतज्ञ और कविता-प्रेमी है। अपनी बर्थ पर चढ़कर लम्बे-लम्बे गाने गाने

से ज़्यादा पसन्द उसे और कुछ नहीं।

उसे मिलिशिया के सिपाहियों के अलावा ज़िन्दगी में और किसी चीज़ से कोई डर नहीं। बूढ़ी दादी के सिवाय उसका अपना न तो कोई नातेदार है और न रिश्तेदार। सो, दादी ने भी कहा—"तुम मेरी हँसी-खुशी की राह के रोड़े हो....." वस्योक साइबेरिया जा रहा है, न रूबल-कोपेक के लालच से, न किसी आरामदेह नौकरी की तलाश में और न नाम-यश कमाने के लिए। वह जा रहा है, क्योंकि वह दुनिया देखना चाहता है।

साज-सामान के नाम पर है उसके पास एक जैकेट, एक थैली, सूखी रोटी और बस। खाना क्या खाता है, चिड़ियों की तरह चुग्गा चुगता है। किसी स्टेशन पर ब्लूबेरी या अखरोट जैसी कोई चीज़ ख़रीद लेता है और उसका काम चल जाता है। इससे अधिक उसे कुछ और चाहिए भी नहीं। आदमी सपनों का बड़ा व्यापारी है। मोगिलूयोव में तैनात हमारे पास का सिपाही बोला—"मोगिलूयोव का शहर क्या है, धरती का स्वर्ग है। दो रूबल खर्च करो और एक गज सॉसेज खरीद लो।" वस्योक की यह बात इतनी जमी कि इस कल्पना के आधार पर उसने पूरे के पूरे प्रदेश की परी-देश की सी कहानी गढ़ डाली। बोला—"और, तोल्या, वहाँ एक ऐसा पेड़ है जिसमें केकें उगती हैं। जानते हो, ऊपर की शाखों वाली केकें मुलायम, ताजी और गरमागरम होती हैं और नीचे की शाखों वाली सूखी हुई। कहो, मजा है न?"

"मैं कहता हूँ, तुम सोओगे कि नहीं!"

"पेड़ में एक बाँस फँसा रहता है, और इस बाँस पर बैठा एक तोता दोलमातोव्स्की की कविताएँ पढ़ता रहता है। हम पेड़ के नीचे जा बैठते हैं तो जी भर केकें खाते हैं, और तोते को मुँह चिढ़ाते हैं।"

वस्योक के जीवन में रहस्य जैसा कुछ नहीं। जो है सबके सामने है। हमारे डिब्बे का हर आदमी जानता है कि उसकी जेब में कुल सत्तर रूबल हैं, उसकी दादी सचमुच बुरी औरत नही हैं, वे वैसे ही उसे दिन-रात घोंसती रही हैं और अचानक ही उन्होंने दुबारा शादी करने की ठान ली है।

सब के सब उसे स्नेह की दृष्टि से देखते और उस पर बड़ी-बड़ी सैंडविचें और सलाहें लादते रहते हैं। वस्योक सलाहें और सैंडविचें, दोनों ही एक-से, चाव से ग्रहण करता है। उसकी तीसरी बर्थ तो उसके लिए जैसे बादशाहत है। हवाकशों के साथ गोलमाल करता रहता है और मजा उसे वहाँ इतना आता है कि क्या कहिए।

इवान बुगाई—सभी जानते हैं कि रेल के आम डिब्बों में नीचे की बर्थे सिर्फ़ बैठने के काम आती हैं और ऊपर की बर्थें सोने के। बुगाई ने सोने की एक बर्थ का किराया अपनी जेब से दिया है।

उसके दाँत में बड़ा दर्द हो रहा है। गाँव से लॉरी पर बैठकर रेलवे स्टेशन आते समय राह में उसे सर्दी लग गयी। इस समय सूजा हुआ गाल देखने में बहुत बुरा मालूम होता

हैं। वैसे इवान बुगाई* अपना नाम सार्थक करता है; और भैंसे की भाँति ही काहिल और मोटी अक़्ल का है। करवटें बदलता है तो बर्थ ऐसे चरमराती है कि नीचे बैठना खतरे से खाली नहीं लगता। दूर की बात सोचने वाला मुसाफ़िर अपने साथ भेड़ की खाल का एक लम्बा-चौड़ा ओवरकोट लाया है। यह कोट आम इस्तेमाल का है, और इससे बहुत से काम एक साथ सरते हैं। आधा बिछावन का काम देता है तो आधा कम्बल का। एक बाँह आगे बढ़कर सिर का तकिया बन जाती है तो दूसरी बाँह को उलट देने अन्दर का ऊन फूले हुए गाल को ढक लेता है।

इवान बुगाई भीर-गम्भीर, ऊँचे सिद्धान्तोंवाला, समझदार आदमी है। उसने अपने गाँव के स्कूल से नवाँ दर्जा पास करते ही साइबेरिया की निर्माण-योजना की चर्चा पढ़ी और वहाँ जाकर काम करने के लिए क़ागज़ पर दस्तखत कर दिये। घर में इस बात को लेकर तूफ़ान खड़ा हो गया। बड़ा विरोध हुआ। माँ और चाचिओं ने रोना-पीटना शुरू कर दिया। पर उसने एक की न सुनी और चल खड़ा हुआ। खाते-पीते घर का है। खुद भी थोड़े समय तक गाँव के लोहार के कारखाने में काम किया है। फलतः गाड़ी के रेस्तराँ में जाकर बीयर पीने का शौक़ चलाता रहता है।

गाड़ी पर सवार होते ही पहले दिन किसी ने उसके हाथ की घड़ी चुरा ली। घड़ी पुरानी थी और उसका चौड़ा पट्टा काफ़ी फटा-कटा। सुबह आँख खुली तो फ़ीते के दोनों टुकड़े ज़मीन पर आ गिरे। बुगाई ने उन्हें उठाया, खिड़की के बाहर फेंका, सिर खुजलाया और घड़ी की याद मन से भुला दी। घटना की याद दिलाने को बाक़ी रह गया सूरज की किरणों से अछूता, कलाई के चारों ओर के दाग़ का सिर्फ़ एक सफ़ेद घेरा।

बुगाई के साथ प्लाईवुड का एक सूटकेस है और उसमें एक बड़ा सा ताला ऊपर से झूलता है। ढक्कन का अन्दर वाला हिस्सा रंग-गिरंगी तस्वीरों से मढ़ा हुआ है। तस्वीरें वजन उठाने वालों की हैं और 'ओगोन्योक' नामक पत्रिका से बहुत सफ़ाई से काटी गयी है। खुद सूटकेस में ऊपर तक खाने की चीज़ें भरी हुई हैं। यह खाना पेट के लिए भी है और दिमाग़ के लिए भी। पेट के खाने में रोटी, टमाटर आदि चीज़ें शामिल हैं, तो दिमाग़ के लिए दसवें दर्जे की पाठ्य-पुस्तकें हैं। बुगाई की योजना साइबेरिया के किसी शाम के स्कूल में नाम लिखाकर दसवाँ पास करने की है।

मौक़ा भर मिल जाये फिर तो वह राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की उपलब्धियों के आँकड़ों पर आँकड़े देता चला जा सकता है—धड़ाधड़। पर, ध्यान लगाकर उसकी बात सुनने वाले ज़रा कठिनाई से ही पास फटकते हैं।

और, अगर कोई पास नहीं फटकता तो वह आधे दर्जन टमाटर और 'सोवियत संघ का आर्थिक भूगोल' सूटकेस से निकालता है, वस्योक को बुलाता है और इर्कूत्स्क और ब्रात्स्क योजनाओं के विषय में विस्तार में चर्चा शुरू कर देता है कि इर्कूत्स्क

* उक्रइन भाषा में इस शब्द का अर्थ बैल होता है।

पनबिजलीघर की ताकत छः लाख किलोवाट होगी और ब्रात्स्क पनबिजलीघर की बत्तीस लाख किलोवाट। वस्योक उसकी बात बड़े चाव से सुनता है और टमाटर पर हाथ साफ करता चला जाता है।

ग्रिगोरी—हमारे डिब्बे की दूसरी सोने की बर्थ एक सिपाही ने घेर रखी थी, पर वह कीरोव में उतर गया और उसके उतरते ही ग्रिगोरी ने उसपर अपना कब्जा जमा लिया। तब से एक क्षण को भी उसने जगह छोड़ी नहीं है, पर उसका मन डरता बराबर रहा है कि कहीं कण्डक्टर को खाली बर्थ का ख़्याल आ जाये और वह आकर उसे वहाँ से खदेड़ दे तो?

ग्रिगोरी को हम सब ग्रीश्का कहते हैं। ग्रीश्का कंजूस क्या है, मक्खीचूस है। चेहरा चेचक के दागों से भरा है। आँखों से आशंका टपकती रहती है। गाँठों वाले हाथ हर चीज़ सहेजकर रखने की कला में कुशल मालूम होते हैं। सो, नयी बर्थ पर आते ही सबसे पहला काम उसने यह किया कि अपने कुछ बण्डल और सूटकेस सिरहाने रख लिए तो कुछ अगल-बगल कि कोई कुछ चुरा न ले जाये। इस तरह सारे सामान का अम्बार बर्थ पर लग गया तो वह खुद इनसे जैसे घिर सा उठा।

अंगारा नदी के पनबिजलीघरों की ताक़तों से उसे नाम मात्र की भी दिलचस्पी नहीं। पर, वहाँ की लम्बी-चौड़ी आमदनियों के हवाई क़िस्से उसके दिमाग़ में बैठे हुए हैं, और रातों को जब सब सो जाते हैं तो वह पेशगी में मिले रूबलों का हिसाब-किताब शुरू करता है, और फिर बार-बार जोड़ता है। ऊपर से मुझे वह अच्छी तरह नज़र आता है। अपनी रक़म छोटी सी थैली में रखता है। थैली एक डोरी से सधी पैजामे के अन्दर झूलती रहती है और डोरी बँधी रहती है पेटी में। उसके पास चाँदी की एक जेबी घड़ी भी है। घड़ी में एक भारी सी चेन लगी हुई है और रात में कोई दस बार वह टटोलता है इसे कि सब कुछ बदस्तूर है न!

ग्रीश्का न तो किसी स्टेशन पर कुछ खरीदता है और न डिब्बे से टस से मस होता है। बस, हर समय चीज़ों पर निगाह रखता है। पर, उसके इस रवैये से हमारा बड़ा भला होता है। हम स्टेशनों पर आराम से चहलक़दमी कर सकते हैं कि कोई किसी तरह की छेड़छाड़ करेगा तो ग्रीश्का खुद ही क़ायदे से समझ-बूझ लेगा। और, सचमुच ही उसके कारण ऐसे-वैसे लोग ज़रा फ़ासले पर ही रहते हैं। दूसरी ओर, वह क़समें खा-खाकर कहता है कि साहबों, ठगों का गिरोह लगा हुआ है इस डिब्बे के पीछे। यानी यह बात कहते-कहते उसका चेहरा काला पड़ जाता है और सारे के सारे मुसाफ़िर बुरी तरह सहम जाते हैं। कहना न होगा कि आधे लोग तो हमें ही सन्देह की दृष्टि से देखने लगे हैं।

हम खाने बैठते हैं तो ग्रीश्का एक किनारे हट जाता है कि भूख नहीं है। पर, थोड़ा ज़ोर डाला जाता है तो ना-नुकुर करते-करते खाना शुरू कर देता है। और, एक बार शुरू किया तो फिर क्या! आदमी है पेटू। सारी बहानेबाजी छोड़ चीज़ों पर चीज़ें गटकता

चला जाता है। अपना खाना कभी कुछ लाता नहीं। बेचारा बुगाई, नफ़रत से नाक बजाते हुए, दिखावे के फेर में रोटी के टुकड़े पर टुकड़े आगे बढ़ाता जाता है। वस्योक अपनी हँसी रोक नहीं पाता और मुँह पर अखबार रख लेता है।

गाँव में पीछे छूट गये हैं ग्रिगोरी के पिता, सौतेली माँ और पाँच भाई-बहन। ग्रीश्का सौतेली माँ की तारीफ़ करता है। कहता है–"वे घर बड़े क़ायदे से चलाती हैं। पापा भी कोई बेवक़ूफ़ आदमी नहीं हैं। घर अच्छा है। सभी कुछ है। पर, वह परिवार और घरबार तो मेरे पिता का है, मेरा नहीं। अब लगभग समय है कि मुझे भी शादी कर अपनी गृहस्थी अलग जमा लेनी चाहिए। मैंने सुना है कि साइबेरिया में लोग बड़ी रक़में पीट रहे हैं, और, उसपर हमारी वेरखनेचारी गाँव के कुछ लड़कों ने नौकरी के क़ागज़ पर दस्तखत किये तो मैंने कहा कि चलो, मैं भी चलूँ।"

थुलथुल ल्योश्का-–ल्योश्का की बर्थ ग्रिगोरी के 'प्राइवेट फ़्लैट' के ठीक नीचे वाली है। सफ़र वह ठाठ से करता और शाहाना ढंग से करवटें बदलता है। सच कहूँ तो उसे रत्ती भर इसकी चिन्ता नहीं कि सफ़र के दिन कैसे कटते हैं और वह किस चीज़ पर सोता है और किस पर नहीं! सूटकेसों का अम्बार होता तो कुछ नहीं और बालन की टाल होती तो कुछ नहीं। उसे इतना ही मजा उसपर भी आता। मोटा वह इतना है कि किसी भी तरह का कोई भी बिस्तर हो, उसके लिए गुलगुला हो उठता है।

ल्योश्का के गाल फूले हुए हैं। चेहरा गोल है और हमेशा दमकता रहता है। बाल उसके लाल हैं। स्वभाव से मधुर मगर सुस्त है। हर एक को देखकर मुँह बनाता और हँसता रहता है। गुट्टियाँ खेलने का बड़ा शौक़ है। निश्चित संख्या के खानों वाला क़ागज़ और, गुट्टियों के नाम पर, चौबीस बटन जेब में डाले घूमता है।

उसकी जेबें क्या हैं, अच्छा-खासा अजायबघर हैं। और चीज़ों के साथ उनमें है एक-दो चाय के गिलास, एक राखदानी, एक टीन खोलने वाला, एक स्कार्फ़ और मुट्ठी भर छोटी-बड़ी कीलें। डिब्बे में एक केवल वह है जो ताश का खेल जमाये रहता है। पर, खेलता है वह खेलने के लिए, जीतने के लिए नहीं। फिर, हार हो और चाहे जीत, सन्तुष्ट दोनों ही हालतों में रहता है। लेकिन, उसे खास मजा आता है दूसरों को धोखा देने में। यानी, तुरुप के इक्के पर मामूली पत्ता मारकर ताश उठाने लगता है और बनकर देखता हैं कि हम सब यह बेईमानी देख और समझ रहे हैं या नहीं? इसपर ग्रिगोरी अक्सर ही गरम हो उठता है, झगड़ालू, छोटे मुर्ग़े की तरह उसकी ओर झपटता है और इधर-उधर ढंग से नज़र दौड़ाता है तो वक़्त-ज़रूरत के लिए ताश के दो पत्ते छिपे हुए मिलते हैं। इसपर ल्योश्का न बुरा मानता है और न चिढ़ता है। उल्टे खुशी से खिल उठता है।

हम यह सुनकर जैसे ठक रह गये है कि हमारा ल्योश्का बहादुर सड़क पर टण्टा करने के लिए छः महीने की जेल काट आया है। उसने खुद ज़रा झेंपते मगर मुसकराते हुए बतलाया कि एक बार ज़रा चढ़ा ज़्यादा ली और सड़क पर किसी को बुरी तरह पीट दिया तो पकड़कर ससुराल भेज दिया गया। छूटकर आया तो गाँव के लोगों ने चैन से जीने

नहीं दिया। नतीजा यह हुआ कि वहाँ से टल जाने में ही अपनी खैरियत नज़र आयी।

उसके माँ भी हैं, और बाप भी। कपड़े अच्छे क्या ठाठ के पहनता है। बदन पर मुलायम चमड़े की जैकेट है तो पैर में चमड़े के लम्बे बूट। साज-सामान साथ कुछ नहीं है। बस, जो है सो जेबों में है।

उसपर मजा यह कि जो है वह भी राह में जुटाया है। दूसरे दिन हम सब ने दिन का खाना गाड़ी के रेस्तोराँ में खाया। लौटा तो ल्योश्का गम्भीर भाव से अपनी बर्थ पर आ लेटा। पर, चैन जैसे उसे मिला नहीं। कभी बेकार की हूँ-हाँ की तो कभी इधर-उधर करवटें बदलीं। आख़िरकार उठ बैठा और जेब में हाथ डालकर तीन गिलास, तीन चम्मच और एक काँटा हमारे सामने रख दिया। वस्योक का हँसते-हँसते पेट फटने लगा। ग्रिगोरी ने बच्चों वाली मुर्ग़ी की तरह हाथ नचाये और लपककर सारी शानदार चीज़ें समेटीं कि छिपा ले। बुगाई ने नाक बजाई, चुपचाप लूट का माल समेटा और जाकर सारी चीज़ें होशियारी से रेस्तोराँ की एक मेज़ पर रख आया। ल्योश्का ने हँसते हुए सारा कुछ देखा और बिना माथे पर बल डाले आराम से सो गया। शाम हुई तो गिलासदानों के साथ दो गिलास मार लाया।

इन चीज़ों की उसे कुछ ज़रूरत हो, सो बात नहीं। बस, यह है कि आसपास कोई देखने-सुनने वाला न हो और ऐसी अच्छी-अच्छी चीज़ें जहाँ की तहाँ छोड़ दी जायें, यह वह कुछ बर्दाश्त ही नहीं कर सकता। उसकी जेब की जिस राखदानी की मैंने चर्चा की है वह मिट्टी की है, पर गाड़ी की राखदानियाँ शीशे की हैं। इसका मतलब यह है कि वह उसने कहीं और से झटकी है।

उसकी यह हरकत पहले तो हमें बड़ी बुरी लगी। हमने उसे बुरा-भला कहा, डाँटा-फटकारा और चीज़ें बार-बार जहाँ की तहाँ पहुँचायीं। पर, बाद में उसे उसके हाल पर छोड़ दिया और कहा—"जाओ भाड़ में!" फल यह हुआ कि कोई दर्जन भर गिलास और ढेर के ढेर काँटे जमा हो गये। ल्योश्का ने सफ़ाई से उन्हें एक रूमाल में बाँधा यानी सोचा कि ले चला जाये, नये घर में ज़रूरत पड़ेगी इनकी!

ग्रीश्का ने उसे ज़रा देर तक सन्देहभरी दृष्टि से देखा और फिर बोला, जैसे कि मन के अन्दर का विश्वास मुखर हो रहा हो—"मुझे नज़र नहीं आता कि तुम झगड़े के कारण जेल गये होगे! तुम हो पक्के चोर और चोरी से कभी बाज आओगे नहीं, यानी हमेशा जेल में सड़ोगे।"

"खैर, जेलों में भी तो आदमी ही रहते हैं," ल्योश्का ने बदन तोड़ते हुए सुस्ती से ज़वाब दिया।

दिमीत्री स्त्रेपेतोव—हमारा छठा साथी उम्र में हम सबसे बड़ा और सबसे गम्भीर है। क़द लम्बा है। नाक नक्शे से रूखापन टपकता है। चेहरे से ताक़तवर भी लगता है और जिद्दी भी। काम ओर्योल में करता है, पर घर उसका नोवोसिबीर्स्क में है और माँ-बाप वहीं रहते हैं। उम्र बाईस साल है। पढ़ाई सातवें तक की है और धन्धे तीन

जानता है, यानी मोटर चलाना, ट्रैक्टर चलाना और इंजन के इंजीनियर के काम में हाथ बँटाना। मेरे ख़्याल से तीनों धन्धे काम के हैं। कहना न होगा कि उसने चमड़े के बैग से सर्टिफिकेट और ड्राइविंग लाइसेंस निकालकर दिखलाये तो डाह से हमारे चेहरे स्याह पड़ गये। यह है आदमी कि कहीं भी चला जाये इसका महत्व बना रहेगा और जहाँ भी जायेगा आराम से रहेगा।

इस पर भी दिमीत्री स्त्रेपोव को देखकर मुझे सबसे अधिक हैरानी होती है। पता नहीं क्यों, वह बहुत ही परेशान-परेशान सा, बौखलाया-बौखलाया रहता है। मुझे सन्देह है कि कुछ न कुछ गड़बड़ है कहीं, और कोई न कोई चीज़ है जो उसका मन बराबर मथती रहती है। वह घण्टों खिड़की के पास खड़ा होकर बगल से गुजरते तार के खम्भे देखता रहता है। बात साफ है। उसका मन बेचैन है। वैसे हमारे इस घुटन से भरे छोटे से पिंजड़े में पंख सीधे करने की भी गुँजाइश नहीं है। हो सकता है कि इसी कारण वह अपने को घुटा-घुटा अनुभव करता हो। यदि यह नहीं तो एक दूसरा कारण भी हो सकता है। उसकी मातृभूमि का इलाका जल्दी ही शुरू होनेवाला है। सम्भव है कि उसका मन उद्वेलित मात्र इस कारण से हो।

दिमीत्री ने वस्योक को जैसे गोद ले लिया है और वस्योक उससे बहुत ही अपनायत मानने लगा है। यहाँ तक कि दिमीत्री विचारों में खोया-खोया सा खिड़की के पास खड़ा रहता है तो वह भी उसकी बगल में जा खड़ा होता है और बाहर देखने लगता है—

"दिमीत्री, साइबेरिया में चिड़िया-चेरी उगती है?"

"क्यों, क्यों नहीं होती, होती है।"

"उसके फूलों की महक मुझे बहुत ही अच्छी लगती है..."

होते-होते कुछ ऐसा हो गया है कि हम दिमीत्री के हर सुझाव पर हाँ कर देते हैं, और उसके हुक्म बाकायदा मानते हैं। यहाँ तक कि समझदार, आज़ाद-तबीयत इवान बुगाई तक चुपचाप उसकी बात मान लेता है। पर दिमीत्री अपना यह अधिकार हम पर लादता कभी नहीं। वह बड़े भाई की तरह सिर्फ़ हमें रास्ता दिखलाता है।

गाड़ी मास्को के बाहर निकली कि अपने आप को सयाना माननेवाले हम सबने सिगरेटें सुलगा लीं। यहाँ तक कि वस्योक भी दूसरों की देखादेखी करने लगा, गोकि आज के पहले सिगरेट उसने होठों से शायद ही कभी लगाई हो। हमारे डिब्बे से धुएँ के बादल पर बादल उमड़कर बाहर जाने लगे। कण्डक्टर चाचा कोस्त्या सामने आया और कमर पर हाथ रखकर एक मिनट तक हम लोगों को ताज्जुब से देखता रहा। हम बैठे शान्त भाव से धुआँ उड़ाते रहे।

"देखो, काठ के उल्लुओ," वह बोला और फिर केवल दिमीत्री की ओर देखने लगा—"दुबारा मैं न देखूँ, समझे न! और, तुम्हें... तुम्हें मैं इनका सरदार तैनात करता हूँ।"

"ठीक है, मंजूर, चाचा!" दिमीत्री मुस्कराते हुए बोला।

और कण्डक्टर बाहर चला गया तो सिगरेट का जला हुआ टुकड़ा जूते के तल्ले पर रगड़ते हुए वह हम सबसे कहने लगा—"लड़को, बहुत हो गया। अबसे सिगरेट पीनी होगी तो हम सब बाहर पियेंगे। ठीक भी है, इतनी औरतें और इतने बच्चे हैं हमारे आसपास। यहाँ धुआँ उड़ाना ठीक नहीं। और, वस्योक, जहाँ तक तुम्हारा सवाल है, तुम बहुत छोटे हो... इतनी अच्छी तम्बाकू तुम्हें इस तरह बरबाद नहीं करनी चाहिए।"

इसके बाद हमने एक बार भी सिगरेट डिब्बे के अन्दर नहीं पी।

दिमीत्री और वस्योक शतरंज खेलते हैं तो मुझे देखने में बड़ा मजा आता है। वस्योक है तो लड़का, पर है दिमाग़ का बहुत तेज और बहुत होशियार, यानी एक, दो, तीन, और दिमीत्री को पता भी नहीं चल पाता कि मात! दूसरी ओर, दिमीत्री का दिमाग़ बहुत ही धीरे-धीरे काम करता है। माथे पर बल पड़ जाते हैं। मामूली से मामूली चाल पर देर तक सिर धुनता और अपनी गाँठोंवाली उँगलियों से मोहरे ही बदलता रह जाता है। बात यह है कि वह है लीवरों, स्टीयरिंग-चक्कों और पटरियोंवाला आदमी। यह खुदे हुए बारीक मोहरे और यह अक्ल का खेल उसके बस की बात नहीं। अनगिनत बाजियाँ हार चुका है, पर मानता नहीं। हमेशा अधिक से अधिक खेलने को उत्सुक रहता है। वस्योक का क्या, वस्योक खुश होता और अपने को बादशाह समझता है।

यह तो रही शतरंज। ताश भी दिमीत्री को फलता नहीं। वह ल्योश्का के लिए आदर्श साथी है। खेलता है तो ज़रूरत से ज़्यादा विश्वास से। रमा रहता है सिर्फ़ अपने पत्तों में। चिन्ता नहीं कि ल्योश्का उसके इक्के को तुरुप से पीटता है या मामूली पत्ते से।

इस तरह अलग-अलग स्वभाव के हम छः लोग एक ही डिब्बे में एक ही मंजिल तय कर रहे हैं। हममें आपस में खासी दोस्ती हो गयी है और कुल मिलाकर हम खासे खुश है। ग्रिगोरी को छोड़कर हम पाँचों गाड़ी के रेस्तराँ में जाते हैं, सस्ते से सस्ते शोरबे का आर्डर देते हैं, दूसरे कोर्स के लिए चाय मँगवाते हैं और सबके खाकर चले जाने के बाद भी डटे बैठे रहते हैं। फर्स्ट क्लास के डिब्बों से गुजरते समय हम दरवाज़े भड़ाक से बन्द करते और इस तरह ज़ोर-ज़ोर से पैर पटकते हैं, जैसे कि किसी को चुनौती रहे हों। स्टेशनों पर उतरते हैं तो दुकानों पर सामान बेचनेवाली औरतों से मोलभाव करते, नमूने के तौर पर मुट्ठी-मुट्ठी भर सूरजमुखी के बीच और बेर ले लेते और गाड़ी के क़ायदे से चल पड़ने के बाद ही उछलकर कम्पार्टमेण्ट में सवार होते हैं। चाचा कोस्त्या हमें गार्ड कहता है।

गाड़ी की बगल से कौंधते हुए से गुजरते हैं, पटरी पर काम करनेवालों के केबिन, साइडिंग और किलोमीटर की संख्या बतानेवाले खम्भे। उनके चारों ओर सफ़ेद सितारे होते हैं और लाल पत्थरों का घेरा। कभी-कभी हमारी नज़र दो बर्च के पेड़ों के बीच

टँगे प्लेकार्डों पर पड़ जाती है। पटरियों का मुआइना करनेवाले कर्मचारी हाथ उठाकर खड़े दीखते हैं। इनके हाथों में छोटी-छोटी, पीली झण्डियाँ होती हैं।

हम आगे ही आगे बढ़ते जाते हैं।

जो कुछ होता है,
अच्छा ही होता है?

किसी ने मुझे झकझोरा—"तोल्या, तोल्या, उठो... सुनते हो कि नहीं?"

मैंने आँखें खोलीं तो ल्योश्का का गोल चेहरा सामने दमकता देखा। पूछा—"क्या बात है?"

"रूबल तो नहीं हैं तुम्हारे पास?"

"क्यों?"

"अगर हों तो उन्हें भूलकर भी पैन्ट की जेब में न रखना। एक अजूबी चिड़िया आसपास मँडरा रही है, मैंने देखी है। अच्छा हो कि रूबल गिनकर मुझे दे दो। मैं सम्भालकर रख लूँगा। मेरे पास से उसकी क्या मजाल कि चुरा ले। तुम मेरा विश्वास नहीं करते? तो न सही, जैसा तुम्हारा जी चाहे वैसा करो। तो, ठीक, अन्दरवाली जेब में रख लो। अब ठीक है। अब सो जाओ। मैं निगाह रखूँगा।"

"ल्योश्का, सुनो, इवान की घड़ी इसी ने हाथ से काट ली थी क्या?"

"नहीं।"

"तुम्हें कैसे पता?"

"घड़ी तो किसी और ने ही काटी। मैं जानता हूँ, पर बतला नहीं सकता सो जाओ।"

ल्योश्का नीचे बैठा और बर्थ पर बोरे की तरह ढह पड़ा। मैंने फिर सोने की क ेश की, पर नींद जैसे पर लगाकर उड़ गयी। बड़ी घुटन-घुटन सी होने लगी।

कम्पार्टमेण्ट ज़ोर-ज़ोर से लहराता रहा और ऊपर के बल्ब से हल्की-हल्ल रोशनी छनती रही। हवा से पैरों के नीचे के कपड़ों और पैरों के पसीने की बास ंती रही। बर्थों से छोटे-बड़े, अलग-अलग नापों के पैर गलियारे की ओर निकले र —इनमें से कुछ पैर नंगे, तो कुछ के मोज़े फटे हुए और अँगूठे छेदों से झाँकते हुए। क बर्थ पर दो व्यक्तियों का गुमान हुआ—मर्द के पैर बड़े, तो औरत के मोज़ों से ढ हुए। औरतें और बच्चे अपने-अपने बण्डलों पर सोते रहे। वातावरण बड़ा बुरा गा। साँस सी फूलने लगी।

मैं बर्थ से नीचे उतरा और कम्पार्टमेण्ट के पायदान पर निकल आया। झटके से दरवाज़ा खोला तो सिर चक्कर खाने लगा। पहियों की भयानक गड़गड़ाहट कानों में पड़ी और आकारहीन छायाएँ झपटती हुई बगल से गुजरने लगीं। बरसात के कारण

हत्थे गीले मिले। दो-चार बड़ी-बड़ी बूँदें मुझपर भी पड़ीं। सहसा ही बिजली कौंधी तो कुछ क्षणों के लिए सड़क के किनारे के खम्भे, बड़े गोल पत्थर, घास की झुकी हुई गर्दनें और, नीचे उतर आये से, फटे-फटे बादल चमक उठे। हवा में ऐसी ताजगी का अनुभव हुआ कि बतलाऊँ तो कोई सच न माने। हर ओर देवदार की राल और बिजली की कड़क से कँपकँपाती हुई प्राण वायु बजती लगी।

गाड़ी धुआँधार रफ़्तार से हिलती-डुलती, लहराती आगे बढ़ती रही। मैं देखने को झुका तो हवा से साँस फँसने लगी। जैसे-तैसे एक बार नज़र दौड़ायी तो गाड़ी एक जगह मोड़ खाती देखी। मामूली इंजन की जगह ट्रेन खींचता मिला बिजली का ताकतवर लोकोमोटिव—खूबसूरत, धुएँ का नाम नहीं। इस सफ़र में ज़्यादातर बिजली का लोकोमोटिव ही हमारी गाड़ी में लगा रहा है। योरोप में अब तक भाप के इंजन भकभकाते हैं, पर हमारे यहाँ बिजली के लोकोमोटिव काम करते हैं। यह लोकोमोटिव सुन्दर और ताकतवर होते हैं, और धुआँ नहीं देते। इसके साथ ही यहाँ जेट हवाई जहाज़ों और ऊँचे तनाववाली बिजली की लाइनों पर भी अक्सर ही निगाह पड़ी है।

मैं नहीं बतला सकता कि साइबेरिया का इलाका ठीक-ठीक कब और कहाँ शुरू हुआ, पर यह ज़रूर है कि आज हम साइबेरिया के बीच से गुजर रहे हैं और मैं इस समय इस सच्चाई का अनुभव कर रहा हूँ।

देश विशाल है। स्कूल में कोई कितना भी इसकी लम्बाई-चौड़ाई के बारे में बके, और कितनी भी बार-बार कालीनिग्राद और बेयरिंग जलप्रणाली के बीच की दूरी नापे, पर इस विशालता का अनुमान इस तरह होने से रहा। इसे जानने-समझने के लिए तो ज़रूरी है कि आदमी हमारी तरह गाड़ी पर सवार हो और एक छोर से दूसरे छोर तक सफर करे। हमने दिन के दिन और रातों की रातें दौरे में बिता दी हैं। यहाँ के बँधे-बँधाये जीवन में एक तरह का घरेलूपन सा आ गया है। चलाई-फिराई और हरकत अधिक न होने से हाथ-पैर सुन्न पड़ गये हैं। यहाँ तक कि हम बाहर निकलकर स्टेशनों पर टहलते हैं तो जैसे ज़रा-ज़रा लड़खड़ाते हैं। खेतों, जंगलों, दलदलों और मैदानों के अनन्त इलाके हम पार कर आये हैं। पर, प्रशान्त महासागर तक की आधी दूरी भी अभी तक तय नहीं हुई है। स्टेशनों की गिनती घट गयी है। रास्ते में सिर्फ़ मैदान ही मैदान और जंगल ही जंगल फैले पड़े हैं। हर जगह दृश्य लगभग एक सा ही है। सिर्फ़ यह है कि विस्तार बढ़ गये हैं। लोग कम नज़र आते हैं। आदमी के नाम-निशान घट चले हैं।

मैं अँधेरे में निगाहें गड़ाता हूँ। बड़ा अज़ीब-अज़ीब सा लगता है। आसमान में न कहीं कोई प्रकाश है, और न किसी तरह की कोई चमक। कल्पनातीत प्रदेश फैला हुआ है सामने, शान्त। धड़कनें बजती हैं। फूल सा खिल रहा है। दल के दल पशु-पक्षी हैं जहाँ-तहाँ। इलाके की आँखें खनिजों और झीलों से दमकती हैं, जैसे कि किसी के इन्तज़ार में हों। क्या हम सब ठीक ही साइबेरिया जा रहे हैं? क्या जो कुछ होता है,

अच्छा ही होता है? सवाल का ज़वाब मेरे पास नहीं हैं। पर, मन में अजब तरह की एक लहर ज़रूर लहरें ले रही हैं। आज पहली बार मुझे साइबेरिया की साँसों की गाँठों का अनुभव अपनी साँसों में हुआ है।

रोशनियों का शहर–

पहले दूर आसमान में हल्की सी चमक नज़र आयी। फिर दूर एक रोशनी झिलमिलायी और दूसरे ही क्षण कोई परी दौड़ती हुई गाड़ी के चारों तरफ़ प्रकाश छितराने लगी। होते-होते हर चीज़ चमचमाने लगी। चाचा कोस्त्या जमुहाई लेता बाहर आया। हत्थे पोंछे, लालटेन जलायी और दरवाज़े के बाहर झाँककर देखा।

उसके पीछे-पीछे आया दिमीत्री स्त्रेपेतोव। देखने में बहुत बिखरा-बिखरा और परेशान लगा। यानी नोवोसिबीर्स्क नियराया तो वह उत्तेजित हो उठा। पूछने लगा–"मेरे साथ शहर चलोगे? तुम नहीं जानते कि कितना खूबसूरत शहर है यह। तुम कुछ भी नहीं जानते।"

हम गाड़ी से कूदे और ज़मीन के नीचे के गलियारे से स्टेशन की इमारत की ओर दौड़े। झाड़-फानूसों, संगमरमरों और शीशे की चादरों की जगमगाहट से आँखें चौंधियाँ उठीं। सच बात तो यह है कि स्टेशन का ऐसा महल मैने आज के पहले कभी न देखा था। जीवन की सारी सुख-सुविधा ठौर की ठौर मिली–हर चीज़ शानदार और करीने से सजी लगी। इतनी देर हो जाने पर भी बाल काटने की दुकान, रेस्तराँ और बाकी सभी स्टालें खुली रहीं।

"यह सोवियत संघ का सबसे अच्छा रेलवे स्टेशन है," दिमीत्री अस्पष्ट स्वरों में बोला, "आओ, चलें।"

हम जल्दी-जल्दी बाहर निकलकर स्क्वायर में आये और फिर सड़क की पटरी के किनारे-किनारे चलने लगे। शहर काफ़ी खुला हुआ नज़र आया। वातावरण में शान्ति और ठण्डक का अनुभव हुआ। हवा ग्वोज्दीका फूलों की महक पास लायी। सड़क के पार के अपार्टमेण्टों वाले बड़े-बड़े घरों में किसी-किसी खिड़की में यहाँ-वहाँ बीच-बीच में रोशनी दिखाई पड़ती। उस जगह को देखकर सिर तान कर, शान से ज़रा धीरे-धीरे क़दम बढ़ाने का मन हुआ।

"वहाँ... वह वहाँ है मेरी दादी का घर!" दिमीत्री ने उत्तेजना से भरकर इशारा किया, "कितनी बेवक़ूफ़ी की बात है कि मैंने तार तक नहीं दिया, वरना वे स्टेशन आ गयी होतीं... और, ऐन वहीं पर रहती है मेरी बहन... दस मिनट का रास्ता है... ओह..."

"टैक्सी ले ली जाये," मैंने कहा, "गाड़ी यहाँ पचास मिनट रुकती है। बहुत वक्त है।"

"टैक्सी?" उसने सहमी हुई नज़र से मेरी ओर देखा, "नहीं, मैं टैक्सी नहीं कर

सकता। तुम बात नहीं समझते... शहर खूबसूरत है, है न, बोलो! यह है साइबेरिया। समझ में आयी बात? बोलो न!"

लेकिन, मैं किसी भी चीज़ की सराहना ढोल पीटकर कभी भी नहीं कर पाता। हाँ, शहर खूबसूरत है, बहुत खूबसूरत है... हम कुछ देर तक चुपचाप स्क्वायर में खड़े रहे। दिमीत्री किसी बात को लेकर अपने मन से लड़ता रहा और मैं चारों ओर देखता, आहट लेता और रतनारी छटा के सौरभ से अपनी साँसें बसाता रहा।

आख़िर वह टैक्सी क्यों नहीं लेता? और, मैं समझता क्या नहीं? दिमीत्री का पूरे का पूरा व्यक्तित्व एकदम बदला हुआ जान पड़ा।

अचानक ही वह लौटा और मुझे अपने साथ-साथ घसीटते हुए स्टेशन की ओर लपक चला। पर क्षण-क्षण पर ठिठकता, मुड़कर पीछे की ओर नज़रें गड़ाता और फिर दौड़ने लगता।

आख़िरकार हम अपने घुटनवाले डिब्बे में वापस आ गये। यहाँ दिमीत्री ने अचानक ही अपना थैला उठाया और दरवाज़े की ओर झपटा। पर मैंने बढ़कर जैसे-तैसे उसकी जैकेट का पल्ला थाम लिया और पूछा—"जा कहाँ रहे हो?"

"मैं गाड़ी से उतर रहा हूँ।"

"पागल हो गये हो क्या? कान्ट्रैक्ट का क्या होगा?"

"करने दो उन लोगों को मेरा इन्तज़ार। जब तक वे मेरी राह देखें-देखेंगे, तब तक मैं कमाकर पेशगी की रकम अदा कर दूँगा। जाने दो मुझे।"

"दिमीत्री, तुम्हें हो क्या गया है?"

"जाने दो मुझे!"

"बैठ जाओ। थैला नीचे रख दो। आख़िर जब तुम रवाना हुए थे तो तुमने सोचा क्या था? यही न कि वहाँ का काम खत्म करने के बाद लौटेंगे। तो, फिर, अब यह पागलपन क्या है? बेकार की बेवक़ूफ़ी छोड़ो।"

दिमीत्री नीचे ढह सा पड़ा और थैला ज़मीन पर रखकर कभी इस खिड़की पर नज़र दौड़ाने लगा तो कभी उस खिड़की पर। ठीक इस समय ऐलान हमारे कानों में पड़ा—"व्लादिवोस्तोक की गाड़ी छूटने में पाँच मिनट बाकी है। कृपया अपने-अपने टिकट सहेज लीजिये।"

बाकी पाँचों मिनट मुझे दिमीत्री को पकड़े रहना पड़ा, सो मैं पकड़े रहा। पता नहीं इस बीच मैंने उससे कहा-सुना क्या! वैसे उसने कुछ सुना भी नहीं। अन्त में गाड़ी धीरे-धीरे रेंगने लगी और फिर हमारे चारों ओर रोशनियाँ फैलने लगीं। होते-होते उनकी गिनती घटने लगी और फिर वे एकदम आँखों से ओझल हो गयीं। हमारी गाड़ी नये सिरे से अँधेरे में दौड़ लगाने लगी।

हो सकता है कि दिमीत्री की उत्तेजना और उन्माद से मैं परेशान हो उठा होऊँ, पर मेरे मन की इस चंचलता में नोबोसिबीर्स्क की याद का भी हाथ कुछ कम न रहा।

जगह ऐसी सुन्दर है कि कल्पना में बसे नगर सी लगती है।

मैंने दिमीत्री से पूछा—"पर तुम गाड़ी से उतर जाना क्यों चाहते थे?"

"जानते हो तुम कि हम जहाँ जा रहे हैं, वह जगह कैसी है? रीछ-भालुओं के रहने लायक तो है नहीं।"

"तुम डर रहे हो?"

"ज़रा ठहर जाओ... जान छुड़ाकर भाग खड़े होने को रोओगे और भाग नहीं पाओगे। ठीक है, मैं डर रहा हूँ, तो क्या हुआ?"

मैंने मन ही मन सोचा—"यह दिमीत्री स्त्रेपेतोव है—हमारा सरदार—सख्त, सयाना और इरादे का पक्का! शायद मेरे कान मुझे धोखा दे रहे हैं?"

"दिमीत्री, मैं कहता हूँ कि तुम झूठ बोल रहे हो।"

"हाँ, मैं झूठ बोल रहा हूँ। पर तुम मुझसे अब कुछ पूछो-ताछो नहीं। और, याद रखो कि नोवोसिबीर्स्क लेनिनग्राद से भी अच्छा है और मास्को से भी। पर किसी दिन सारे का सारा साइबेरिया हो जायेगा ऐसा, मानते हो? तैगा के स्टेशन पर मेरा एक दोस्त रहता है। मैं वहाँ उतर जाऊँगा और वापस चला जाऊँगा। हाँ, मैं वापस चला जाऊँगा।

दिमीत्री ने झूठ का इकरार कर लिया, पर जाने क्यों मेरा मन बेचैन हो उठा। सच तो यह है कि मेरी समझ में कुछ न आया।

पहिये खड़खड़ाने लगे। थुलथुल ल्योश्का मस्ती से बर्थ पर पसरा तो कपड़े पहने ही पहने सो गया और उसके बूट जब-तब हमारी गोद में आ ठहरने लगे। मक्खीचूस ग्रीश्का अपने बण्डल कलेजे से सटाये बेचैनी से हिचकोले खाने लगा। इवान बुगाई उठकर बैठ गया, एक क्षण तक हमें भावहीन दृष्टि से देखता रहा और फिर बुदबुदाया—"मुँह बन्द करो, दोगले कहीं के।" इसके बाद बदन खुजलाया, नाक सुड़की और समझदार आदमी की तरह चुपचाप सो गया।

हम बैठे बातें करते रहें। प्रायः विषय यह रहा कि आदमी को अपनी इच्छाओं को अपने वश में रखना चाहिए या नहीं? वैसे मेरी इस बात में कोई बड़ी आस्था न थी, पर जैसे भी हो दिमीत्री का दिल बहलाते रहना मुझे अपना कर्तव्य लगा। उसने मुझे अपनी जीवनी सुनायी। इंजन ड्राइवर के रूप में काम किया तो एक बार लाल रोशनी के सामने लगभग फट सा पड़ा। इसके बाद फ़ौज में नौकरी की और नोवोसिबीर्स्क लौटने पर भूवैज्ञानिक अभियान दल के साथ काम करनेवाली एक लड़की के प्रेम में फँस गया—

"मैं कुछ भी तो न जानता था। उससे बातें किस चीज़ के बारे में करना—इंजनों, मशीनगनों, बन्दूकों के कुन्दों और सधी हुई नज़रों के बारे में?"

"खैर, तो हुआ क्या?"

"मैं फिर इंजिन चलाने का काम करने लगा। अब मैं एक-दो दिन से अधिक घर

पर कभी ठहरता नहीं। सिर से पैर तक कालिख से नहाया ऊपर से रहता। पर वह इस पर भी मुझे प्यार करती। वह स्वयं भी अभियानदलों के साथ अक्सर ही बाहर ही बाहर बनी रहती। आख़िर हमने शादी ही क्यों की? उसका अधिकांश समय तैगा में बीतता और इसीलिए यह तैगा मुझे फूटी आँखों न सुहाता। ज़िन्दगी कहीं से ज़िन्दगी ही न रह गयी। बंजारों की तरह आइए और बंजारों की तरह चले जाइए। फिर हम ओर्याल चले गये और वहाँ एक दूसरे से अलग हो गये। आजकल हर आदमी साइबेरिया जाता है। पर, उसके और साइबेरिया के बीच अधिक से अधिक दूरी रखने के लिए मैंने साइबेरिया के बजाय उसे ओर्योल पार्सल कर दिया। वहाँ मैं लारी चलाता रहा। लोगों ने मुझे रहने को फ्लैट दिया, पर वह कुछ जमा नहीं। ख़ैर, गरज यह कि हमारा तलाक हो गया और इस तरह सारा खेल खत्म हो गया। फिर वह अपने तैगा वापस चली गयी और मैंने... इस कान्ट्रैक्ट पर दस्तखत कर दिये।"

सबेरा हो गया, पर हमारी बातें कि चलती ही रहीं। गाड़ी तैगा के स्टेशन से गुजरी। वहाँ के सौन्दर्य में एक तरह की कठोरता का अनुभव हुआ। हवा की ताजगी में ऐसा तीखापन और राल की गन्ध घुली लगी, जैसे कि आँधी-पानी अभी-अभी निकला हो।

दिमीत्री गाड़ी से उतरा नहीं।

वस्योक ने ज़िन्दगी देखी!

दोपहर ढले ल्योश्का और वस्योक रेस्तराँवाले डिब्बे में गये। कोई दो घण्टे बाद वस्योक अकेले लौटा तो नशे में चूर। अब वह लगा रह-रहकर बुरी तरह खाँसने और कभी इस बर्थ तो कभी उस बर्थ से अपना सिर टकराने। और, आने को भी वह खुद तो क्या आया, एक इन्स्पेक्टर उसे पहुँचा गया। इन्स्पेक्टर भी उसे लेकर डिब्बे-डिब्बे पूछता फिरा—"यह लड़का आपके कम्पार्टमेण्ट का है?"

वस्योक को देखते ही हमारे मुँह आश्चर्य से खुले के खुले रह गये। बगल की कोमल दिलवाली औरत पास आयी तो उसके गले में शब्द अटकने लगे। बोली—"ओह, लड़का है... बिल्कुल लड़का है... कैसी कच्ची उम्र है! तुम... तुम छिछोरो, गुण्डों, तुम्हें शर्म नहीं आती। लड़के की ऐसी हालत हो गयी और तुम हाथ पर हाथ रखे एक दूसरे का मुँह देखते रहे।"

वस्योक बुरी-बुरी गालियाँ बकने और सिगरेट माँगने लगा। ग्रिगोरी नफरत से पीछे हटा, अपनी बर्थ पर सिमट बैठा और काले नाखूनवाली उँगली से उसकी तरफ़ इशारा करते हुए बोला—"देखो, इसकी जेबें उलटी हुई हैं। सारी रकम मार दी लोगों ने।"

"चलो तो तामलोट जैसा मुँह तोड़ दिया जाये इस ल्योश्का के बच्चे का!" बुगाई गुस्से से लाल होकर चीखा। उसके नथुने फड़कने लगे।

वस्योक रह-रहकर कराहने और कँपकँपाने लगा। सभी की आँखें हम पर गड़ गयीं।

हम तीनों उसे उठाकर मुँह-हाथ धोनेवाले कमरे में ले गये और सिर ठण्डे पानीवाले नल के नीचे कर दिया। इसके बाद कम्पार्टमेण्ट में वापस लाये और दिमीत्री के थैले का तकिया बनाकर उसे लिटा दिया। अब मुझे उसकी देखरेख के लिए छोड़, ल्योश्का से समझने-बूझने के ख़्याल से, दिमीत्री और बुगाई रेस्तोराँ के डिब्बे की ओर लपके।

वस्योक सिर इधर-उधर झटकने और छोटी मेज से टकराने लगा। होते-होते तबीयत बुरी तरह गिर गयी तो चाचा कोस्त्या दौड़ा-दौड़ा आया और सारी हालत देखकर लगा हमें बुरा-भला कहने और गालियाँ देने।

मैं वस्योक को फिर मुँह-हाथ धोने के कमरे में ले गया। इसके बाद उसका जी ज़रा सम्हला और उसे नींद आ गयी। मैंने जेबें खखोरीं तो पता चला कि उसके सत्तर के सत्तरों रूबल गायब हैं।

इसी समय चाचा कोस्त्या आया और उसके इशारे पर मैं उसके पीछे-पीछे कण्डक्टरवाले डिब्बे में आ गया। चाचा कोस्त्या बोला—"हाँ, तो सब कुछ मैंने धोया, साफ किया... किया न? अब मुझे रिपोर्ट लिखनी है... तो लिख ली जाये रिपोर्ट भी—'मुसाफिर-गाड़ी के डिब्बे में गन्दगी फैलाने और करनें के बारे में।"

बात उसने गम्भीरता से कही और इसके साथ ही ज़ोर देकर कानून की दुहाई दी—"मामला यह है। जुर्माना देना पड़ेगा। इससे छुटकारा नहीं।"

मैं आँखें फाड़े खड़ा रहा। चाचा कोस्त्या क़ागज़ पर जाने क्या गोदने लगा।

"दरवाज़ा बन्द कर दो, सुनते हो?... देखो, काठ के उल्लुओं, बेकार के हो-हल्ले की ज़रूरत नहीं। मैंने कुछ नहीं देखा, और अगर किसी और ने कुछ देखा-सुना है तो उससे उसे कोई मतलब नहीं। बस, एक दस रूबल का नोट इधर करो और आराम से सफर करते चले जाओ। समझे?"

मेरा चेहरा गुस्से से तमतमा उठा। मैंने मशीन की तरह दस रूबल का नोट निकाला, उसकी ओर बढ़ाया और वहाँ से चल खड़ा हुआ। इस समय मुझे ऐसा लगा जैसे कि किसी ने मुझ पर एक बाल्टी ठण्डा पानी उछाल दिया हो। कोस्त्या सचमुच 'चचा' निकला।

अब सबसे बड़ी चिन्ता मुझे यह हुई कि बुगाई और स्त्रेपेतोव रेस्तराँ के कमरे में झगड़ा करेंगे तो शायद गिरफ़्तार कर लिये जायेंगे और फिर किसी स्टेशन पर उतार दिये जायेंगे। सो मैं रेस्तराँ के डिब्बे की ओर झपटा। रास्ते भर सोचता रहा कि वहाँ जहाँ-तहाँ शीशा पड़ा होगा, तश्तरियाँ प्याले चूर-चूर हो गये होंगे और मेजें उल्टी-पल्टी पड़ी होंगी।

परन्तु, वहाँ पहुँचा तो मुझे ऐसी शान्ति दिखलाई पड़ी कि मैं तो अचरज में पड़ गया। बहादुर बुगाई और दिमीत्री कोने की मेज के पास बैठे... दमकते हुए चेहरेवाले ल्योश्का के साथ पीते नज़र आये। ठीक सामने की कुर्सी के ऐन सिरे पर बैठा, उनकी ओर होशियारी से ताकता दीख पड़ा एक दूसरा आदमी। आदमी कि उसकी क़मीज़

की आस्तीनें छोटी, कॉलर खुला हुआ, बाहों में गोदने और गोदनों में कब्र, सलीब, पिस्तौल और लंगर की तस्वीरें, साथ ही एक ओर लिखा हुआ—"प्यारी-प्यारी माँ, मैं तुम्हें सदा याद रखूँगा।"

बातचीत इस प्रकार चलती रही—

"सुअर के बच्चे, घड़ी तुमने उड़ायी?"

"नहीं, मैंने नहीं..."

"तुम झूठ बोल रहे हो।"

"मैंने कहा कि घड़ी मैंने नहीं काटी।"

"लेकिन चोर तो तुम हो... है न?"

"हाँ, हूँ।"

"पर क्यों हो?"

"कहने को कह सकता हूँ कि चोरी मुझे पसन्द है, लेकिन इससे क्या?"

"ठीक है, तो हमें अपनी ज़िन्दगी की कहानी सुनाओ।"

"लेकिन यह मैं सूखे-सूखे नहीं सुना सकता... यानी, आधी बोतल हाजिर करो और कहानी सुन लो।"

अब मोलभाव शुरू हुआ और आख़िर को सौदा गिलास भर शराब पर तय हुआ। हर एक ने इसके लिए तीन-तीन रूबल दिये और साथ देने के विचार से अपने लिए बीयर मँगवायी। देखा तो चारों के चारों ने मुझे इस तरह धर पकड़ा और जबरदस्ती बैठाना चाहा कि मैं मेज पर भहरा सा पड़ा। मैंने हर तरह से उनसे लौट चलने को कहा, मगर आख़िर में अपनी ही जान मुश्किल से छुड़ा पाया।

मैं वस्योक की चिन्ता के लिए परेशान डिब्बे में लौटा तो वह ज्यों का त्यों सोता मिला। परन्तु रह-रहकर मेरा मन भारी हो उठता कि मैं इन लड़कों को वहाँ छोड़ आया हूँ और वह वहाँ बैठे चोर की रामकहानी सुन रहे हैं। ख़ैर, तो वे लोग काफ़ी देर से आये, यानी रेस्तराँ के बन्द हो जाने के बाद। इनमें केवल बुगाई दूसरों से कुछ ज़्यादा होश-हवाश में नज़र आया।

"हाँ तो, तुम्हारे नये दोस्त ने क्या-क्या बातें सुनायीं?"

"तोल्या, बकवास मत करो... ज़िन्दगी है कोई... कूड़ा बिल्कुल, गलीज।"

"फिर इतनी देर तक वहाँ जमे क्यों रहे?"

"वस्योक की रकम जो उसकी गाँठ से निकालनी थी।"

"तो मिल गये रूबल?"

"हाँ।"

"कहाँ हैं?"

"शराब में खर्च हो गये।"

बुगाई भेड़ की खाल पर पीठ के बल लेट गया और छत पर दृष्टि जमाये, बहुत

देर तक अपने विचारों में डूबा रहा। उसके यह विचार हमारे इस सफर की तरह ही लम्बे और दुस्तर लगे...

और, फिर सभी तरह के छोटे-बड़े पैर बर्थों से बाहर झूले आ रहे हैं। यहाँ की घड़ियाँ मास्को की घड़ियों से पाँच घण्टे आगे है। वहाँ इस समय बोलशोई थियेटर का पर्दा उठ रहा होगा और सेन्त्रालनी सिनेमाघर के सामने झुण्ड के झुण्ड बौखलाये हुए लोग इधर-इधर देख रहे होंगे कि किसी के पास कोई फालतू टिकट नज़र आये तो खरीद लें। पर न तो अब मैं मास्को लौट सकता हूँ, और न दिमीत्री नोवोसिबीर्स्क या तैगा। पीछे के रास्ते पीछे रह गये हैं।

मैं अपनी मंजिल की चर्चा करना भूल गया हूँ—हम सब ब्रात्स्क पनबिजलीघर के योजना-स्थल को जा रहे हैं।

बुरा यह कि बुरा वह!

सबेरा हुआ। वस्योक अभी सो ही रहा था कि हर एक ने दस से बीस रूबल के बीच दिये और इस प्रकार चन्दा कर उसकी रकम उसकी जेब में डाल दी गयी। कल की पिलाई के कारण आज वस्योक का सिर दर्द से फटने लगा और चेहरा लटक गया। वह बड़ा उदास और खिंचा-खिंचा सा रहा। दिमीत्री स्त्रेपेतोव फिर कम्पार्टमेण्ट के पायदान पर पहुँच गया और पूरे एक घण्टे तक दरवाज़ा खोले खड़ा रहा। बुगाई बात-बात पर चिढ़ने और खीझने लगा। अन्त में उसने भौतिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक निकाली और बरबस उसमें आँखें गड़ाने की कोशिश की। मैंने उसकी जानदार गर्दन पर सधे सिर का पिछला हिस्सा दायें-बायें मुड़ते देखा। सिर्फ़ गोबर का चोथ ल्योश्का सदा की तरह खुश रहा और पेट के बल लेटते और दुनिया पर हँसते हुए उसने एक गाना सा गुनगुनाना शुरू कर दिया। लगा कि यह गाना लिखा कभी नहीं गया और सम्बन्ध इसका एक दूसरी ही दुनिया से है। फिलहाल कोई और काम-धन्धा न होने के कारण मैंने शब्द लिख लिये—

मैं वोल्गा के किनारे हुआ पैदा—
बाप मेरा मछुआरा—
नाते-रिश्तेदारों में एक नहीं जिन्दा—
माँ ने मुझे अपनी साँसों से बड़ा माना—
लेकिन, ज़िन्दगी ने जो रोड़े अटकाये
तो मैंने कभी जीवन में चैन नहीं जाना!

कोई काम, कोई धन्धा कभी नहीं भाया—
लिखने-पढ़ने से मैं सदा कतराया—

बस, एक चोरी-डकैती सीख पाया—
चोरों और डाकुओं के साथ-साथ
जहाँ-तहाँ दौड़ने का पेशा अपनाया!

दल में हुआ शामिल
तो दिन दूना, रात चौगुना मेल बढ़ता गया—
प्यार था दिलेरी से,
इसीलिए कोई अपनायत से मोह गढ़ता गया!
होते-होते एक रात दावत मुझे भी मिली—
काम ज़रा मुश्किल था—
लेकिन, फिर इससे क्या,
मर्द का कलेजा था, बहुत बड़ा दिल था!

रात अँधियारी थी,
बहुत-बहुत काली थी—
काली थी स्याही सी, काली थी धूने सी—
लेकिन, बहादुर भी कहीं घबड़ाता है—
जितना खतरा हो, उतना ही मजा आता है!
यानी,
पूरी डकैती में बहुत लगा होगा
तो लगा होगा घण्टा—
फिर तो सारी लूट सहेजे हम लौटे—
बिल्कुल भेड़ियों की तरह—
खत्म हुआ टण्टा!

और, फिर अकारदीयन की मधुर स्वर-लहरी ने,
वायलिन के तारों ने रँगरेली खूब की—
पास गूँजी छोटी-छोटी धुनें देन्यूब की!..

"मेरा बैग! मेरा बैग! कहाँ है मेरा बैग?"

किसी की चीख दिल चीरने लगी। हम चौंक उठे। हमने देखा कि ग्रिगोरी का चेहरा उतर गया है और वह पागलों की तरह अपनी बर्थ पर रखी चीज़ें इधर-उधर अटक-पटक रहा है। पर, दूसरे ही क्षण, सहसा ही वह नीचे कूदा और उसने लपककर ल्योश्का की गर्दन थाम ली।

"दे, वापस, दे मेरा बैग, चोट्टा, दोगला कहीं का! लौटा मुझे! वापस कर मेरे

रूबल!"

हमारे पड़ोस के लोग उत्सुकता से झाँकने लगे कि आख़िर यह सारा शोरगुल क्या है। पता चला कि ग्रिगोरी का मनीबैग गायब है।

"मैं तेरी गर्दन काट डालूँगा... कहे देता हूँ, काटकर रहूँगा... लौटा, वापस कर मेरा बैग।"

"मेरी जान छोड़, सुनता है?" ल्योश्का ने ग्रिगोरी को एक ओर को ढकेलते और अकड़ते हुए कहा—"जोंक कहीं का, मक्खीचूस! मैं नहीं छूने का तेरे रूबल!"

"वापस कर... मैं कहता हूँ वापस कर दे मेरा बैग, नहीं तो आवाज़ देता हूँ कण्डक्टर को... तेरी निगाह मुझ पर गड़ी रही... मौके की टोह में रहा तू!"

इवान ने और मैंने घसीटकर दोनों को अलग किया और पूछताछ शुरू की। ग्रिगोरी ने बतलाया कि सुबह बैग अपनी जगह था और उसमें पन्द्रह सौ रूबल थे। पर, उसे देखकर तो जैसे घिन छूटने लगी। उसका सारा बदन काँपने लगा और वह पैजामा खोलकर चिल्लाते हुए हमें नारा दिखलाने लगा। इस पर ल्योश्का ने परेशानी और नफरत से मुँह बनाया—"अबे मक्खीचूस, तू है गिलहरी, गन्धाता हुआ बिल्ला! तेरे रूबल छूकर जैसे मैं अपने हाथ गंदे करना पसन्द करूँगा! जा और कहीं जाकर ढूँढ अपनी रकम से भरी थैली!"

"चोर, पापी कहीं का! जेल काट आया है! आ... आ... ह!"

इस तरह कोई पन्द्रह मिनट तक दोनों ओर से फूलों की वर्षा होती रही। ग्रिगोरी बीच-बीच में रोता रहा कि सिसकियों से उसकी आवाज़ फँसने लगी। ल्योश्का ने मुँह चिढ़ाया। इवान बुगाई ने मनीबैग ढूँढना शुरू किया। हमने ग्रिगोरी की बर्थ पर इधर-उधर देखा, बण्डल खखोड़े और दूसरे बर्थों की तलाशी ली। आख़िरकार बैग मेज के नीचे, पाइप के पीछे नज़र आया। ख़्याल है कि ग्रिगोरी के सोते समय नारा टूट गया होगा और वह नाश्ता करने बैठा होगा तो बैग खिसककर नीचे गिर गया होगा।

ख़ैर, तो काँपते हुए उसने लपककर बैग हथियाया, अपनी बर्थ पर चढ़ गया और दूसरे ही क्षण शान्त हो गया। ल्योश्का ने अधूरा गाना फिर शुरू किया, पर आगे के शब्द लिखना मेरे लिए कठिन हो गया। मेरा सारा बदन सिहर उठा और एक ही विचार रह-रहकर दिमाग़ में नाचने लगा कि यह ग्रिगोरी, यह ल्योश्का, यह क्या हैं? यह ऐसे क्यों है? यह आख़िर आये कहाँ से हैं? दोनों में एक-दूसरे से बेहतर कौन है?

अगर कोई मुझे अचानक ही ग्रिगोरी बना देता तो मैं अपने गले में आप फाँसी लगाकर लटक जाता—ईमान से फाँसी लगा लेता। यह बात मेरी समझ में नहीं आती। आख़िरकार कितनी पीढ़ियों के बाद आदमी के अन्दर का यह कुलक अपना दम तोड़ेगा?

और ल्योश्का? और, भला उस चरित्र को क्या कहिए जिसे चोर बनना 'पसन्द हो'! ऐसे लोग अपनी अलग ही दुनिया में रहते हैं। नैतिकता के उनके अपने आदर्श होते

हैं। उनके अपने लोकगीत होते हैं। और, जो उनकी अपनी तरह नहीं होते, वे उन सबको नफरत की निगाह से देखते हैं।

यह ठीक है कि ल्योश्का ग्रिगोरी को कमीना समझता है, पर क्या एक दूसरे से कुछ अच्छा है?

बिस्कुट की छँटाई–

तैशेत! तैशेत!

अब यह शब्द हर आदमी की जबान पर है। तैशेत से ही तो एक नयी ब्रांच रेलवे लाइन लेना प्रदेश को जाती है। अभी तक इसका नाम बहुतों ने नहीं सुना, पर जल्दी ही इसकी जानकारी सारी दुनिया को हो जायेगी। लाइन पूरी होने पर लेना नदी पार करेगी, याकूत्स्क पहुँचेगी, पहाड़ी ढालों से उतरेगी, तुन्द्रा के मैदान मँझायेगी और चुकोतका होती हुई बेयरिंग जलप्रणाली तक बढ़ती चली जायेगी। अब तक केवल एक ही हिस्सा पूरा हो सका है इस प्रकार तैशेत ब्रात्स्क से जुड़ गया है।

मैंने इस लाइन की चर्चा सुन रक्खी है। पर मेरे पास तीन सौ रूबल फालतू है। इसलिए तैशेत में गाड़ी बदलने के बजाय मैंने सीधे इर्कूत्स्क और वहाँ से स्टीमर से अंगारा जाने का निश्चय किया है। कल्पना बड़ी प्यारी लगती है। तैशेत—लाइन के बनने के पहले ब्रात्स्क तक पहुँचने का आम रास्ता यही रहा है।

मेरे साथी तैशेत में उतरकर ब्रात्स्क की गाड़ी की राह देखेंगे, पर मैं सीधा चला जाऊँगा। कभी-कभी सोचता हूँ कि मैं भी इन्हीं के साथ उतर जाऊँ क्या? पर नहीं, मैं नहीं उतरूँगा। एक सप्ताह के अन्दर ही अन्दर तो ब्रात्स्क में सबसे मुलाकात हो जायेगी... हम एक दूसरे के नाम नोट करते हैं—और भला लिखें भी क्या! न पता-ठिकाना कोई उनके पास है, और न मेरे।

सुबह तड़के से पानी बरस रहा है। यहाँ जो कुछ होता है बड़े पैमाने पर होता है। अगर सफर होता है तो इतना लम्बा होता है कि अक्ल खराब हो जाती है; जंगल होता है तो उसका ओर-छोर नहीं मिलता; और, अगर पानी बरसने लगता है तो बूँद टूटने को नहीं आती। सो आज ऐसी वर्षा होती रही है और पानी इस तरह खिड़कियों के शीशों पर बहता रहा है कि इस ठसाठस डिब्बे में भी नमी और ठण्डक घुस आयी है।

अब तैशेत किसी भी क्षण नज़र आता ही है। कामगारों के दल का इंचार्ज अभी-अभी इस डिब्बे से गुज़रा है और लोगों से तैयार होने को कह गया है। ग्रिगोरी हर एक को सता रहा है कि सामान ले चलने के मामले में मेरी मदद करो। लड़के गम्भीर और उत्सुक दीख पड़ते हैं।

"हम वहाँ पहुँचे और तम्बुओं के सिवाय और कहीं कुछ नज़र न आया तो क्या होगा?" वस्योक कहता है।

"फिक्र मत करो, वस्योक, अभी तो तम्बू गाड़ने में मदद देनी होगी तुम्हें," दिमीत्री हँसते हुए उत्तर देता है।

"इंचार्ज ने कहा है कि हम सब इमारती लकड़ीवाले खेमे में जायेंगे। इसे मैं कहता हूँ कायदे की बात!" बुगाई कहता है।

"देखते रहो, हमें तो लकड़ी के लट्ठे घसीटने पड़ेंगे कि घसीटते-घसीटते हमारी आँखें निकल आयेंगी," ग्रिगोरी बुदबुदाया।

"नहीं, हमें तो केक-बिस्कुट के कारखाने में बिस्कुट छाँटने पड़ेंगे," दिमीत्री कहता है।

कुछ मिनट और बीतते हैं और कुछ मकान और चिमनियाँ नज़र आने लगती हैं।

"तैशेत! कारखाने तो देखो।"

"हो न हो यह केक-बिस्कुट वाला कारखाना है। आओ, चलो, लड़को।"

हम हाथ मिलाते हैं। मैं भारी दिल से दिमीत्री से अलग होता हूँ। कुछ है जो अनकहा रह जाता है...

तैशेत में बहुत से लोग उतरते हैं। बाल-बच्चे, खाने पकाने के अरतन-बरतन और खाने की चीज़ों की इटारियाँ-पिटारियाँ लिये-दिये लोग नये बसनेवाले मालूम होते हैं। वर्षा मूसलाधार हो रही है। दलदल घुटने-घुटने तक है। रेल की पटरियाँ गीली हैं, डिब्बे तरबतर हैं और हर तरफ़ भाग-दौड़ मच रही हैं स्टेशन की इमारत नज़र नहीं आती। इंचार्ज लिस्ट निकालकर लोगों के नाम गला फाड़-फाड़कर पुकारता है।

लोग कराहते हुए बक्से, सूटकेस और अण्डल-बण्डल लादते हैं, और एक के बाद दूसरी लकड़ी की धरन लाँघते हुए पटरियों के किनारे-किनारे बढ़ना शुरू करते हैं।

ब्रात्स्क पनबिजलीघर का निर्माण करने के लिए जानेवाले इन लोगों के बीच चला जा रहा है बेचैन दिमीत्री, समझदार इवान बुगाई, काहिल-चोर ल्योश्का, मक्खीचूस ग्रिगोरी और वस्योक। वस्योस तो जैसे दुनिया देखता रहा है।

उन पाँचों में केवल दिमीत्री पीछे मुड़कर देखता और हाथ हिलाता है। दूसरे अपनी-अपनी परेशानियों में डूबे हुए हैं। कुछ जल्दी पानी से किसी छायादार जगह में पहुँचने के लिए बेताब हैं तो कुछ ग्रिगोरी का सामान ठिकाने तक पहुँचाने के लिए हड़बड़ा रहे हैं, और कुछ यों ही डरे और घबराये हुए हैं।

अन्त में : लाख टके की एक बात–

"आदमी के बुरे से बुरे दुश्मन कितने ही हैं। डर उनमें से एक है। यह डर जीवन के उलट-फेरों की सम्भावनाओं से पैदा होता है। जिस आदमी ने बीस साल में अपना कबूतरखाना एक बार नहीं छोड़ा, वह साइबेरिया तो क्या, पास-पड़ोस के जिले में जाने से भय खाता है।

ऐसे में आदमी को कैसा लगता है, यह मैं जानता हूँ। मुझपर बीती जो है! मैं बीस साल तक एक घर में घुसा रहा। केवल स्कूल जाता रहा दस साल कि देखते-देखते अचानक ही चीज़ों में ज़मीन आसमान का अन्तर पड़ गया। सो, कहीं दूर जाने के ख़्याल भर से मैं कैसा घबराया—घरबार छोड़कर जाऊँगा, अजनबी लोगों के साथ, अनजाने परदेश? भला वहाँ क्या करूँगा मैं? कैसे रहूँगा?

मुझे लगता है कि मैंने कदम बढ़ाया तो ठीक वैसे ही कदम बढ़ाया, जैसे कोई आँखें कसकर मूँद लेता है और ठण्डे पानी में हिल जाता है। यह बात आज मैं केवल अपनी आत्मा के सामने स्वीकार कर सकता हूँ। वैसे हमारे यहाँ निर्भयता की परम्परा है और सभाओं और मीटिंगों में भी तरुणों की निर्भयता की बात मैं अक्सर ही सुनता रहा हूँ। पर, मेरा मन अपनी जगह भय से काँपता ही रहा है।

परन्तु, अब मेरे मन में डर नहीं के बराबर है। मैंने निर्भय रहने की सीख ली है गौरेया की तरह मस्त रहनेवाले वस्योक से, जो बिना कपड़े-पैसे की व्यवस्था के घर से चल पड़ा और जिसने एक क्षण को भी यह न सोचा कि आख़िर रहेगा तो रहेगा कैसे, और सिर छिपाने को कहीं ठौर-ठिकाना भी मिलेगा या नहीं? मैंने निर्भय रहना सीखा दिमीत्री स्त्रेपेतोव और इवान बुगाई से। जो असली मुश्किल की कल्पना के सामने भी बिस्कुट की छँटाई के चुटकुले छोड़ सकते और फिर खेमा गाड़ने के काम में जुट सकते हैं।

एक हफ़्ते पहले एक लड़के का दिल डर से बैठ गया था, उसके होश-हवास गायब हो गये थे और वह चीख उठा था—'आख़िर मैं करूँगा क्या? आख़िर मेरा होगा क्या? मैं कारखाने में जाकर काम करूँगा? मैं तेल से चिकटे पेशबन्दों की दुनिया में जाऊँगा?' पर, आज मैं उलटकर उस लड़के को देखता हूँ तो मुझे अचरज होता है, लगता है कि इन कुछेक दिनों में ही मेरी भावनाएँ पक गयी हैं और मैं सयाना हो गया हूँ।

और, अब अगर वीक्तोर दाखिले के इम्तहान में फेल हो गया तो मेरा ख़्याल है कि मैं उसे सलाह दूँगा—'वीक्तोर, साइबेरिया का टिकिट कटाओ और सोने की आम व्यवस्था वाले डिब्बे में सफर करो। बेकार का बोरिया-बिस्तरा बाँधने की ज़रूरत नहीं। तुम्हें चाहिए बदलने को जाँघिया, बनियाइन और एक अच्छा साबुन, और बस! मैं जो कह रहा हूँ, ठीक कह रहा हूँ, बात समझ रहे हो न?

और देखो, डरना नहीं!"

हिस्सा दूसरा

इसके अधिकारी बनो!

दुनिया में पाठ्य-पुस्तकें अनगिनत हैं। हम पहाड़ों, समुद्रों और खनिज-पदार्थों का वर्णन पढ़ते हैं। हमें बतला जाता है कि समकोण त्रिभुज की कर्णरेखा पर बननेवाला वर्ग बाकी दोनों भुजाओं पर बननेवाले वर्गों के योग के बराबर होता है। मिसाल की तौर पर मैं जानता हूँ कि आलटरनेट करेंट, डायरेक्ट करेंट में कैसे बदलती है और मैं वह पृष्ठ आसानी से खोज सकता हूँ जिसपर $F+H_2SO_4$ वाली प्रतिक्रिया की चर्चा है।

पर, जीवन की पाठ्य-पुस्तक भला मुझे कहाँ मिलेगी?

हमारी साहित्य की अध्यापिका बहुत अच्छी थीं। उनका नाम नदेज्दा वसील्येव्ना था। वे जो कुछ पढ़ातीं वह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता और अच्छी तरह हमारी समझ में आ जाता—क्या 'येवूगेनी ओनेगिन' का विचारधारात्मक पहलू, क्या गोर्की की 'माँ' में वर्ग-संघर्ष का चित्रण और क्या शोलोखोव का उपन्यास 'कुँआरी धरती ने अँगड़ायी ली'। यानी, उन विशिष्ट परिस्थितियों में और उन विशेष कालों में जिन चीज़ों का सम्बन्ध जीवन से होता, वे हमारी आँखों के आगे साकार हो उठतीं और समझदारी की उँगली पकड़कर हमारे दिमाग़ में इस तरह क़ायदे से बैठ जातीं, जैसे कबूतरखानों में कबूतर।

लेकिन, आज के जीवन के बारे में, खुद अपने जीवन के बारे में हम कितना और क्या जानते हैं? हमारे शिक्षकों ने बड़ा सिर खपाया और निश्चित समय के अन्दर-अन्दर हमें 'ओनेगिन' भी समझा दिया और 'पेचोरिन' भी। पर, अपने पाठों की योजना में उन्होंने जीवन की चर्चा के लिए एक मिनट भी नहीं रखा। कहने को कहा जा सकता है कि आज के आदमी को कैसा और क्या होना चाहिए, यह तो लगभग सभी जानते-समझते हैं। इसका मतलब यह होगा कि एक साँचा निश्चित है जिसमें आज का हर आदमी ढलता है। लेकिन, साशा और वीक्तोर को ही लें। दोनों की इस विषय में अपनी-अपनी रायें हैं। वैसे तो दोनों ने ही बराबर की मेहनत से 'ओनगिन', 'पेचोरिन' और 'कुँआरी धरती ने अँगड़ायी ली' का अध्ययन किया, पर स्कूल की पढ़ाई खत्म करने के पहले ही एक दूसरे से कट गये।

दीक्षान्त समारोह की पार्टी में हमारे हेडमास्टर ने कहा—'आज आप सब जीवन में

प्रवेश कर रहे हैं। आप सोवियत स्त्रियाँ और सोवियत पुरुष हैं। आपको इस नाम का अधिकारी बनना है, ताकि हमारे विद्यालय को आप पर अभिमान हो सके।"

कहना न होगा कि हममें से हर एक ने 'अधिकारी बनने' का वचन दिया। जहाँ तक हमारे स्कूल के कोम्सोमोल-संयोजक और कोम्सोमोल-कमेटी के सदस्य का सम्बन्ध है, वे मतलब रखते हैं खास तौर पर दो चीज़ों से—एक, चन्दे से, और दूसरे, स्कीइंग की होड़ों से। यानी, मेरे स्कूल की पढ़ाई के इतने वर्षों में केवल एक मीटिंग हुई। मीटिंग हुई, यह सच है। विषय रखा गया, 'सोवियत नागरिक का नैतिक गठन।' मीटिंग घिनौनी और बेजान रही। हमें कितने ही विकट निबन्ध सुनने पड़े। होते-होते सब कुछ हो उठा। एक अप्रिय कर्तव्य का पालन, और मैं नहीं समझता कि इससे प्रेरित होकर हममें से किसी ने भी अपने नैतिक गठन पर विचार किया। और, उन बातों की कहिए, तो आज तो मुझे यह भी याद नहीं कि आख़िर उन निबन्धों में कहा क्या गया था! शायद लोगों ने एक बार फिर कुछ निश्चित पुस्तकों से उदाहरण दिये थे और यंग-गार्डों, पावेल कोरचागिन* और मारेस्येव** की चर्चा की थी।

लेकिन वीक्तोर के पिता ने एक दिन ज़रा ज़्यादा चढ़ाकर हमसे ज़िन्दगी की बात चलायी। बोले—"मेरे प्यारे बच्चो, ज़िन्दगी एक बियाबान जंगल है और इस जंगल में खून के प्यासे जानवर हर तरफ़ उमड़ते नज़र आते हैं। जो अपने पड़ोसी का टेंटुआ सबसे पहले दबा देता है, वह सिरताज मान लिया जाता है। खूबसूरत ख़्याल किताबों में बन्द रहते हैं और बाहरी दिखावे के लिए होते हैं।"

और हाँ, ओस्त्रोव्स्की के 'अग्नि-दीक्षा' और कवेरिन के 'दो कप्तान' को लेकर हमने रातों की रातें काली की हैं। इनका घटना-काल अलग-अलग है। तो ठीक है, अगर हम पावेल कोरचागिन के समय में जीते-जागते तो श्वेत गार्डों से लोहा लेते—ज़रूर लेते! अगर हमें ओलेग कोशेवोई*** के साथ जीने और रहने का मौका मिलता, तो हम फासिस्टों से जूझते। पर, आज तो सवाल है कि इस समय हम क्या करें? काश कि कोई वीक्तोर के पापा के शब्द झुठला दे! मेरी माँ मुझसे अक्सर ही कहती थीं—"चढ़ती उम्र में बड़ा जोश होता है लोग बड़े-बड़े सपने देखते हैं और सब के सब सच्चाई की खोज करना चाहते हैं। पर ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती है त्यों-त्यों चीज़ें हमें अपने साँचों में ढालती जाती हैं और हम उनके आदी होते जाते हैं। इसलिए सबसे अच्छा यह है कि आदमी एक छोटा सा शान्त कोना खोज ले और आराम से चुपचाप जीता जाये। बड़े-बड़े कामों के लिए हम नहीं बने।"

उन्होंने रोते-रोते दिन-रात एक कर दिया। उन्हें लगा कि मैं साइबेरिया गया कि टके का तीन हुआ।

---

* न. ओस्त्रोव्स्की के 'अग्नि दीक्षा' नामक उपन्यास का प्रमुख चरित्र।

** 1941-45 के देशभक्तिपूर्ण युद्ध के उड़ाकू योद्धा। लड़ाई में दोनों पैर जाते रहे तो उन्होंने बनावटी पैरों की सहायता से चलना और उड़ना सीख लिया।

*** क्रासनोदोन के कोम्सोमोल पार्टीजान संगठन का अध्यक्ष। इसे 1943 में जर्मनों ने कोयले की खान में ढकेलकर मार डाला।

अछूती ज़मीनों की चर्चा उभरकर सामने आयी तो हमें अचानक ही कोरचागिन के ज़माने की तूफ़ानी ज़िन्दगी के लहरों का गुमान हुआ और हर आम आदमी की तरह हम भी उत्तेजित हो उठे। पर वीक्तोर के पापा ने ज़िन्दगी की दुहाई देते हुए हमें अक्ल सिखलाई और बोले—"केवल बेवक़ूफ़ जाते हैं इन अछूती ज़मीनों पर काम करनें। दूसरे, यह कि तुम जिस जादू में बँध रहे हो, वह है सिर्फ़ जान-तोड़ मेहनत।" बस, हमारा सारा जोश ठण्डा पड़ गया और हम स्वयंसेवकों पर रहम तक दिखलाने लगे...

वीक्तोर के पापा हमसे ज़िन्दगी के बारे में बातें करने को सदा ही तैयार रहतें हँसते हुए कहते—"बच्चो, ज़रा अपने चारों ओर नज़र दौड़ाओ। कारोबारी लोगों को 'कोरचागिन' की ज़र्रा बराबर भी परवाह नहीं। तुम बच्चे हो। ठीक है, तुम किताबें पढ़ सकते हो तुम आदर्शों की चिन्ता कर सकते हो। पर, दुनियादारों के पास इसके लिए समय कहाँ? उनके सिर पर तो दूसरे ही भूत सवार रहते हैं। आज टके नहीं हैं, तो आज जाड़े के लिए ओवरकोट चाहिए और आज रहने के लिए फ़्लैट की ज़रूरत है। इनमें जो चलते हुए होते हैं, वे देखते-देखते मोटर खरीद लेते हैं और सड़कों पर दनदनाने लगते हैं।"

एक दिन वीक्तोर बड़े ठाठ-बाट से स्कूल आया यानी क्रेप के बक्सुओं वाले बूट और सकरी मोहरी का पतलून डाटे। बोला—"आदमी को ज़िन्दगी मजे से काटनी चाहिए, रस लेना चाहिए और दुख-मुसीबत, गरीबी को काटते रहना चाहिए। बात यह है कि ज़िन्दगी के दिन इने-गिने होते हैं उस पर भी जवानी चार दिन की होती है।"

कोम्सोमोल-संयोजक ने उसे देखा तो 'स्तिल्यागा' यानी छैला का संज्ञा दी। पर, वीक्तोर के माथे पर बल भी न पड़ा। उल्टे समझाने लगा—"कपड़े स्टाइल के हों तो देखने में शानदार लगते हैं, साथ ही साथ आरामदेह भी होते हैं। और तो और, खुद चेखोव ने एक बार कहा कि लोगों को कपड़े ठाठ के पहनने चाहिए। पतलून की मोहरियाँ सकरी हों तो स्कर्टों की तरह पैरों के चारों ओर फड़फड़ाती नहीं। दूसरे, जल्दी फटने-फटाने का भी डर नहीं रहता। जहाँ तक जूतों का सवाल है, तल्ले मोटे हों तो कीचड़-काँदों में अच्छे रहते हैं।" वीक्तोर ने जो कुछ कहा सच ही कहा।

अगर वीक्तोर के पापा की सी आमदनी मेरी माँ की भी होती तो मैं भी ऐसी ही चीज़ें खरीद लेता। लेकिन इसके लिए तो किसी दूसरे का टेंटुआ दबाना ज़रूरी होता है—यही कहा था न वीक्तोर के पापा ने? पर, मैं यह नहीं करना चाहता। बिल्कुल नहीं करना चाहता। मैं नहीं चाहता कि उनकी बात सही उतरे। वे सही कहते हैं क्या?

तो, जीवन की पाठ्य-पुस्तक मुझे कहाँ मिलेगी—भला कहाँ मिलेगी? नहीं, मुझे कोई ग्रंथ नहीं चाहिए, कोई कानूनों की किताब नहीं चाहिए। मैं तो केवल सुनना चाहता हूँ जीवन के बारे में सीधी-सादी, ईमान की ऐसी बातें जो अन्तर से उभरें। मैं तो जानना चाहता हूँ कि आदमी कायदे से, ईमानदारी से कैसे जिये?

आदरणीय प्रधानाध्यापक महोदय, श्रद्धेय आचार्यों, आपने हमें हज़ारों बातें काम

की सिखलायीं, बड़ी जानकारियाँ दीं, धन्यवाद! पर आपने सबसे बड़ी और सबसे महत्व की चीज़ छोड़ दी। शायद आपका ध्यान ही उस ओर नहीं गया। आपने कुछ ऐसा किया कि आगे के जीवन को हम फूलों की सेज और गुलाबों की दास्तान समझने लगे। तो, इस तैयारी के साथ आपने हमें दुनिया के मुँह में झोंका और उपदेश ऊपर से दिया कि 'अधिकारी बनो' योग्य बनो, यानी, अब अपनी ज़िन्दगी आप बनाओ।

अब सवाल है कि भला अपनी ज़िन्दगी हम आप कैसे बनायें?

बाबा आदम के ज़माने की ट्रामें—

"शायद मैं साल या डेढ़ साल साइबेरिया में रहूँगा। इस बीच मैं खूब सारा पैसा पैदा करूँगा और अपने लिए थोड़े से शानदार कपड़े बनवा लूँगा। अपने मन का राजा रहूँगा, इसलिए मेरे पास हर चीज़ का ढेर लग जायेगा। कौन जानता है! हो सकता है कि मोटर खरीद लूँ और तब मास्को लौट जाऊँ। ऐसी हालत में भला यूना क्या सोचेगी मेरे बारे में? और, वीक्तोर, उसका तो मुँह अचरज से खुला का खुला रह जायेगा। जबान लड़खड़ा जायेगी। खैर, तो इससे क्या! ज़िन्दगी के दिन इने-गिने होते हैं और उस पर भी जवानी चार दिन की होती है! शायद ज़िन्दगी की समझदारी सचमुच इसी में है... ज़िन्दगी की समझदारी..."

तैशेत से इर्कूत्स्क तक के बाकी रास्ते में अपने डिब्बे की तीसरी बर्थ पर अकेला लेटा मैं यही सब सोचता रहा—

"'वोल्गा' बड़ी खूबसूरत मोटर होती है। मैं स्टीयरिंग के चक्के के पीछे ढीले-ढाले ढंग से बैठूँगा या मोटर थियेटर के सामने खड़ी कर दूँगा। फिर लड़की को बाजू में बैठालकर हवा पर लहराने की तैयारी करूँगा। कहूँगा—'उछल आओ!' दरवाज़ा खड़ाक से बन्द होगा, और सड़क गले लगाने के लिए हमारी ओर जान छोड़कर दौड़ने लगेगी। यूना पूछेगी—'साइबेरिया में ज़िन्दगी मुश्किल रही, क्यों?..' मैं उत्तर दूँगा—'हाँ, खेल-कूद और हँसी-मजाक तो नहीं ही रही। आदमी में थोड़ा-सा दम तो होना ही चाहिए।'"

आदमी अकेला होने पर इतना मज़बूर क्यों हो उठता है? आदमी इतना कमज़ोर क्यों होता है? ज़िन्दगी में कहीं पहुँचने के लिए इतना लम्बा सफर करना ज़रूरी होता है, और इतने-इतने अजनबी लोगों के कन्धों से कन्धे छिलते हैं! हर आदमी की अपनी एक अलग दुनिया होती है, और वह दूसरों की ओर से बिल्कुल बेख़बर रहता है।

सो, इर्कूत्स्क में पहुँचते ही मेरा सारा उत्साह ठण्डा पड़ने लगा। भीड़-भाड़ और शोरगुल में होश-हवाश गुम हो गये। हर आदमी किसी न किसी दौड़धूप में लगा। खोमचेवालों की आवाज़ों से कान के पर्दे फटने लगे—"गरमागरम समोसे... समोसे गरमागरम!.. पातगोभी का ताजा शोरबा..." हर ओर खुशी की लहरें, हँसी की फुहारें,

फूलों के रंग और चुम्बनों की गूँज! मेरे साथ के सभी मुसाफिरों को लेने कोई न कोई आया। ठौर-ठिकाने का सवाल किसी के सामने न रहा। किसी का वहाँ घर-परिवार था, तो किसी के इष्ट मित्र। अचानक ही मेरा अकेलापन मुझे काटने लगा। मन जैसे टूटने लगा। मुझे लगा कि मैं ही एक ऐसा प्राणी हूँ जिसकी ज़रूरत किसी को नहीं और जो दुनिया का चक्कर काटता फिर रहा है। उस पर मजा यह कि कोई नहीं जानता कि यह चक्कर भी क्यों, किसलिए?

मालूम हुआ कि घाट, पुल के पार, स्टेशन के पास ही है। शानदार अंगारा नदी का पाट चौड़ा, धार तेज और रंग बड़ा सुहाना लगा। मशीन से चलनेवाली और मामूली नावें इधर-उधर चक्कर लगाती दिखीं। सहसा ही स्टीमर ने एक बजरे को आगे घसीटा।

घाट से गरम लकड़ी, धूने और लिसलिसी मिट्टी का भभका उठता रहा। जगह काफ़ी वीरान नज़र आयी। मुंशी की खिड़की के पास मुझे टाइम-टेबिल मिला। देखा तो मालूम हुआ कि आज कोई भी स्टीमर ब्रात्स्क नहीं जायेगा।

पता नहीं मेरी परिस्थितियों में कोई और पड़ जाता तो उसे कैसा लगता! परेशानी तो थी ही, थकान से बदन चूर-चूर अलग से था। उस पर टाइम टेबिल की इस शरारत ने कोढ़ में खाज का काम किया और रही-सही हिम्मत भी ज़वाब दे गयी। मैं पास की उल्टी हुई नाव पर बैठ गया, कपड़े धोती हुई कुछ औरतों का पानी में कपड़े डुबोना देखने लगा और दिमाग़ की तनी हुई नसों को आराम पहुँचाने के ख़्याल से बार-बार अपने मन से बोला—"कोई बात नहीं, सब कुछ ठीक है।"

पहली बात तो यह कि अभी तक ब्रात्स्क के रास्ते में रहा, तो मुसाफिर रहा, यानी यात्री रहा, और तीन सौ रूबल अब तक मेरी जेब में बने रहे। दूसरी बात, मन ने कहा कि आज स्टीमर नहीं मिलेगा तो यह तो और भी अच्छा होगा—शहर देखने का मौका मिल जायेगा। फिर, पास ही तो इर्कूत्स्क पनबिजलीघर का निर्माण हो रहा है। वह जगह भी तो देखने की है और देखनी ही चाहिए।

मैंने हिम्मत बाँधी—"अगर इसकी नौबत आयी तो यह भी सही। मैं इसी नाव के नीचे सो रहूँगा। दुनिया बहुत खूबसूरत है और यहाँ खोया-खोया सा अनुभव करना बेवक़ूफ़ी की बात है। कमर कसे रहो, तोल्या!.."

सो, मैंने अंगारा के बर्फीले पानी से हाथ-मुँह धोया, रूमाल से पोंछा, अपना सूटकेस उठाया और बिना किसी निश्चित योजना के इर्कूत्स्क की सड़क पकड़ ली। विचार थोड़े बिखरे-बिखरे से रहे।

जीवन में पहली बार मैंने आज जाना कि किसी अनजाने शहर में आना और फिर अपने तईं उसकी खोज करना सचमुच कितना शानदार और कितना लाज़वाब होता है। आदमी को कितनी ही चीज़ें जानी-देखी-समझी मिलती हैं तो कितनी ही बिल्कुल अलबेली, जैसे कि यह वहाँ के सिवाय और कहीं हो ही न सकती हों।

यानी, पहली बार सड़क के दोनों ओर की पटरियाँ मैंने लकड़ी के तख़्तों की

देखीं—पटरियाँ कि बहुत साफ और हज़ारों पैरों से चमकाई गयीं। अपनी ही एड़ियों की खटखट सुनते हुए पटरियों पर चलने में जितना ही मजा आया, उतना ही सुख मिला।

इर्कूत्स्क की सड़कें शान्त और छायादार मिलीं, पर सुबह के समय भी वहाँ गर्द-गुबार और गरमी का अनुभव हुआ। यों कहूँ कि साइबेरिया की मेरी अपनी कल्पना तो कहीं से भी पूरी नहीं उतरी। कुछ मध्य एशिया का सा गुमान हुआ। लोगों के लिबास में एक तरह की सादगी नज़र आयी। तड़क-भड़क का नाम नहीं। चाल-ढाल में एक तरह का इत्मीनान लहरें लेता लगा। तबियत बड़ी खुश हुई कि देखो, कहाँ यहाँ के आराम से आते-जाते यह लोग और कहाँ हमारे यहाँ के ओखोतनी र्‍याद की भीड़-भाड़, दौड़धूप!.. अचानक ही ऐसा महसूस हुआ जैसे कि मैं अपने दोस्तों के बीच आ गया हूँ। मोटरें गिनती में कम ही दीख पड़ीं और उनके ड्राइवर कुछ अलग ही समझ पड़े। चौराहे से कोई सौ गज की दूरी से ही वे जैसे डरकर हार्न देते दिखलाई पड़े। सो, मास्को की गुमसुम सवारियों के बाद यह ज़रा बड़ा अज़ीब-अज़ीब सा लगा।

एक जगह शेरों के खूँखार मुँह बाड़ों के ऊपर से झलके, और छोटे-छोटे इलाकों की तरह यहाँ भी तरह-तरह की शक्लें बनाये लोगों की चीखें कान में पड़ीं—

आखिरी!!! तीन खेल! आखिरी!!!
निकोलाई
ग्लादिलश्चिकोव!
अपने शेरों और चीतों के साथ!
पाँच मसखरे!
मैदान में हँसी के फुहारे छूटेंगे कि छूटते ही चले जायेंगे—आइए और हँसी के ठहाके लगाइए!

मैंने एक वृद्धा से पूछा—"सेण्टर को कौन सा रास्ता जाता है, दादी?"

"सेण्टर जाने के लिए? बेटे, ट्राम पकड़ लो।"

"कौन सी ट्राम?"

"ट्राम नम्बर एक, बेटे।"

मैं ट्राम के अड्डे पर आया और एक नम्बर की ट्राम का इन्तज़ार करने लगा। यहाँ ट्रामें आयीं और गयीं, पर उनमें किसी पर भी कोई नम्बर नज़र न आया। मैंने सोचा—"बड़ी बेहूदी बात है। ऐसे में लोग बतलाते कैसे हैं कि कौन सी ट्राम कौन सी है?"

मेरे देखते-देखते अनगिनत ट्रामें आयीं और रेंगते हुए अड्डे पर आ रुकीं। कहीं से किसी तरह का कोई ऐलान न हुआ और लोग कल्पनातीत ढंग से अपने-अपने रास्ते

की ट्राम चुनते रहे। काम का समय होने के कारण लोगों की भीड़ बढ़ती ही गयी, और हड़बड़ी में लोग हर ट्राम के दरवाज़ों पर उमड़ने और टूट पड़ने लगे। एक उदास, दुबले-पतले आदमी ने तीन बार पैर ज़माने की कोशिश की, पर एक बार भी जमा न सका। मैं हिम्मत कर उसके पास गया—"माफ कीजिए यह किस नम्बर की ट्राम है?"

"किसी नम्बर की नहीं।"

"क्या मतलब आपका?"

"लगता है कि तुम बाहर के हो और अभी-अभी गाड़ी से उतरे चले आ रहे हो। इर्कूत्स्क में सिर्फ़ एक ही लाइन है ट्राम की। समझ में आयी बात? सिर्फ़ एक ही लाइन है! भाड़ में जायें यह सारी ट्रामें! मेरा ख़्याल है कि यहाँ से अच्छी ट्रामें बाबा आदम के ज़माने में मिस्र में चलती रही होंगी!.. वह आ गयी ट्राम!"

इतने में एक ट्राम और रेंगती हुई आयी और बूढ़ा दरवाज़े की ओर लपका। मैं उसके पीछे-पीछे चला और किस्मत से जगह पा गया। जगह क्या पा गया, भीड़ ने मुझे उठाकर जैसे धर दिया ट्राम में।

कल्पना कीजिए—दियासलाई की बहुत बड़ी डिबिया सा एक चौकोर, लाल ढाँचा, आगे टिमटिमाता हुआ एक छोटा, भद्दा सा बिजली का बल्ब, उदासी से टनटनाती, गूँज पैदा करती, लुढ़कती चली जाती एक चीज़, चरमराती हुई छत, और ऐसी ठसाठस भरी हुई जगह कि हाथ-पैर हिलाना तो दूर, साँस लेना भी दूभर!

सो, इर्कूत्स्क की ट्रामों के दूसरे बहादुर कण्डक्टरों की तरह इस ट्राम का कण्डक्टर भी एक रस्सी से ड्राइवर को ट्राम चलाने का इशारा करता और चिल्लाता "टिकट ले लीजिए कृपया... आगे बढ़ते जाइए!"

ट्राम की यह लाइन बड़ी लम्बी, शहर के एक छोर से दूसरे छोर तक फैली लगी। जहाँ तक मेरे उतरने की बात है, जहाँ साथ के अधिकांश लोग उतरे वहीं मैं भी उतर गया। उतर क्या गया, जैसे लोगों के रेले ने ट्राम में ला पटका था, वैसे ही नीचे दे फेंका। मैंने 'वोस्तोचनो-सिबीर्स्काया प्रावदा' की एक प्रति पास की दीवार पर लटकी देखी। पढ़ने पर दूसरी बातों के साथ यह भी पता चला कि 'ट्रॉलीबस की एक नयी लाइन से इर्कूत्स्क की शोभा जल्दी ही बढ़ेगी।' अखबार का एक पन्ना इर्कूत्स्क के टेलीविजन सेण्टर के तरुण निर्माताओं की चर्चा से भरा मिला। टेलीविजन सम्बन्धी एक लेख का शीर्षक पढ़ा—'करिश्मों की दुनिया में।' बड़ा आश्चर्य हुआ कि टेलीविजन जैसी जानी-पहचानी चीज़ यहाँ कौतुक और करिश्मा मानी जाती है। जीवन में पहली बार अचानक ही, मेरी कल्पना के सामने यह बात पूरी तरह स्पष्ट हुई कि हमारे देश में अभी जाने कितना काम होना बाकी है और जाने कितने शहर ऐसे हैं जहाँ अभी ट्रामें तक नहीं हैं। यही नहीं, बल्कि वहाँ ऐसी हज़ार चीज़ें नहीं हैं जो मास्को की ज़िन्दगी का हिस्सा बन चुकी हैं। इस तरह ट्राम जैसी मोटी चीज़ से विचार का जो तार छिड़ा उसने जाने क्या और कैसे-कैसे भाव मेरे मन में जगाये। मैं कुतूहल से ठिठक

रहा और इधर-उधर देखते हुए लोगों की आँखों में आँखें डालने लगा।

सड़कों पर रोजमर्रा की आम ज़िन्दगी लहरें लेती रही। पर मुझे वह भी असाधारण और नयी-नयी सी लगी और मैं इस अज़ीब शहर और इसके लोगों को जानने-समझने के लिए उत्सुक हो उठा। मन ने कहा—"यह हैं दूर के साइबेरिया के एक शहर के रहने-बसने वाले। पर, इनके जीवन का उद्देश्य क्या है? इस समय यह सारे के सारे लोग जा कहाँ रहे हैं? इन्हें अपनी-अपनी चिन्ता-फिक्रें हैं या यह यों ही मटरगश्ती करते फिर रहे हैं?

कोनों पर आइसक्रीम बिकती और सोडावाटर की दुकान पर धुआँधार बिक्री होती देखी। एक बुढ़िया के सौदा-सुलुफवाले झोले में एक मछली हिलती डुलती नज़र आयी। मछली की शक्ल अज़ीबोगरीब लगी। ख़्याल हुआ कि इसकी तस्वीरें मैंने कहीं न कहीं देखी हैं—ठीक, तो यह स्टरलेट है!... एक घोड़ागाड़ी आराम से बगल से गुजरी... अच्छी-खासी सचमुच की घोड़ागाड़ी! पास की किताबों की दुकान अब तक बन्द रही आयी। दुकान अगर अच्छी नहीं तो बुरी भी नहीं कही जा सकती। मास्को में अप्राप्य 'मार्टिन ईडेन' यहाँ खिड़की में सजी दीखी। धूल से नहाई, टूटी-फूटी 'पोबेदा' टैक्सियाँ इधर-उधर चक्कर लगाती रहीं। चौराहों के निशान कहीं सड़कों पर नज़र नहीं आये। जहाँ जिसका मन करता वहीं सड़क पार करने लगता।

मकानों में हर इमारत जानदार और एक दूसरे से अलग—लम्बी-चौड़ी विशाल इमारतों की चौरस क़तारों का नाम निशान तक नहीं। लगा कि अलग-अलग ढंगों के यह मकान अलग-अलग जमानों में बनाये गये होंगे और बाद में बीच की जगह इवी-लतर से घिरे मण्डपों से भर दी गयी होगी। जो भी हो, पूरे नक्शे का दिल पर बड़ा अच्छा और प्यारा असर पड़ा। हर सड़क पुस्तकालय की आलमारी सी लगी। पुस्तकालय की आलमारी में इन मकानों की तरह ही किताबें होती हैं और एक किताब के कन्धे दूसरी किताब के कन्धों से रगड़ खाते हैं। अकसर ही अभी-अभी प्रेस से निकली, खड़खड़ाते, ताजे पन्नोवाली कुछ नहीं सी पुस्तिका की बगल में कुत्तों के कानोंवाले पृष्ठों का, 'ले कांते द माँते क्रेस्तो' जैसा आदर और श्रद्धा से पढ़ा जाने वाला प्राचीन ग्रंथ दीखता है।

सो, इन मकानों के अलावा मैंने देखे फ्लैटों के नये ब्लॉक, एक पुराना थियेटर और पूर्वीय साइबेरियाई रेलवे प्रशासन की शानदार खम्भोंवाली इमारत। पर मैं पास की एक गली में मुड़ा तो मुझे नज़र आये पूरे के पूरे लट्ठों के गहरे भूरे मकान। इनके फाटक भी ऐसे ही लम्बे चौड़े लट्ठों के बने मिले और इनकी सफ़ेद झिलमिलियाँ भी! फाटकों पर लिखा देखा—'कुत्तों से होशियार रहिए।' मुझे लगा जैसे कि कोई मुझे सहसा ही ओस्त्रोव्स्की के नाटकों की दुनिया में खींच लाया है। पर, ऐन बगल के घर में निगाह गयी तो वहाँ आजकल का सा, अस्फाल्ट का गूँजता हुआ हाता दीख पड़ा और साथ में बच्चों के खेल का मैदान और वॉलीबाल का ताम-झाम भी। ख़्याल हुआ कि मास्को

के वातावरण से कहाँ अलग है यहाँ का वातावरण!

पास के एक नये मकान से वार्निश की गन्ध आती रही। बाँसों के मचान और चूने के पीपे अब तक जहाँ के तहाँ पड़े रहे। सामने देखा एक चौकोर, पुराना गोदाम। गोदाम शायद पुराने ज़माने के किसी व्यापारी का था। लोहे की टेढ़ी-मेढ़ी झिलमिलियों में जंग लगी हुई थी। बाहर एक पुराना, भारी ताला झूल रहा था, और साइनबोर्ड पर लिखा हुआ था—'डिपार्टमेण्ट स्टोर'।

मेरी कल्पना ने कहा—"इन मकानों के बीच भयानक तकरार छिड़ी हुई है। खूँखार कुत्तों की रखवालीवाले, उम्र के कारण सँवराये, छोटे-छोटे, पुराने मकान पातगोभी उगाते और बाजार में बेचते हैं। वे अपने कोनों में चुपचाप, चैन से पड़े रहना चाहते हैं। पर नये, खुशनुमा, चहल-पहल से भरे मकान जहाँ चाहते हैं वहाँ मनमाने ढंग से सिर उठाते चले जाते हैं। वे जवान हैं, उनमें आत्म-विश्वास है, इसलिए अक्सर ही उनकी निगाह न तो स्टोरहाउस के मन की डाह पर पड़ती है और न लट्ठे के मकानों की खीझ पर। स्टोरहाउस की लोहे की झिलमिलियाँ भेड़िये की गुस्से से लाल आँखों की तरह उबल रही हैं। लट्ठे के मकान पेड़ों और झाड़-झंखाड़ों के बीच छिपे खड़े हैं। छोटी, फूली हुई खिड़कियाँ बीच-बीच में भयानक रूप से कौंध-कौंध उठती हैं। उनके आराम में खलल पड़ता है, इसलिए उनके मन नफ़रत से भरे हुए हैं।

कमाल की बूट पॉलिश!

मैं यों ही इधर-उधर घूमता रहा कि होते-होते एक बूट पॉलिश करने वाले के पास जा पहुँचा। वह अपना साज-सामान लिये, पत्थर की दीवार से सटा, एक छायादार, आरामदेह कोने में बैठा दीखा। साथ ही कुछ मोटे, निंदासे से लोग दीवार के किनारे जड़ से बने बैठे नज़र आये। ये लोग हर आने-जाने वाले को घूरकर देखते और बीच-बीच में फुसफुसाते हुए, आपस में, एक बात इधर की कह उठते तो एक बात उधर की।

मेरे जूते बहुत गन्दे थे, और जहाँ-तहाँ सफ़ेद धब्बे से निकल आये थे। सो, पॉलिश करने वाले को देखते ही मैं एकाएक रुक गया। उसने मुँह से बिना कुछ कहे झटके से स्टूल मेरी ओर बढ़ाया, जैसे कि बैठने का आदेश दिया। मैं बैठ गया और आसपास बैठे मोटे लोग मुझे सिर से पैर तक देखने लगे।

भगवान जाने यह काम उसने कहाँ सीखा, पर ऐसा गुणी और ऐसा करामाती पॉलिश करने वाला मैंने कहीं नहीं देखा। उसके हाथ ऐसी तेजी से चलते कि हवा में उड़ते से लगते और ब्रश वेंटीलेटर की तरह सनसनाते। यानी, छोटे-बड़े ब्रश, पॉलिश की डिबियाँ, काली गोलियाँ, छोटे पत्थर और कपड़े की पट्टियाँ मेरी आँखों के आगे बिजली की तरह कौंधने लगीं। ब्रश कोई पाँच या छः तरह के नज़र आये। वह दाहिने हाथ से

एक ब्रश उछालता, पॉलिश की डिबिया उठाता, ब्रश बायें हाथ से पकड़ता, अपनी जाँघ के नीचे दबाता और इसके बाद मखमल की पट्टी हवा से बातें करने लगती।

मैं ताज्जुब से आँखें फाड़े बैठा रहा और वह बहुत बड़े कलामर्मज्ञ की तरह गम्भीर बना देखता रहा। मैंने अनुभव किया कि इस व्यक्ति में पॉलिश करने की विशेष प्रतिभा है, इसका यहाँ बड़ा मान है और यह किसी बड़े जन-कलाकार की तरह प्रशंसकों और शौकीनों से घिरा रहता है। इनमें से कोई न कोई जब-तब ही ख़ुशी से खिलकर लम्बी साँस लेता और आग्रह से कहता—"कर दो पॉलिश, सेर्योगा।"

सो ब्रशों की तेज सनसनाहट ने मुझपर इस तरह हमला किया कि मैं उस कलाकार की कला का शिकार हो गया और अपने को उसके हाथ की कठपुतली समझने लगा। ज़रा देर बाद, जैसे जादू से, उसने अपने लकड़ी के बक्से से एक खड़खड़ाता सा खटखटा निकाला। इसका मतलब हुआ कि मैं अपना दूसरा पैर आगे कर दूँ।

इस तरह पॉलिश के उस सारे क्रम में इतना समय लगा कि खलने लगा। मैं पसीने-पसीने हो गया और पॉलिश के सिवाय जैसे और किसी चीज़ का मुझे ध्यान ही न रह गया। मेरे दोनों फटे-कटे जूते शीशे की तरह चमकने लगे और किसी तरह की कोई सिकुड़न या खराबी जैसे कहीं रह ही न गयी। दो चमचमाते शीशों में सूरज उतरने लगा और अपनी कल्पना की आँखों से देखा तो मुझे उनमें बादल हवा की लहरों पर लहराते दीखे।

आख़िरकार सेर्योगा ने एक खास किस्म का लम्बा और पेचीदा खटखटा निकाला और पत्थर सा जड़ चेहरा बनाये तना, सीधा हुआ। मुझे एक अन्धड़ सा अपने ऊपर से गुजरता लगा।

"क्या दूँ?"

सेर्योगा ने कोई ज़वाब न दिया। सन्नाटे में एक तनाव जैसे घुल उठा।

"एक रूबल," एक मोटा आदमी बोला।

"दो रूबल!" दूसरे आदमी ने धीरे से कहा।

मैंने तीन रूबल दे दिये।

अब कनखियों से अपने जूतों पर निगाहें डालता मैं आगे बढ़ा। पता नहीं क्यों मुझे ऐसा लगने लगा जैसे कि अद्भुत ढंग से मैं कुछ ऊँचा उठ गया हूँ। यों कहूँ जैसे कि किसी मित्र ने हाथ से मेरी कोहनी को सहारा देकर कहा हो—"कोई फिक्र न करो। सब कुछ ठीक-ठाक हो जायेगा।"

यानी, जैसे कि एक ज़माने से मेरे मन को मथते और मेरे दिमाग़ को झकझोरते रहने वाली समस्या आख़िरकार हल हो गयी हो, पर सवाल है कि कैसी समस्या, कौनसी समस्या?

सचमुच हुआ तो कुछ न था। मैं इर्कूत्स्क पनबिजलीघर देखने जा रहा था, और मेरे जूते खूब चमचमा रहे थे, और बस!...

मैं मुस्कराता और रह-रहकर सिर हिलाता रहा। पॉलिश क्या जादू करने वाले सेर्योगा का ध्यान मुझे रह रहकर आता रहा।

बैकाल की सालमन हो तो ज़रा बासी हो!

"कहो तो तुम्हारे थूथुन पर एक ठोंसा जमाऊँ?" उसने तेहे में, पर शान्त भाव से पूछा।

मेरा मन दूसरे ही क्षण उसके प्रति नफरत से भर उठा, पर एक निगाह में ही मेरी समझ में आ गया कि अगर उसने मुझे कहीं एक हाथ भी जमा दिया तो मेरा कचूमर निकल जायेगा। नीली क़मीज़ की छोटी-छोटी आस्तीनों से ढके उसके फूले हुए बल्ले ठोस मांस के कसे हुए अंग लगे।

अपने धूप से सँवराये चेहरे, हट्टे-कट्टे बदन और बिखरे हुए बालों के कारण वह पूरा बॉक्सर नज़र आया। पर बस ने जब भी मोड़ लिया तो भीड़ से ठसाठस लोग मुझ पर इस तरह भहरा पड़े कि हर बार मैं उस पर जा गिरा। वह अपनी जगह जमा चुपचाप सारा रेला सम्हाले रहा और इस कोशिश में, बस, उसके बल्ले कभी-कभी फूल उठे और कुछ नहीं।

"पर मैं क्या करूँ? लोग पीछे से धकियाते हैं!"

"जमाऊँ क्या थूथुन पर एक ठोंसा?" उसने मेरी ओर घूरते और दाँत भींचते हुए दूसरी बार कहा।

इर्कूत्स्क पनबिजलीघर बस से जाना कुछ ऐसा-वैसा काम नहीं! बस क्या, टूटा-फूटा बक्सा समझिए—दरवाज़े और खिड़कियाँ बुरी तरह खड़खड़ाती हुई, फर्श प्लाईवुड का, भीड़ ऐसी कि सुई रखने की जगह नहीं, चाल ऐसी जैसे कि हेरिंग मछलियों का पीपा पहाड़ी के ऊपर से लुढ़का दिया गया हो और वह घड़घड़ाता नीचे चला जा रहा हो। सो, हिचकोले खाती, तरह-तरह की आवाज़ें करती और धूल के बादल उड़ाती हमारी बस आगे बढ़ती रही। दूसरी ओर पसीना बहकर मेरी आँखों में आने लगा तो कुछ भी देख सकना मेरे लिए मुश्किल हो उठा।

कहीं कोई अड्डा आता तो बस आगे निकल जाती और कोई सौ गज के फासले पर रुकती। इसके रुकने पर दो या तीन मुसाफिर उछलकर बाहर आते, और इस पाँत का पहला आदमी पागल की तरह दौड़ते हुए पिछले दरवाज़े तक भी न पहुँच पाता कि सवारी फिर चालू हो जाती। साथ ही धुएँ का ऐसा अम्बार उगलती कि सारा कुछ उनके मुँह और गले में भर जाता और वे कोसते और थू-थू करते रह जाते।

"टिकट, कृपया टिकिट... काई उतरेगा चौराहे पर? कोई नहीं उतरेगा? ड्राइवर, दरवाज़ा मत खोलना!"

इसी बीच फिर रेला आया और मैं नीली क़मीज़वाले अपने दुश्मन से इस तरह सट

उठा कि उसके पत्थर से सीने से रगड़ खाकर मेरी नाक पिसते-पिसते बची। उसने फुफकार छोड़ी और सावधानी से अपना पैर खिसकाया। मेरे अचरज का ठिकाना न रहा। मैंने अनुभव किया कि पिछले पन्द्रह मिनटों से मेरे जूते की एड़ी उसके पैर के अँगूठों को पिचनी करती रही है।

"ओह, माफ कीजिए। बड़ा अफसोस है। मैने ख़्याल नहीं किया।"

बदले में मुट्ठी, हवा की रफ़्तार से, ऐन मेरी नाक के ऊपर सध गयी। उँगलियों से लोहाइन आयी। पर, दूसरे ही क्षण वह पास के दूसरे आदमी की ओर मुड़ा और बोला—"आप शायद इन्हें ही इधर-उधर देख रहे थे, है न?.. भोले-भाले लड़के, तुमने काम के क़ागज़ उड़ा लिये हैं। वापस कर दो इन्हें!"

लड़का—उम्र कोई पन्द्रह साल, बदन पर छोटी जैकेट, नीचे क़मीज़ गायब। सो, उसने आश्चर्य से अवाक होकर बोलने वाले की ओर देखा और मुड़े-मुड़ाये गुलाबी क़ागज़ों का एक बण्डल सा आगे बढ़ा दिया। नीली क़मीज़वाले मेरे दुश्मन ने शान्त भाव से सारे क़ागज़ लिये और अपनी जेब में ठूँसे। मैं सब कुछ देखता रहा। पर मेरी समझ में कुछ भी न आया।

"कुजमिखा! कोई उतरेगा? कोई नहीं?"

"ओह, बच्चो, मुझे निकल जाने दो! ओह, शरीफ लोगों, मुझे उतरना है!"

"तुमने पहले क्यों नहीं कहा?... रोको बस!...

हे भाई, तुम आगे हो, ड्राइवर के पासवाली खिड़की खटखटा दो।"

"दादी को उतरना है!... आराम से... बोरा सम्हाल कर!..."

"रुको, ज़रा रुको! ओह... हे भगवान!..."

"ठीक, ड्राइवर, चलो! "

भाड़ में जाये ऐसी यात्रा! दिल बुरी तरह बैठने लगा। साँस लेना मुश्किल हो गया।

एक ढालू मोड़ पर बस मुड़ी। पता चला कि यह अन्तिम मोड़ है। कण्डक्टर ने चिल्लाकर कहा—"पहनी बस्ती... जगह आ गयी।" मैं लड़खड़ाते हुए उतरा। सारा शरीर जैसे सन्न पड़ गया और सिर चक्कर खाने लगा।

निर्माण स्थल इर्कूत्स्क के बाहर था—अंगारा के किनारे-किनारे काफ़ी आगे जाने पर। हवा का प्यारा-प्यारा सा लहरा मेरे गालों पर पंखा झलने लगा। निर्माताओं का वह छोटा नगर खास तौर पर साफ नज़र आया—सारी सड़कें पक्की, अस्फ़ाल्ट की, हर जगह फूलों की क्यारियाँ, गुलाबी और नीले रंग की खुशनुमा, दो मंजिली बँगलियाँ—उनकी दो रंगों वाली स्लेट-पत्थर की छतें, जैसे कि शतरंज की बिसात सी बिछी हो जगह-जगह। यानी यह था प्रसिद्ध साइबेरियाई निर्माण योजना स्थल। चौकोर आधारोंवाले क्रेनों ने अपनी गर्दनें आगे की ओर उचका रखी थीं। कन्वेयर सनसना रहे थे। ज़रा दूर निर्माताओं की एक दूसरी बस्ती बनायी जा रही थी। एक दमकल सड़क के बीचो बीच खड़ा हुआ था, और सिरों पर लोहे का टोप जमाये, अपनी-अपनी पेटियों

में कुल्हाड़ियाँ खोंसे आग बुझाने वाले सड़क धो रहे और फूलों की क्यारियों में पानी दे रहे थे। एक चितकबरी गाय अस्फ़ाल्ट की सड़क पर घूम रही थी। नोटिसबोर्ड के एक इश्तहार में लिखा हुआ था—"पहली बस्ती के क्लब में आज रात को 'सड़कों पर सपने' दिखलाया जायेगा।"

सुबह से मैंने कुछ खाया-पिया न था, इसलिए एक जगह साइनबोर्ड पर 'कैंटीन' पढ़ते ही पहले मैंने कुछ खाने और फिर खास निर्माण-स्थल देखने जाने का निश्चय किया। पर, कैंटीन में गया तो वहाँ बड़ा शोरगुल देखा। गरमी भी बड़ी लगी। जगह-जगह गन्दी तश्तरियाँ नज़र आयीं। कोने-कोने से भुने हुए गोश्त की बास नाक में आयी। वैसी बास तो खाने-पीने की ऐसी जगहों से आती ही है। खिड़कियों पर ताड़ के पौधोंवाले टब एक दूसरे से सटे रखे देखे। हर मेज पर बीयर के पाँच-पाँच से दस-दस के बीच मग इस तरह पड़े मिले कि तश्तरियों के लिए कहीं जगह ही समझ में न आयी। हर आदमी बातें करता, हँसता और धुआँ उड़ाता दीख पड़ा। रूबलों की अदायगीवाली खिड़की पर लोगों की बड़ी लम्बी क़तार लगी रही।

मैं भी क़तार में खड़ा हो गया, और मेरे आगे एक ही दो लोग रह गये कि कोई मेरी आस्तीन खींचता लगा। मैं मुड़ा और मैने देखा कि नीली क़मीज़वाला 'दुश्मन' दस रूबल का नोट मेरे हाथ में बरबस थमाये दे रहा है।

"जो अपने लिए लो वही मेरे लिए भी ले लेना।"

"पर, अभी तक तो मुझे यही नहीं पता कि यहाँ है क्या!"

"पोर्क के साथ पातगोभी का शोरबा, बैकाल की सालमन और धीमी आँच में पके फल। बासी सालमन बड़े ठाठ की होती है—फर्स्ट क्लास! तुम्हारा काम चलेगा?"

"ठीक है!..."

हम मेज के पास खाने बैठे कि 'दुश्मन' बड़े मधुर ढंग से हँसा और ग्रेनाइट पत्थर की सी चौड़ी हथेली उसने मेरी ओर बढ़ायी।

"मेरा नाम लेओनीद है... तुमने मुझे बड़ी तकलीफ पहुँचायी... मन चाहा कि तुम्हें एक ज़ोर का हाथ जमाऊँ.. पैर पर ईंट गिर पड़ी थी... तब से अँगूठे बुरी तरह दर्द करते हैं... तुम इस तरफ़ पहली बार आये हो, है न?"

"मैं मास्को से आया हूँ।"

"लेकिन मैं तो साइबेरिया का ही रहने वाला हूँ। यहीं पैदा हुआ हूँ। तुम यहाँ काम करने के लिए आये हो क्या?"

"नहीं, मैं सिर्फ़ घूम-फिर रहा हूँ... वैसे ब्रात्स्क जा रहा हूँ।"

"जैसे कि यहाँ काम कोई कम है! देखो!.. इसका मतलब यह है कि तुमने बैकाल की सालमन मछली का मजा नहीं लिया। है न? देखो, बस, ज़रा सा रुक जाओ... मैं तो पहले दिन से ही यहाँ काम पर हूँ... इस तरह काम नहीं चलेगा, मुसाफिर!"

आख़िरी वाक्य का सम्बन्ध मुझसे न था। इस बीच बसवाला, बिना क़मीज़ का

लड़का ज़रा अकड़ के साथ हमारी बगलवाली मेज पर आ बैठा था। उसने बेटरेस से दो गिलास पानी मँगाकर जेब से एक छोटा सा प्याज़ बाहर निकाल लिया था, उसे बीच से काटकर उस पर नमक छिड़क लिया था, डबल रोटी की तश्तरी से एक टुकड़ा रोटी उठाकर उस पर सरसों की चटनी सी चीज़ लगा ली थी और गरम पानी के सहारे निगलते हुए यह अज़ीब सा नाश्ता गटकना शुरू कर दिया था।

सो, लेओनीद सहसा ही उछलकर खड़ा हुआ, रूबलों की अदायगी की खिड़की पर गया और किसी के हाथ में दुबारा बरबस रूबल थमा दिये। साथ ही उसने एक वेटरेस भी पकड़ ली। यदि वह ऐसा न करता तो हमें पूरे एक घण्टे तक इन्तज़ार करना पड़ता। सो, जल्दी ही हमारे सामने आ गया तीन तश्तरी पातगोभी का शोरबा, तीन सालमन मछलियाँ और धीमी आग में पके फल।

"हे, सुनते हो, मुसाफिर, इधर उठ आओ।"

लड़के ने खीसें बाईं, दूसरे ही क्षण अपना प्याज़ और सरसोंवाली रोटी समेटी और हमारी मेज पर आ बैठा।

"लो, यह है तुम्हारे लिए।"

"सुनो तो!"

"चलो, खाना शुरू करो। शिकार आज बुरा रहा क्या?"

"मेरी रकम मार दी किसी ने।"

"सच? रकम बहुत थी?"

"पन्द्रह सौ..."

"ओ हो... हो... रकम तो बहुत काफ़ी थी! और तुम्हारी क़मीज़ क्या हुई?"

"मैं जान-बूझकर इस तरह रहता हूँ।"

"सो, किसलिए?"

लड़का आगे की ओर झुका, और भेद भरे ढंग से आँखें नचाते हुए धीमे से बोला—"यह तो मेरा काम है... मैं जुर्मोंवाले महकमें में काम करता हूँ... समझे? यह तो जाल है, समझे! मुझे एक खास काम सौंपा गया है..." बातें करते-करते वह खाता भी रहा। इस सिलसिले में कभी गले में कौर फँस जाता, कभी मुँह जल जाता तो कभी शोरबा मेज पर छलक पड़ता। "मैं एक गिरोह की टोह में हूँ। चीफ ने कहा कि पट्ठे, गिरोह की खोज लगा दो और दस हज़ार कनटैन ले लो। बस, तो मैं उन्हीं लोगों के पीछे लगा हुआ हूँ... पर इन लोगों ने तो मुझे हवालात में डाल दिया!"

"किसने? उस गिरोह ने?"

"नहीं! मिलिशिया ने। इर्कूत्स्क के इन गधों ने। मैं दो दिनों तक माल गाड़ी लेकर शहर का चक्कर काटता रहा कि यह काठ के उल्लू मेरे पास आये और पूछने लगे—'किस अनाथालय से भागकर आये हो तुम।' मुझे लगा कि कहीं गिरोह हाथ से निकल गया तो... मैंने मेज पर ज़ोर से मुट्ठी पटकी।"

"अरे, अरे, तो इस तरह हड़बड़ाओ नहीं, खाना गले में फँस जायेगा।"

"चीफ को टेलीफोन करूँगा तो यह लोग सिर धुनकर पछतायेंगे। मजा मालूम होगा इन्हें। वह इन्हें क़ायदे से ठीक करेंगे। मैंने आज सबेरे टेलीफोन किया था, पर वे दफ़्तर में थे नहीं। मालूम हुआ कि वे किसी के 'ऑपरेशन' के लिए गये हैं। तुम्हारे निर्माण स्थल के क्या हालचाल हैं? कुछ मामले हैं यहाँ भी? खैर, अब तो मैं यहाँ हूँ। किसी से साँस नहीं लेना। दुरुस्त हो जायेंगे वे लोग, तुम फिक्र मत करो!"

"ठ...ठीक," लेओनीद ने अपने सिर का पिछला हिस्सा खुजलाते हुए कहा। उसकी आँखों में गम्भीरता घुल उठी और वह कुछ सोच-विचार में पड़ गया—"कूड़े पर फेंक दो! सालमन बासी नहीं है! कौन खायेगा इसे!"

मैंने मछली चखी। बिल्कुल ताजी थी।

"काश कि तुम सालमन खाते जैसी खानी चाहिए। जब बासी हो जाती है तब मजा आता है।

"कोई बात नहीं, उसकी जगह पोर्क बिल्कुल बासी है।"

"यह बात है?" लड़का ज़रा जोश में आते हुए बोला, "सचमुच? बहुत शर्म की बात है! खैर, हम देख लेंगे! हम नोट करेंगे। वेटरेस, तुम्हारी कैंटीन का नम्बर क्या है? और, तुम्हारे यहाँ के बावर्ची का नाम क्या है? ज़वाब नहीं देतीं? बहुत अच्छा..."

लड़के ने झटके से क़ागज़ के कुछ टुकड़े और एक रंगीन पेंसिल जेब से निकाली और कुछ गोंचने लगा। "कैंटीन नम्बर पाँच... खाने... शर्म आनी चाहिए... सालमन बासी नहीं है... पोर्क बासी है!..."

मुझे ऐसे ज़ोर से हँसी आयी कि मेरा गला फँस गया, पर लेओनीद ने मुझे आँख मारी।

"और, तुम्हारे क़ागज़-पत्रों का क्या हालचाल है, जासूस भाई?"

"ओह, वे सब ठीक-ठाक हैं। पर, वे तो सब मिलिशिया स्टेशन पर लोगों ने मुझसे ले लिये। खैर, कोई बात नहीं। मैं उनके बिना भी काम चला लूँगा। ज़रूरत इस बात की है कि चीफ से बातचीत हो जाये। फिर तो यह मिलिशयावाले सब कुछ लौटा लेंगे और माफी ऊपर से माँगेंगे। चीफ बुखार उतारेगा इनका... बाल बराबर भी बल न समझो मेरी बात में।"

"लेकिन, खैर, यह तो बतलाओ कि यह क़ागज़-पत्र हैं क्या?"

"अरे, यों ही, कुछ नहीं।"

"एक नज़र मैं भी तो देखूँ..." लेओनीद क़ागज़ देखने लगा—"बिकाऊ है : कुजमीखा में एक घर—एक गाय भी साथ में है। इस मामले में पूछताछ 16, सोदोवाया सड़क से करें।"

दूसरे क़ागज़ पर सवाल उठा कि और, भला यह क्या है? वह निकला—"केवल जगह छोड़ने के कारण बिकाऊ है : यह बकरी, उम्र छः साल, एक बच्चा साथ, दूध

बहुत ज़्यादा—दवा के काम आने वाला। पूछताछ करने के लिए... नम्बर पर टेलीफोन कीजिए।"

लेओनीद ने लड़के से पूछा—"तुम कुछ ढोर खरीदने की बात सोच रहे हो क्या?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं। ऐसी कोई बात नहीं है, सचमुच! मैंने यह विज्ञापन देखे तो सोचा कि चलो, लिये चलूँ, बाद में पढूँगा।"

"तो तुमने खम्भों से नोचा इन्हें?"

"हाँ, खम्भों से तो नोचा ही, दूसरी जगहों से भी नोचा।"

"यह वाला देखो ज़रा। यह तो हिज्जे की गलती है! कुछ समझ में नहीं आता—'जीसके एक य दू महिना का सूआर खूया हो आया ओर ला जाया।' "

"तो, तुम जाकर सुअर ले आये?" लेओनीद ने पूछा।

"नहीं, अभी तक नहीं।"

"बात समझो, यह ख़्याल बुरा ज़रा भी नहीं है। समझे, तोल्या? यह लड़का इनमें से किसी एक पते पर जाये, घर बकरी या गाय देखने की माँग करे, एक या दो चीज़ें मार ले, और आम तौर पर मौके से फायदा उठाये।"

"नहीं, यह सब कुछ नहीं! यह तो सारा कुछ जासूसी धंधा है। लेकिन देखना, मुँह से कुछ निकले नहीं," लड़का बोला।

"एक यही बात है कि घर खरीदने या सुअर पालने की हैसियत देखने से तुम्हारी लगती नहीं, मेरे भाई। यानी, यह जो धज तुम्हारी इस समय है, इससे तो बात बिल्कुल नहीं बनती।"

"यह सब मैं कुछ अपने लिए थोड़े ही कर रहा हूँ। यह तो चाची का काम है। उसी ने भेजा है। बुढ़िया बड़ी लालचिन है। बीमार है।"

"वाह-वाह!" लेओनीद हँसा, "लड़का खासा तेज है। खैर, तो, तुम सोते कहाँ हो?"

"कहीं भी पड़ रहता हूँ।"

"नहीं, यह ठीक नहीं। रात में सर्दी पड़ती है। पानी भी बरस सकता है। ऐसे में बिल्कुल मुमकिन है कि मिलिशियावाले तुम्हें जेबकतरा समझें और पकड़ ले जाये। अपनी रंगीन पेंसिल निकालो, इस बार पीली रहे—मेरा ख़्याल है कि कहीं मकान खरीदते वक्त तुमने उड़ा दी है यह, क्यों? लिखो—'बस्ती पाँचवीं, घर नम्बर 9, कमरा नम्बर 5,।' वहाँ आना और मुझे पूछ लेना। मेरा नाम लेओनीद है। रात मेरे ही साथ बिताना। हम लोग बातें करेंगे और खाना खायेंगे। शायद मैं तुम्हारे लिए कोई काम भी खोज निकालूँ। सुनो—अगर तुम ह'''री टीम में काम करोगे तो तुम्हें पातगोभी का शोरबा और पोर्क रोज खाने को मिलेगा और अगर अपने 'जुर्मों के महकमे' में काम करोगे तो... खैर, आना, रात को खाना मेरे साथ खाना।"

"धन्यवाद..."

"धन्यवाद नहीं, आना ज़रूर। और, हाँ तुम्हारा नाम क्या है?"

"सान्या।"

"मैं तुम्हारी राह देखूँगा, सान्या। शायद तुम्हारे लिए कोई क़मीज़ भी तलाश कर रखूँ मैं।"

"मैं आऊँगा।"

लड़का उछला और, अपना सिर कन्धों के बीच गड़ाये, दरवाज़े की ओर लपका। लेओनीद विचारों में डूबा, बैठा चम्मच से मेज खटखटाता रहा।

"मैं समझता हूँ कि इसके खानदान के लोग पियक्कड़ हैं। घर से भाग निकला है और अब जेंबें काटता-फिरता है। वैसे यह है कि लड़के की बुद्धि तेज है," लेओनीद बोला।

"आप सोचते हैं कि शाम को आयेगा यह?"

"ज़रूर आयेगा। मैंने कितने ही लोग देखे हैं ऐसे। इसे ममता मिलनी चाहिए। आज तक ममता कभी शायद मिली नहीं इसे।"

180 डिगरी का मोड़–

हम मिट्टी के एक बाँध पर बैठ गये और जूतों से बालू निकालने लगे।

लेओनीद ने मुझे निर्माण दिखलाने का जिम्मा अपने ऊपर लिया। बोला–"कोई बात नहीं, इस समय तो खाली भी हूँ मैं, कोई काम नहीं है। साथ ही मेरा तो यह टहलना भी हो जायेगा।" सो, हम चल पड़े। फिर तो हम गढ़ों में उतरे, ऊपर चढ़कर पुलों के ढाँचों के बीच से गुजरे, तल की सन्धों में धँसे और उन जगहों में गये, जहाँ पानी की शक्ति से टरबाइन के फल जल्दी ही नाचने लगेंगे। यही नहीं हम लपककर पक्के बाँध पर चढ़े, खुदाई की पायोंवाली मशीन की स्की पर सवार हुए और 25 टनवाली लॉरी के केबिन में बैठे। लॉरी में बैठे तो हमारे शरीर का अंग-अंग बुरी तरह झकझोर उठा।

हर आदमी लेओनीद से परिचित लगा। वह बढ़ईयों की टीम का लीडर निकला। ड्राइवर उसे देखते तो अपनी लॉरियाँ रोक देते और उसे जहाँ-तहाँ पहुँचा देना चाहते। खुदाई की मशीनों के ऑपरेटरों की निगाह उस पर पड़ती तो वे उसे शाम की नाच-पार्टियों के साथ चलने की दावत देते।

गरमी, धूल, गर्द और धातु की घनाघन से परेशान मैं उसके पीछे-पीछे घिसटता रहा। वैसे मैं रह-रहकर लड़खड़ा जाता और मेरी समझ में न आता कि यह गोल कमरा सा क्या है और 'दिलवाला हिस्सा' भरा क्यों जा रहा है? पर लेओनीद मुझे घसीटता और ज़ोर से कहता–"ज़रा बाँध तो देखो! है न खूबसूरत? इस समय हम समुन्दर के तल में हैं। ठहरो, आगे न जाओ। लोग वहाँ चट्टानें उड़ा रहे हैं।"

सड़क बनाने की कंकड़ियों के पहाड़ों के पार विस्फोट के धड़ाके होते और पत्थर हवा में उड़ते। इस प्रकार लम्बी-चौड़ी चट्टान उड़ाकर खुदाई की पायोंवाली मशीनों के लिए रास्ता तैयार किया जा रहा था। मैंने अपने जीवन में ऐसा कुछ पहले कभी न देखा था। बहुत बार तो मुझे ऐसा लगा जैसे कि मैं कोई चलचित्र या सपना देख रहा हूँ। मेरा सिर चक्कर खाने लगा।

होते-होते मेरे पैर थरथराने लगे और मैं गोल पत्थरों के एक अम्बार पर ढह पड़ा। यहाँ से नदी के मोड़ पर स्थित निर्माण स्थल का पूरा दृश्य नज़र आने लगा। नदी की सतह के नीचे एक बड़ा खड्ड खुदा हुआ दीखा और उसके इर्द गिर्द सेतुओं की दीवारें खड़ी लगीं।

खड्ड में पनबिजलीघर की इमारत का ढाँचा खड़ा हुआ था। उसके ऊपर छः क्रेन आकाश चूम रहे थे। पनबिजलीघर से अंगारा तक की कोई एक किलोमीटर की दूरी पर मिट्टी का तैयार बाँध फैला हुआ था। इसी बाँध पर इस समय हम बैठे थे। ख़्याल था कि पनबिजलीघर के पूरे होते ही दीवारों वाले सेतु ढहा दिये जायेंगे तो अंगारा का पानी हहराता हुआ आयेगा और खड्ड में भर जायेगा। इसके बाद बाँध को नदी के दूसरे किनारे तक बढ़ा दिया जायेगा तो पाट बँध जायेगा और पानी पनबिजलीघर के बीच से बहने लगेगा। होते-होते पानी की सतह बाँध के ऊपर तक पहुँच जायेगी और एक समुद्र सा ठाठें मारने लगेगा।

यानी, साइबेरिया के बीच समुद्र!

ऐसी जिन बड़ी-बड़ी योजनाओं से पूरी की पूरी कायापलट की जा रही थी, उनके विषय में मैंने कितना ही कुछ पढ़ा सुना था, पर उनका महत्व कुछ यों ही सा समझा था। मगर इस समय एक निर्माण मेरे सामने था और मैं खड़ा सब कुछ अपनी आँखों से देख रहा था। कहना न होगा कि सारे दृश्य ने मुझे बहुत प्रभावित किया था और मैं खो सा गया था। नये कारखाने, नये बिजलीघर और नयी रेलवे लाइनें बनायी जा रही थीं और लोग अपनी इच्छा से काम करने के लिए अछूते प्रदेशों और साइबेरिया में आ रहे थे। महान कृत्यों और महती खोजों के युग की जो हवा चालीस साल पहले चलनी शुरू हुई थी, वह आज ज़मीन-आसमान एक किये दे रही थी और अपने साथ सभी कुछ उड़ाये लिये जा रही थी।

सोचिए तो कि इसी साइबेरिया को लोग 'कैदियों के प्रदेश' की संज्ञा देते रहे हैं। इस नाम को तो देश निकाला देकर किसी अजायबघर में भेज देना चाहिए। पड़ने को तो यह नाम पड़ा और उसका कारण भी है। यानी यह कि शायद नाम देने वाला अपनी नाक की सीध के आगे देख नहीं पाया और प्रदेश यह काफ़ी दूर बना रहा। पर, अब जब दूरी घटी तो यहाँ वह-वह करिश्मे नज़र आने लगे, जो पुराने योरोप के लोगों ने तो क्या ही देखे होंगे! देखना तो अलग रहा, शायद सपनों में भी इनकी बात न सोची हो उन्होंने। पुराना योरोप क्या था, ज़मीन के एक हिस्से पर सारा ढाँचा खड़ा था और

ठूसमठांस ऐसी थी कि साँस मिलना दुश्वार था। मगर यहाँ से वहाँ तक फैला हुआ यह अछूता प्रदेश इस समय बहुत लम्बी कुलाचें भर रहा है, और सो भी इतने बड़े पैमाने पर! यानी, साइबेरिया के बीच समुद्र, और भला क्या लेंगे आप!

बाँध और जगहोंसे कुछ अधिक सुनसान और शान्त था, पर नीचे से शोरगुल, घनाघन और खुदाई की पायोंवाली मशीनों की आवाज़ें बराबर आ रही थीं। एक लम्बी दुमवाली, छोटी, भूरी चिड़िया पत्थर पर बैठी, इधर-उधर गर्दन नचाती हमें उत्सुकता से देख रही थी...

"ओ, नन्हीं-मुन्नी चिड़िया!" लेओनीद कू-कू करने लगा। वैसे देखने में वह काफ़ी मजाकिया सा लगता रहा—लम्बा-चौड़ा, भद्दा सा, मुक्का-मुक्की करने में इनाम पाने वाले आदमी जैसा चेहरा और एक हाथ में एक जूता। सो दुलारभरे स्वरों में बोला—"नन्हीं-मुन्नी चिड़िया, पगली है तू! यानी, तू आयी है एक निगाह देखने? गपोड़िया कहीं की, बड़ी उत्सुकता है तेरे मन में, क्यों?! अक्सर ही यहाँ नज़र आती है यह चिड़िया। सारे पशु-पंछी यहाँ से चले गये। बस, एक यही चिड़िया रह गयी। अब यह है कि यह आती है, ढाँचे की एक सलाख पर बैठती हैं, और अचरज से मन ही मन सोचती है कि आख़िर यहाँ हो क्या रहा है!... बड़ी अच्छी चिड़िया है!.. तो, तोल्या, तुम हमारी टीम में शामिल होगे और हमारे यहाँ काम करोगे!"

"क्या?"

"क्यों नहीं? तुम्हें यह जगह पसन्द नहीं? तुम हो काठ के उल्लू! ब्रात्स्क में ऐसे कौन से हीरे जड़े हैं? जिसको देखो सिर उठाये उधर ही चला जा रहा है। वहाँ तिल रखने को जगह नहीं है। और, इससे क्या, जब तक वहाँ का निर्माण पूरा होगा, तब तक हमारे यहाँ काम चालू हो जायेगा। फिर, यह है कि यहाँ तुम सचमुच कुछ देखोगे। हम अंगारा नदी पर बाँध बनाने जा रहे हैं। तुम्हें पता है, यह नदी कितनी तेज और कितनी ज़ोरदार है? यह तो काम ऐसा होगा कि तुम घरवालों को लिखोगे इसके बारे में। मैं तुमसे ईमानदारी से कहता हूँ कि अगर तुम्हें थोड़ी भी समझ है तो यहाँ रुक जाओ। हम मिल-जुलकर नदी पर बाँध बनायेंगे और फिर एक साथ ब्रात्स्क चलेंगे। वहाँ तो अभी कुछ भी नहीं है। लोगों ने अभी जंगल काटना शुरू किया है। दूसरी तरफ़, यहाँ इतना महत्वपूर्ण और ऐसा काम है कि आदमी को दम मारने की फुर्सत नहीं है। चलो, शामिल हो जाओ मेरी टीम में। हम साथ-साथ रहेंगे।"

"देखिए, मुझे तो कुल्हाड़ी पकड़ने की भी तमीज नहीं।"

"मैं तुम्हें सिखलाऊँगा। आ जाओ, बुद्धू हो तुम। वह रहा हमारा ब्लॉक, देखते हो? खट-खट सुन रहे हो? मैं भी वहीं खट-खट करूँगा... सारी रात खट-खट-खट करूँगा।"

"लेओनीद, आपको तो अपने काम से ऐसा प्यार है, जैसे कि वह काम न होकर कोई लड़की हो।"

"उससे भी ज़्यादा! तुम कुछ भी नहीं समझते! वहाँ उधर देखो... वे सारे मकान मैंने बनाये हैं। मैं पहले दिन से हूँ यहाँ। जब आया था तो एक छानी को छोड़कर और यहाँ कुछ भी तो नहीं था। लकड़ी का सारा काम, सारी केसिंग इन्हीं हाथों से गुजरी है, देखते हो?... अच्छा, तुम हमारी टीम में काम करोगे या नहीं?... हाँ करो, नहीं तो तुम्हें ढकेलता हूँ नीचे फौरन।"

उसने मुझे धक्का दिया और हम नीचे चले आये। हमारे जूतों में बालू भर गयी और हमने भर जाने दी। लेओनीद मुझे खास दफ़्तर में ले आया और सीधे चीफ इंजीनियर के पास घसीट ले चला।

"जर रुकिए तो... मैं एकदम नहीं.. मैं..."

"मुँह बन्द करो... चुप रहो!"

वह चीफ इंजीनियर के कमरे में पहुँचा और मेरी वकालत करने लगा—"लड़का सीधे-सीधे मास्को से आ रहा है। दस दर्जे पास है। मन-उमंगों और जोश से भरा है... हमारी टीम को लोगों की बड़ी ज़रूरत है।"

चीफ इंजीनियर को दूसरे कितने ही काम करने थे। वह मुस्कराया और मुझपर निगाह डालते हुए बोला—"लेओनीद, हमें बढ़ईयों की नहीं, कंकरीट बिछाने वालों की ज़रूरत है। विभाग चार, मोस्कालेंको की टीम... अगर राजी हो तो अर्जी लिख लो।"

बस तो लेओनीद बोलता गया और मैं जैसे कि सपने में अर्जी लिखता गया। इंजीनियर ने ऊपर के कोने में लिखा—'मंजूर'; और हम झपटकर बाहर आ गये। इसके बाद हम प्रशासन-विभाग में गये और वहाँ भी मैंने दो-एक फार्म-वार्म भरे। सब कुछ तड़पड़, चटपट होता चला गया। दफ़्तरी घिसघिस जैसा कुछ भी नहीं नज़र न आया।

"यह क़ागज़ लेकर मकान-मैनेजर के पास चले जाओ। तुम्हें रहने की जगह तुरन्त मिल जायेगी। सोमवार से दूसरी शिफ्ट में काम करना शुरू कर दो। और, देखो, जाकर अपना ओवरऑल ले लो।"

मैं दफ़्तर से बाहर निकला तो ठिठका और आश्चर्य से अवाक् होकर सोचने लगा—"यह सब हो कैसे गया? मैं ले लिया गया हूँ—क्या सचमुच? और अब ब्रात्स्क का क्या होगा?"

"तुमसे मैंने कहा नहीं कि इससे कुछ नहीं, ब्रात्स्क हम लोग चलेंगे," लेओनीद खुशी से भरी हुई आवाज़ से मेरे कानों में चीखा, "तुम्हें तो प्रसन्नता से नाचना चाहिए, गधे! किसी ने सच कहा है कि बेवक़ूफ़ तकदीर के सिकन्दर होते हैं। तुम्हें पता है कि यह मोस्कालेंको की टीम क्या है? यह यहाँ की सब से अच्छी टीम है। पिछले छः महीनों से चुनौती की ध्वजा टीम के लोगों के पास है और कोई ले नहीं सका है उनसे।"

"लेओनीद, मुझे तो कंकरीट के काम का अब भी नहीं मालूम!"

"हे भगवान! सीख लोगे सब कुछ, कह तो रहा हूँ। काम देवी-देवता तो करते नहीं,

आदमी ही करता है। अगर यह लोग जिस आदमी को पाते हैं उसी को ले लेते हैं तो इसका मतलब यह है कि इन्हें लोगों की सचमुच सख़्त ज़रूरत है। फिर दस साल की स्कूल की पढ़ाई कोइ फूँक मारकर उड़ा देने की चीज़ तो है नहीं, समझे, मास्को निवासी महोदय? बात समझ में आती है? मैं किसी दूसरे को नहीं दे सकता तुम्हें। हाँ, मोसकालेंको टीम वाली लड़की की बात और है... देखो, इंजीनियर ने तुम्हें दाँत से पकड़ा कि नहीं! फिर सब से अच्छी टीम में भेजा है तुम्हें! उसपर अपनी टीम में लाने के लिए इस बीच मुझे कितना सिर तुमपर खपाना पड़ा! खैर, जाने दो, जो भी हो, तुम मेरे धर्म के बेटे हो—बारहवें।"

"अरे, आप... शैतान की आँत है!"

"अच्छा, और तुमने समझा क्या था कि मैं समय बरबाद करने के लिए तुम्हें यहाँ लाया था या हँसी-मजाक करने के लिए! अब ब्रात्स्क में काम करेंगे तुम्हारे फरिश्ते! हुर्रा!"

थिज़िक़, कहाँ जाकर मर गये तुम!

अब और केवल अब मैंने समझा कि ब्रात्स्क की मेरी मंजिल अचानक ही कैसी और कितनी लम्बी हो गयी। पर सोचिए तो कि दफ़्तरी घिसघिस के बिना, सारी औपचारिकताओं का तडपड़ पूरा हो जाना कितना अद्भुत रहा! "कृपया कंकरीट के इस कामगार को जगह दीजिए" वाला बेशकीमती क़ागज़ सहेजकर हम जान छोड़ मकान मैनेजर के दफ़्तर की ओर दौड़ चले। हमने एक सेतु के किनारे-किनारे कोना काटा, खुदाई की पायों वाली मशीन भद्देढंग से लहराती रही कि हम उसके खड्ड के बीच रपटे और एक बार में दो-दो सीढ़ियाँ पार करते हुए खड्ड के बाहर आये।

हम निर्माताओं की बस्ती के बीच से झपटते हुए निकले और इधर-उधर चरती बकरियों से भरे दलदल के इस पार से उस पार तक आधारों पर खड़े पुल से गुजरे तो उसपर बिछे लकड़ी के तख़्ते रह-रहकर लचे और चरमराये। आख़िरकार एक पहाड़ी पर पाँचवें नम्बर की बस्ती नज़र आयी। मकानों की क़तार बड़ी खुशनुमा लगी। मकान सब एक तरह के देखे, जैसे कि खिलौनोंवाले सिपाही।

मकान मैनेजर का दफ़्तर छोटे से घर में नज़र आया। घर बाहर से देखने पर किसी किसान की मामूली झोपड़ी सा लगा, पर अन्दर जाने पर ढेर के ढेर स्याही से रंगे डेस्क, गणना करने के यंत्र और टेलीफोन दीख पड़े। हर कोने से सोखतों और फाइलों की भभक आयी। डेस्कों के पास बैठे लोग, दीन-दुनिया से बेखबर, हिसाब की किताबों में खोये मिले। 'मकान मैनेजर' की तख़्ती के पास लोगों की लम्बी क़तार खड़ी दीख पड़ी।

"सुपरिटेण्डेण्ट कहाँ है?" हमने हाँफते हुए पूछा।

"वे लिनेन के लिए गयी हैं। आपको इन्तज़ार करना पड़ेगा।"

"बहुत देर तक?"

"नहीं।"

पागलों की तरह दौड़ने के कारण बहुत देर तक हमारी साँस नहीं सधी। हम स्टूलों पर बैठ गये कि ठीक, हम इन्तज़ार करेंगे। यहाँ बड़ी गरमी और घुटन का अनुभव हुआ। सुना—

"सुनिए, यह भी क्या मज़ाक है? उस हॉस्टल में पूरे छः लोगों का खानदान रहता है। आप कब तक रखेंगे मुझे उसमें?"

"पहिली बस्ती में 18 नम्बर का मकान तैयार होते ही आप उसमें चले जायेंगे।"

"वायदों पर वायदे करते चले जा रहे हैं आप। पहले कहा मकान नम्बर छः, फिर बतलाया मकान नम्बर बारह, और फिर समझाया मकान नम्बर तेरह... मैं चीफ के पास जाऊँगा। यह सब बकवास अब नहीं चलेगी मेरे साथ। मैं रात की ड्यूटी खत्म कर अभी-अभी लौटा हूँ और आराम करने के बजाय आपकी ड्योढ़ियों की खाक छानता फिर रहा हूँ।"

"मैंने आपसे कहा न कि 18 नम्बर का मकान पूरा होते ही..."

"भाड़ में जाये आपका 18 नम्बर का मकान। मुझे 13 नम्बर में एक कमरा दे दीजिए।"

"तेरह नम्बर भरा हुआ है।"

"पर, आपने मिस्त्री को कमरा क्यों दिया? मैं जाने कब से चक्कर काट रहा हूँ और वह लाठ साहब है कि उसे जगह मिल गयी। उसकी एक सुपरिटेण्डेण्ट बहन है—बस न? पर मेरे साथ तो पूरा का पूरा परिवार है।"

"इससे क्या, हम सभी के साथ परिवार है।"

"मकान-मैनेजर कहाँ हैं?"

"मकान-मैनेजर मकान के बड़े दफ़्तर में हैं। वहाँ एक कान्फ्रेंस हो रही है। आप इन्तज़ार कीजिए और वे आ जायें तो जो कहना हो उनसे कहिए। मैं तो हिसाब-किताब रखने का काम करती हूँ, इसलिए मुझे अपना काम करने दीजिए।"

"क़तार में आख़िरी आदमी कौन है?"

"आख़िरी थी एक औरत, पर वह कहकर चली गयी है कि मैं जा रही हूँ मकानों के बड़े दफ़्तर में चीफ के कमरे की खिड़कियाँ चूर-चूर करने।"

"हमें बावर्चीखाने में रख छोड़ा है इन्होंने," एक मोटा सा जवान मीठे ढंग से मुस्कराते हुए बोला, "तीन परिवार हैं। सब की नयी-नयी शादियाँ हुई हैं। हमने कुछ अर्दे-पर्दे लटका रखे हैं, पर जब रात आती है तो हर आदमी दूसरे आदमी के सो जाने का इन्तज़ार करता है। नर्क है बिल्कुल। सच तो यह है कि इसका प्रभाव आदमी की मेहनत कर सकने की ताक़त पर पड़ता है। मेरी बात सच मानिए!" सब लोग हँसने लगे।

"बच्चे न हों तो टैक्स लगाने को तो यह लोग चार पैरों से दौड़ पड़ते हैं, पर लोग नयी-नयी शादी करते हैं और कमरा देने की बात आती है तो इनकी नानी मर जाती है।"

"मकान मैनेजर कहाँ है?"

"मैंने आपसे सीधी-सादी रूसी भाषा में कहा कि वे मकानों के बड़े दफ़्तर में हैं और एक कॉन्फ्रेंस में हिस्सा ले रहे हैं। इन्तज़ार कीजिए।"

क़तार बढ़ती ही गयी और लोग नाराज़ होकर तरह-तरह से बिगड़ने लगे। लेओनीद को और मुझे इस बात से बड़ी खुशी हुई कि सुपरिटेण्डेण्ट के अलावा हमें और कुछ भी नहीं चाहिए।

हम बहुत देर तक बैठे रहे कि बस्ती के आधे लोगों के घर-बार की बातें तो हमने जान ही लीं। उस हिसाब किताब रखने वाली के लिए हमारा मन बड़ा दुखा। वह गरीब बेकार में ही शहीद होती रही। मकान-मैनेजर की गैरहाज़िरी में जो पाता अपना दुख-मुसीबत, शिकायत-शिकवा उसी की खोपड़ी पर दे मारता।

आख़िरकार कोई दो घण्टे के इन्तज़ार के बाद सुपरिटेण्डेण्ट नज़र आयीं—सुन्दर सी जवान औरत, चाल-ढाल में इत्मीनान और ठहराव। बोलीं—

"अरे, वेरा, दुकान में ड्रेस का बड़ा खूबसूरत कपड़ा अभी-अभी आया है। चाहो तो देख आओ।... और आप लोग मेरी राह देख रहे हैं?... आपका क़ागज़ कहाँ है? एक?"

"एक... उसे कृपया हमारे घर में रख दीजिए।"

सुपरिटेण्डेण्ट ने एक चिट पर कुछ लिखा।

"बस, अब आप मकान मैनेजर के पास जाइए। उनसे दस्तख़त करवा लाइए। ज़रूरी है। इसके बाद आपको लिनेन मिल जायेगी।"

"मकान-मैनेजर के पास जाना होगा? लेकिन, यह नहीं हो सकता कि लिनेन पहले मिल जाये और बाद में हम मकान-मैनेजर के पास चले जायें?"

"नहीं, हमारे यहाँ क़ायदे-क़ानून हैं। उनके दस्तख़त के बिना मैं कुछ नहीं कर सकती। समझे!"

ऐसी-तैसी में जाये! यानी हम क़तार के आख़िर में खड़े हो गये। ऐसा मालूम होता तो कभी के आगे खड़े हो गये होते। पूरे दो घण्टे खड़े खपते रहे! अब हिसाब-किताब रखने वाली के लिए हमारे मन में कोई दर्द नहीं रहा।

"मकान-मैनेजर कहाँ हैं? कब तक आयेंगे आख़िर?"

"मैंने आपसे सीधी-सादी रूसी में कह दिया न..."

"तो अब ज़रा सीधी सादी तुर्की में बतला दीजिए।"

"बेकार की बकबक बन्द कीजिए—समझ में आया!"

"हमें मकान-मैनेजर की ज़रूरत है।"

यानी, एक घण्टे तक और यही राग चलता रहा। लेओनीद बोला—'हो सकता है कि किसी ऐसे बड़े सवाल पर सोच-विचार हो रहा हो कि कॉन्फ्रेंस तभी खत्म हो जब

हम कुछ करें।" लेओनीद आदमी क्या, हीरा निकला। मेरी तो लोटिया ही डूब जाती उसके बिना।

"साथी बुककीपर, मकान-मैनेजर का नाम क्या है?"

"चिजिक।"

"आओ, तो मकानों के बड़े दफ़्तर में चलें।"

फिर खिलौनों के सिपाहियों जैसे मकानों के बीच बहुत देर तक भटकने के बाद हम जैसे-तैसे मकानों के बड़े दफ़्तर में आये। यह वैसी ही एक दूसरी झोंपड़ी नज़र आयी—जगह-जगह हिसाब करने के वैसे ही यंत्र, वैसे ही टेलीफोन, वैसा ही हिसाब-किताब करने वाला और दरवाज़े पर 'मैनेजर' की तख़्ती के पास खड़ी वैसी ही लोगों की क़तार। खिड़कियों में पूरे के पूरे शीशे जड़े दीखे।

"कैसी कॉफ़्रेन्स?" बुककीपर ताज्जुब में पड़कर बोला, "आज तो कोई भी कॉन्फ्रेंस यहाँ नहीं हुई।"

"शायद चिजिक चीफ़ के दफ़्तर में हैं।"

"लेकिन खुद चीफ़ तो हैं नहीं। वे प्रशासन-विभाग की एक कॉन्फ्रेंस में हिस्सा लेने के लिए गये हुए हैं। मेरा ख़्याल है कि चिजिक कुछ देर पहले यहाँ आये थे और फिर अपने दफ़्तर लौट गये।"

क़िस्मत ही फूटी निकली, यानी हम मकानों का बड़ा दफ़्तर ढूँढ़ने में ही लगे रहे कि इस बीच वे यहाँ आये और अपने दफ़्तर लौट गये। हम वापस लपके और हाँफने लगे।

"वे आ गये?"

"नहीं।"

"जानते हो, वे दुकान में ज़रूर होंगे," बुककीपर ने हमपर रहम खाते हुए अपनी ओर से कहा।

हमने सोचा कि यहाँ की गरमी और घुटन में जान देने और क़तार में खड़े लोगों की बकबक सुनने से अच्छा तो यही है कि दुकान चले चलो। पर, दुकान खाने की छुट्टी के कारण बन्द मिली। हम दूसरी दुकान में गये, पर वहाँ भी कोई नहीं मिला। आख़िर को चिजिक को बुरी तरह कोसते, पसीने से तरबतर हम फिर दफ़्तर में लौट आये।

"ओह, ख़्याल आ गया! उन्हें पाँचवें सेक्टर के क्लब में होना चाहिए। क्लब में मरम्मत का काम चल रहा है," बुककीपर ने दूसरी बार कठबैठी बैठाली।

ठीक! हमने सोचा कि जब तक हम चिजिक के बच्चे को खोज न लेंगे, तब तक हम भी चैन न लेंगे।

क्लब एक तूफ़ान की स्थिति में मिला। पेण्टर दीवारों की रंगाई करते रहे। उनमें से कोई भी चिजिक का अता-पता नहीं बतला सका। इस तचती धूप और धूल-गर्द

में इतनी दौड़धूप के बाद हमारे पैर ज़वाब देने से लगें। कुत्ते घास पर पसरे औंघाते रहे। बकरियाँ सड़क पर पड़ी बराबर मुँह चलाती रहीं। उनके बच्चों के मुँहों में टहनिचों के बने तो बड़े बँधे रहे कि वे कहीं उनके थनों में मुँह न लगा दें। किसी की जवान पत्नी अपने घर के साये में अपने बच्चे के कपड़े धोती और उन्हें रस्से पर लटकाती रही।

लेओनीद ने थूका, गालियाँ दीं और एक दूसरी तरकीब सोची। वह फिर दफ़्तर गया और बुककीपर से चिजिक के घर का पता पूछ आया। मकान चिजिक का अपना था। पता था—50, कोम्पोजीतोर्सकाया गली।

क़तार में खड़े तीस लोग हमारी वापसी का इन्तज़ार करते रहे, जैसे कि कह रहे हों—"तुम चिजिक को जिन्दा-मुर्दा जैसे भी हो ले आओ, हम तुम्हारा काम सबसे पहले हो जाने देंगे।" मन ने कहा—पर, जहाँ तक हमारा सवाल है, हमें तो सिर्फ़ उसका दस्तखत चाहिए एक शब्द, एक कलम। हॉस्टल में जाने कितनी खाली चारपाइयाँ हैं। लिनेन की भी कमी नहीं है। और तो और, सुपरिटेण्डेण्ट तक मौजूद है। वैसे यह है कि ड्रेस का खूबसूरत कपड़ा उसके दिमाग़ में नाच रहा है और वह किसी भी क्षण यहाँ से चली जा सकती है। चिज़िक को मुझमें कोई व्यक्तिगत दिलचस्पी तो है नहीं। मेरी ज़िन्दगी के बारे में भला क्या पूछेगा मुझसे! वह तो सिर्फ़ स्याही में कलम डुबोयेगा और जैसे सौ बार, दो सौ बार या हज़ार बार एक शब्द खींच चुका है, वैसे एक बार और खींच देगा। ज़रूरत है सिर्फ़ उसके अफ़सरी हाथ की। कानून ही ऐसा है। ठीक है तो, जैसे भी होगा, जहाँ से भी होगा, हम उसे ज़िन्दा-मुर्दा निकालकर ही दम लेंगे।

और हमने आख़िरकार उसे खोज ही लिया।

सच बात तो यह है कि वह बहुत अच्छी हालत में न था, पर हाथ-पैर चला रहा था। यानी पौराणिक चिजिक महोदय, 50, कोम्पोजीतोर्सकाया गली के अपने घर के पिछले हिस्से में घुटनों-घुटनों तक कीचड़ में धँसे खड़े थे, नशे में धुत्त थे और होज-पाइप से अपने सब्जी के बगीचे के पौधों को पानी दे रहे थे।

ऐसी गरमी में बगीचे की सिंचाई की तो बेहूदी बात सोचिए! पातगोभी हो तो झुलसकर रह जाये!

कौन-सी है यह सड़क, कहाँ है वह मकान?

नृत्य की आयोजना मूखिना गली के बीच में की गयी। चाँदनी में सारी लड़कियों का रूप ऐसा सजा कि क्या कहिए! हर ओर से इत्र, सूखी घास और ताजे दूध की महक आती रही। गायें अभी-अभी दुही गयी थीं।

मैं जिस लड़की के साथ नाचा, उसका नाम तोन्या था—बदन छरहरा, पर पोढ़ा, चेहरा किताबी और नाक उभरी हुई। आँखें बड़ी और काफ़ी दूर-दूर थीं। बालों में

चोटियाँ थीं और जूड़ा बँधा हुआ था। भौहें पतली घनी और ऐसी रची हुई थीं, जैसे लकड़ी के कोयेले से किसी ने दो लकीरें खींच दी हों। मैंने मन ही मन उसका नाम रखा—'बाज की सी भौहोंवाली तोन्या।'

मेरा ख़्याल है कि मुझे उससे थोड़ा बहुत प्यार हो गया, क्योंकि उसे देखने के बाद न तो मुझे लेओनीद का ध्यान रहा और न अगले दिन के कामों का—यानी ओवरऑल लेने और मोटी-मोटी ज़रूरी बातें सुनने का ख़्याल तक दिमाग़ से उतर गया। मैंने तोन्या को प्रीमोर्सकाया गली में स्थित उसके हॉस्टल पहुँचाया और फिर आराम से टहलते हुए आज़ादी से साँस लेता, हाथ लहराता और ज़ोर-ज़ोर से गाता लौटा। जी चाहा कि ऐसे गाऊँ के मेरा गाना सारी दुनिया सुने। मेरा मन उछाल से उमड़ता रहा।

रात के सन्नाटे में बस्तियाँ शान्त मिलीं। कभी एक कुत्ता यहाँ भूंक उठा तो कभी एक कुत्ता वहाँ। मैं दलदल के आरपार के तख़्तों के पुल के ऊपर से गुज़रा तो जूतों की आवाज़ होने लगी। सड़क की एक अकेली टिमटिमाती रोशनी जंग लगे पानी और घास से ढके ढूहों पर पड़ती रही। मुझे अपनी बैरकों की खिड़कियों की क़तारों से प्रकाश छनता नज़र आया।

सहसा ही मैं असमंजस से ठिठक गया कि यह सब तो बहुत अच्छा है, पर मेरा घर आख़िर कौन सा है? यह तो मैं जानता था कि पहिला घर मेरा नहीं है, पर सवाल उठा कि तो फिर मेरा घर दूसरा है या तीसरा? आशंका के कारण बदन में एक झुरझुरी सी दौड़ गयी और मैं झटके से कल्पना की दुनिया से ठोस दुनिया में आ गया। यह लीजिए घर का नम्बर ही दिमाग़ से ग़ायब!

मकान मैनेजर के दफ़्तर में कोई दिखा नहीं जिससे पूछ लेता। इस समय हो भी नहीं सकता था। मन ने कहा—"मान लो किसी का दरवाज़ा खटखटाओ तो क्या कहोगे कि कृपया यह बतला दें कि मैं कहाँ रहता हूँ?!"

मैं बस्ती की सड़क पर इधर-उधर टहलता और दिमाग़ पर ज़ोर डालता रहा कि कोई पहचान कहीं नज़र आ जाये। परन्तु, सारी बैरकें मटर के फली के दानों की तरह एक सी लगीं। सब में एक ही तरह की बरसातियाँ, एक से दरवाज़े, और, और तो और, सारे रास्ते भी एक से।

जैसे कोई जीता-जागता सपना आँखों के आगे साकार हो जाये! एक दरवाज़े के पास गया, हक्का-बक्का सा खड़ा रहा और फिर जल्दी-जल्दी उल्टे पैरों लौट पड़ा। आख़िरकार याद आया। मकान में घुसते ही सामने एक दरवाज़ा पड़ता है और उस पर लिखा हुआ है—'सुखाने का कमरा!'

हिम्मत कर एक घर में घुसा तो परिचित चिन्ह ने बढ़कर मेरा स्वागत किया और मैं कमरों की गिनती करता गलियारे के किनारे-किनारे आगे बढ़ता गया। मेरा दरवाज़ा बायीं ओर से तीसरा है, यह मुझे याद रहा। इस याद से बड़े सन्तोष का अनुभव हुआ। यह रहा कमरा! मैने झटके से दरवाज़ा खोला तो जैसे आगे कदम बढ़ाये, वैसे ही पीछे

लौट पड़ा—पूरे कमरे में भाप ही भाप थी और एक औरत समीज पहिने कुछ बच्चों को नहला रही थी। मैंने मन ही मन कहा—यह तो किसी भी तरह अपना ठिकाना होने से रहा!

इसके बाद कुछ देर तक और मकानों के बीच भटकता रहा। अन्त में हारकर घास पर बैठ गया और हर परिस्थिति के लिए तैयार हो गया कि अब जो होना होगा सो होगा। ऐसा लगा जैसे कि मुझे यानी इर्कूत्स्क पनबिजलीघर के चौथे विभाग के कंकरीट मास्टर को, यानी एक बिस्तर, दो चादरें, एक तकिया और एक भड़कीले कम्बल के शानदार मालिक को सारी रात तारों की छाँव में ही बितानी पड़ेगी!

पर, दिन की थकान से मैं इस तरह चूर-चूर हो गया था और शरीर का अंग-अंग इस तरह आराम के तकिये के लिए तरस रहा था कि मैं उछलकर खड़ा हो गया। संकल्प ने कहा—"चाहे सारी रात बीत जाये, पर मकान तो मैं खोजकर ही दम लूँगा।"

सोचा कि क़ायदे से खोज की जाये। क़तारों के आख़िरी मकान पीछे छूट गये थे और पहचानने के लिए इने-गिने ही बाकी रह गये थे। जिस मकान में औरत बच्चों को नहला रही थी, उसकी भी गिनती की जा चुकी थी। पर, वह था कौन सा, यह बात फिर दिमाग़ से उतर गयी।

बुद्धूपन के लिए अपने को कोसते हुए मैंने खोज नये सिरे से शुरू की तो फिर उस समीजवाली औरत के सामने जा पहुँचा। अब वह बच्चों को सुलाने में व्यस्त मिली। सो, मुझे देखते ही तेजी से गरजी और लपककर गीला कपड़ा उठाते हुए मुझे बरसाती तक खदेड़ गयी।

दूसरे घर में घुसा तो पूरी पार्टी का सरंजाम देखा—गीत-संगीत, तश्तरियों की झनझनाहट सुनाई पड़ी। सो राग-रंग में मस्त लोग मुझे देखकर ख़ुशी से ऐसे खिले जैसे कि बस, एक मेरी ही कमी रही हो वहाँ। उन्होंने मेरे हाथ पकड़े और मुझे बरबस मेज के पास बैठालने लगे। पर, मुझे उन लोगों को निराश करना पड़ा और इसका दुख मुझे आज तक है।

अगले घर में यानी बाईं ओर के तीसरे मकान में घुसा तो दरवाज़ा बढ़ी-दाढ़ीवाले एक निन्दासे आदमी ने खोला और बोला—"मैं सब कुछ जान-सुन चुका हूँ—अगर दुबारा तुम यहाँ मेरी पत्नी के पास आये तो तुम्हारी हड्डी पसली एक न बचेगी, समझे!"

होते-होते आधी रात बीत गयी कि अन्त में जैसे-तैसे आख़िरी क़तार में मैंने अपना घर पहचाना। और जब आज सुबह शॉप के लिए रवाना हुआ तो कल के बुरे सपने की याद हरी हो उठी और मैने पलस्तर के मसाले से दरवाज़े पर बड़ा सा क्रॉस बना दिया।

हमारा शानदार कम्यून–

मैं स्कूल के पाँचवें फार्म में था तो कामगारों की और खास तौर पर बड़े-बड़े निर्माण-स्थलों में काम करने वाले लोगों की तस्वीर अक्सर ही मेरी आँखों के आगे आ जाती थी। वे मुझे समाजवादी होड़ाहोड़ी और मानकों की पूर्ति के वातावरण में डूबे जुड़ाई के चेहरे चेहरों पर चढ़ाये, मेहनत करने में भूतों से लगते थे।

पर, अब मुझे लगता है कि नहीं, वे सब तो मेरी ही तरह मामूली लड़के-लड़कियाँ है... साधारण लोग हैं—क्या साइबेरियाई लेओनीद, क्या बाज की सी भौहोंवाली तोन्या, क्या गाड़ीवाला दिमीत्री स्त्रेपेतोव और क्या हॉस्टल के कमरे के मेरे साथी! उसपर कमरे के साथियों ने तो बिना किसी तरह की चूँ-चपड़ के मुझे सहज स्नेह से स्वीकार कर लिया–जैसे कि कोई बात ही न हो–नये आदमी हो, खैर ऐसा भी क्या है! उन्होंने मुझसे मेरे विभाग का नाम पूछा और साथ खाना खाने की दावत दी। तो यह है वर्णन उन लोगों का जिनके साथ मुझे यहाँ रहना है।

पेत का–हमारे चौथे विभाग में काम करता है। बिजली मिस्त्री है देखने में नाटा, बदन गठा हुआ, पहलवानों का सा मजबूत, और हाथ लम्बे। तार के टुकड़े, इन्सुलेटिंग टेप, सेफ्टी फ्यूज, प्लास और ऐसी ही दुनिया भर की चीज़ें अपनी जेबों में भरे रहता है। पहले दिन भेंट हुई तो ताम्बे के तार और कतरनियों की सहायता से बटन लगाता मिला। बोला–"इस तरह बटन गिरेगा नहीं। और गिरे या न गिरे, घर में तागा तो है नहीं।"

कल पेतका ने खिड़कियाँ ढकने के लिए हमारे सारे कम्बल हथिया लिये और बोला–"बैठना चाहो तो इसी घुप अँधेरे में बैठो, वरना बाहर की हवा खाओ।"

पेतका शौकिया फ़ोटोग्राफर है। तो हमें लगता है कि न तो हमें इस परिस्थिति से छुटकारा मिलेगा और न ही कोई और चारा है हमारे पास। पेतका गैर-पेशेवर फ़ोटोग्राफरों की उस कोटि में आता है, जो हर काम अपने ही हाथों से करने पर ज़ोर देते हैं। चिन्ता नहीं इससे नुकसान हो तो हो! उसके पास के साज-सामान में एक ही चीज़ है जो कारखाने की बनी है, और वह है 'स्मेना' नाम का केमरा। बाकी सारी चीज़ें घर की बनी हैं—क्या एन्लार्जर, क्या लैम्प, क्या धुलाई की प्लेटें और क्या डिवेलव करने और जोड़ने के सुलेशन। मजा यह है कि मग से पानी पीने के पहले उसे गरम पानी से धोना पड़ता है। क्या मेज, क्या सामान की आलमारी और क्या चारपाइयाँ हर जगह रसायन ही रसायन नज़र आते हैं। फ़ोटो कहीं न कहीं सुखानी चाहिए। तो, वह उन्हें हमारी चारपाइयों पर बिछा देता है। और तो और, ऐन तकियों पर उनका राज्य हो जाता है। पेतका को चमक चढ़ानी होती है तो वह फ़ोटो खिड़कियों पर चिपका देता है। कभी-कभी वे ऐसे चिपकती हैं कि अलग नहीं हो पातीं। नतीजा यह कि दो खिड़कियों के शीशे टूट चुके हैं और हमारे तौलियों को कील से जड़कर आड़ कर दी

गयी है। (अपना तौलिया तो पेतका को खुद अपने हाथ पोंछने के लिए चाहिए न!)

हमारी सिर्फ़ दो तश्तरियाँ ऐसी रह गयी हैं जो खाने के काम आती हैं। बाकी सब फ़ोटोग्राफ़ी के साज-सामान में शामिल कर ली गयी हैं। आज सुबह नमक की जगह मैंने सोडियम थिओसल्फ़ेट डाल दिया और समझ न पाया कि पॉरिज का जायक़ा ऐसा अज़ीब-अज़ीब क्यों है? पेतका ने देखा तो पॉरिज बाल्टी के गन्दले पानी में उड़ेल दी और दुबारा यकीन दिलाते हुए बोला—"सोडियम थिओसल्फ़ेट कोई ऐसा तेज़ ज़हर नहीं। कोई बात नहीं। वायदा करता हूँ—इसके बदले तुम्हारी ऐसी शानदार फ़ोटो खींच दूँगा कि बस!" सो ऐसे वायदे तो वह हर एक से ही करता रहता है।

कुबिशकिन—उसका पहिला नाम सेर्गेई है, पर कुबिशकिन* उससे कहीं अधिक उसपर जमता है, इसलिए हर आदमी उसे उपनाम से ही पुकारता है। आदमी शान्त, आज़ाद और खोजी स्वभाव का है। कभी अपनी चीज़ों में कभी किताबों में और कभी तश्तरियों में जाने क्या खोजता रहता है। वह अपने बिस्तरे पर चुपचाप बैठता है तो भी देखने वाले को कुछ खखोड़ा-खखाड़ी करता और होंठों-होंठों बुदबुदाता मालूम होता है।

वह मकड़ीबाज और बाहर घूमने का बड़ा शौकीन है। घर आता है या तो कुछ खोजने-खाजने या उल्टे-सीधे दो कौर मुँह में डालने। पेतका का कहना है कि कभी-कभी तो वह सारी रात बाहर रहता है।

सच बात यह है कि आजकल कुबिशकिन का नाजुक मामले में उलझा हुआ है, यानी उसकी शादी होने जा रही है। मेरे इस कमरे में क़दम रखते ही पेतका ने मुझसे इस बात की चर्चा की और बोला—"कुबिशकिन आदमी तो अच्छा है, पर ज़रा बेवक़ूफ़ है। ज़रा सोचो तो मोहब्बत करता है एक ऐसी लड़की से जो हॉस्टल में रहती है, और उसकी तरह ही ऐसी ग़रीब है, जैसे गिरजाघर का चूहा। अगर कभी मैं शादी करने पर आया तो देखना। कम से कम इर्कूत्स्क के किसी ऐसे कुलक की बेटी का चुनाव करूँगा, जिसके पास एक घर होगा और बहुत न होंगी तो थोड़ी बहुत गायें तो होंगी ही। शादी के बाद फ़ोटोग्राफी के लिए मैं एक 'अँधेरा कमरा' ठीक-ठाक करूँगा, हर सुबह क्रीम मिलाकर चाय पिऊँगा और बड़ी-बड़ी तश्तरियाँ भर-भरकर जाँघोंवाला गोश्त और अण्डे खाऊँगा।"

पर, इससे कुछ नहीं, साफ है कि प्यार का रंग गाढ़ा होता जा रहा है। कुबिशकिन की आदत हो चली है और वह बात-बात में जब-तब ही 'गाल्या और मैं' का प्रयोग करने लगा है। कल शाम को पहिली बार वह उसे कमरे में लाया तो हम लोगों ने बड़ी ही बेरहमी से लड़की को सिर से पैर तक आँखें फाड़-फाड़कर देखा।

दुबली पतली लड़की बड़ी लजीली निकली। उसका चेहरा सादा और उतरा हुआ लगा। हाथ लाल और भद्दे नज़र आये और उसकी अपनी समझ में न आया कि करे

* रूसी शब्द 'कुबिशका' से निकला है। 'कुबिशका' के मानी होते हैं—फूले हुए, भद्दे पेटेवाला घड़ा।

तो उन हाथों का करे क्या! वह अकुशल कामगार है और सिर्फ़ पाँच वर्षों तक स्कूल की पढ़ाई चला सकी है।

दोनों कुछ इस तरह कमरे में धँसे—पहले कुबिशकिन अकड़ता और आज़ादी और लापरवाही से लहराता अन्दर आया। फिर उसके पीछे-पीछे अन्दर आयी गाल्या—चुपचाप, सहमी सहमी सी। हमने कुर्सी उसकी ओर बढ़ाई। कुबिशकिन ज़रा फुर्सत से कुछ ढूँढ़ने-ढाँढ़ने और हमसे ज़ोर-ज़ोर से बातें करने लगा—

"बड़े ब्लॉक का काम कल खत्म हो जायेगा... शीशा कहाँ है, पेतका?... कोई ब्लेड है तुम्हारे पास?... स्तेपान छुट्टी पर चला गया, तुमने सुना?"

इस बीच लड़की कुर्सी के सिरे पर ऐसी सिकुड़ी-सिमटी बैठी रही जैसे कि वहाँ हो ही नहीं।

वह बहुत ही अधिक संयम और संकोच का अनुभव करती रही। क्षण-क्षण पर उसने अपने पैर कुर्सी के नीचे छिपाने की कोशिश की। बात यह है कि उसके जूते पुराने और लड़ाई के पहले के ढंग के थे और उनकी एड़ियाँ बुरी तरह घिस गयी थीं।

सो कुबिशकिन और पेतका ने आपस में सारी ख़बरों के बारे में बातचीत की और ताजे फ़ोटो और निगेटिव देखे। इसके बाद कुबिशकिन ने दीवार पर नज़र दौड़ाई और बोला—"चलो चलें, गाल्या।"

लड़की दूसरे ही क्षण उठ खड़ी हुई और धीमे स्वरों में अलविदा कहती हुई उसके पीछे-पीछे बाहर चली गयी—निष्ठावान आज्ञाकारी की भाँति

जख़ार जख़ारिच—मेरे कमरे का तीसरा साथी सब से अलबेला है। ऐसा आदमी मुझे अब तक कोई नहीं मिला। उम्र साठ है। कल्पना तो कीजिए ज़रा फ़ौजी चाल-ढालवाले, लम्बे, फुर्तीले, अधेड़ व्यक्ति की। इसमें जोड़िये सिर के सन से सफ़ेद बाल। पर, बालों की इस सफ़ेदी का उसके स्वभाव से कोई सम्बन्ध नहीं। यही कारण है कि जब आपकी निगाह सिर पर जाती है तो आपको बालों का रंग हल्का, राख का सा मालूम होता है और कुछ नहीं। उस पर बालों के बीच की लहर आपको और धोखे में डाल देती है। लेकिन ज़रा और पास से देखने पर लगता है कि नहीं, यह तो उम्र की करामात है। इसपर भी उसे बूढ़ा कोई नहीं कह सकता—मूँछ-दाढ़ी हमेशा कायदे से बनी हुई, शरीर के अंग-अंग में उमंग और नाक मांस से भरपूर। सो, हमारा यह जख़ार जख़ारिच सात टन की ओहारवाली 'माज 205' चलाता है और पिछले चालीस वर्षों से ड्राइविंग का काम करता रहा है।

यों उसे पूरी तरह जानने का अवसर अभी मुझे नहीं मिला, क्योंकि वह हर समय गैरेज में ही बना रहता है, और इतवार के दिन भी इस नियम में अपवाद नहीं करता। पेतका का कहना है कि वह पुराना कम्युनिस्ट है और 1918 या 1919 से पार्टी का सदस्य है। क्रान्ति के समय उसने हथियारबन्द मोटर चलाई, 1941 में स्वयंसेवक के रूप में काम किया और लेनिनग्राद की मोर्चाबन्दी अपनी आँखों से देखी। वहाँ उसके परिवार के सभी

लोग मर-खप गये और तब से अब तक वह अकेले ही जीवन काटता रहा।

गैरेज हमारे घर से दूर है और जख़ार जख़ारिच को छः बजे सबेरे ही चल देना पड़ता है। हम रात में रेडियो स्विच-ऑफ नहीं करते ताकि उसकी नींद सुबह समय से खुल जाये। आदमी बड़े कायदे का है। उसका बिस्तर हमेशा ढंग से लगा रहता है। आवाज़ प्यारी और भारी है। स्वरों से विश्वास टपकता है। स्वर जैसे लुढ़कते चले जाते हैं। पर जब शोरबा तैयार करने की पारी उसकी आती है, तो बेचारगी की तस्वीर देखते ही बनती है।

सूप हम सभी को बनाना पड़ता है, क्योंकि हमारा एक कम्यून है। हम रूबल इकट्ठे कर लेते हैं, गोश्त और दूसरी चीज़ें खरीद लाते हैं और पारी-पारी से शोरबा बनाते हैं। पर पेतका ने स्थिति समझाते हुए कहा—"पारी के मामले में कोई कड़ाई नहीं बरती जाती और न ही इसके लिए कोई कानून है। जो भी पहले आता है और भूख से परेशान होने के कारण दूसरो की राह नहीं देख पाता है, वही शोरबा बनाना शुरू कर देता है।"

इस क्षेत्र में मैंने जो पहिली बार जग जीता तो पॉरिज में नमक के बदले सोडियम-थिओसल्फेट झोंक दिया।

जख़ार जख़ारिच खाना पकाने के मामले में बिल्कुल गोल है और पेतका उसे जी भर घिसता है—"नहीं, नहीं! अब प्याज़ काटो। चाकू कहाँ है, डैड! हे भगवान, कैसे बुद्धू हो तुम!"

"पेतका, देखो, इतना जौ काफ़ी होगा न?"

"तुम्हारा दिमाग़ खराब हो गया है, डैड! इतना तो फौजियों की एक पलटन के लिए चाहिए। तुम जाकर इस तरह डाल क्यों आये? जाओ, निकालो, निकालो जल्दी करो!"

"कोई बात नहीं, पेतका, जितना गाढ़ा हो उतना ही अच्छा।"

"ठीक है, तो गाढ़ा हो जायेगा, लेकिन मुलायम नहीं होगा। सारे जौ के भीगने के पहले ही चम्मच से निकाल लो। चम्मच कहाँ है? चलो, डैड, मन न गिराओ, यह रहे प्याज, इन्हें जल्दी-जल्दी काट डालो... सुअर की चर्बी जली जा रही है!"

इस तरह तमाम शोरगुल और हो हल्ले के बीच खाना तैयार होता है। शोरबा तैयार हो जाता है तो पैन का सामान गहरे कटोरे में उड़ेल दिया जाता है। भाप उठती रहती है और आधी सोंधी-सोंधी महक शोरबे की आती रहती है तो आधी पॉरिज की। शोरबा परोसा जाता है। होता है गाढ़ा, जायकेवाला और मज़ेदार। पहले मैं खाना खत्म करता हूँ, और मेरे बाद कुबिशकिन, पर पेतका और जख़ार जख़ारिच तला खुरचते और इधर-उधर की बातें करते हुए तब तक तह पर तह जमाते रहते हैं जब तक कि साँस लेना मुश्किल नहीं हो जाता...

"थोड़ी सी लॉरेल की पत्तियाँ और होतीं तो बुरा न होता।"

"नहीं, वैसे भी काफ़ी अच्छा है।"

"काफ़ी अच्छा है! आलू ज़रा ज़्यादा उबल गये।"

शोरबे के बाद चाय का क्रम आता है और चाय हम सब आधे लिटरवाले शीशों से पीते हैं, क्योंकि सारे प्यालों में तो रसायन भरे रखे रहते हैं। केंकों में भरी चाय गाढ़ी होती है, और साथ ही ताजगी भी देती है। आख़िरकार जब पेट फटने-फटने को हो जाता है तो हम उछलकर बिस्तरों पर जा लेटते हैं।

"तो, पेट कुछ ज़्यादा तन गया," अपनी पेटी खोलते हुए जख़ार जख़ारिच कहता है।

"डैड, कभी 'फ़ोर्ड' मोटरें चलाई है तुमने?" पेतका पूछता है।

"ज़रूर, पर मैंने पुरानी ढीली-ढाली 'फोर्ड' मोटरें चलाई हैं। तुमने उनकी तस्वीरें ज़रूर देखी होंगी।"

"देखी हैं। और, स्टूडीबेकर भी चलाई हैं?"

"हाँ, स्टूडी भी चलाई हैं—लादोगा झील के पार। तीन बदलीं मैंने।"

"और, जीपें?"

"एक जीप चलाई—जर्मनी में, एक जनरल की थी।"

"डैड, तुम शादी क्यों नहीं कर लेते? अगर कुबिशकिन की शादी हो सकती है तो तुम्हारी क्यों नहीं हो सकती?"

"नहीं, पेतका, अब शादी क्या करूँगा—बहुत कट गई, रही-सही भी कट जायेगी जैसे-तैसे।"

बपतिस्मा—

अपने नये, काले ओवरऑल और रबड़ के बूटों से खिलवाड़ करता मैं गया और चौथे विभाग के दफ़्तर में हाजिर हुआ। मेरी तरह के ही ओवरऑल पहिने लड़कियाँ लकड़ी के कुन्दों या पत्थरों पर बैठीं या धरती पर लेटकर सूरजमुखी के बिये कुटकुटाती नज़र आयीं। कुछ मर्द भी पास ही दीख पड़े। वे धुआँ उड़ाते और आपस में हँसते-हँसाते रहे। मैं उनमें से एक के पास गया और पूछने लगा—"यह अन्ना मोसकालेंको की टीम है?" आदमी के बाल गाजर की तरह लौ देते हुए लाल थे और बात करने में हकलाता था।

"मैं आप सब के साथ काम करूँगा!"

" ब... ब... बहुत अच्... अच्छा," आदमी बेमन से बोला और मेरी ओर से मुड़ते हुए सिगरेट रोल करने लगा।

मैंने 'बेलोमोर' पपिरोसी* का पैकेट उसकी ओर बढ़ाया तो पल भर को वह जैसे

* खास रूसी सिगरेट, जिसका एक हिस्सा खाली और एक हिस्सा तम्बाकू से भरा होता है।

भौचक्का रह गया, और पपिरोसा लेने में हिचकिचाने लगा।

"अगर तुम इ...इसी तरह अ... अपना 'बेलोमोर' बँ... बँ...बँ... बाँटते रहे तो चार दिन...क... काम न... नहीं चलेगा," वह नाराज होते हुए चीखा और पपिरोसा लेने लगा, "मे... मे... मेरी बुढ़िया त... तो... तो मुझे सिगरेट खरीदने ही नहीं देती, जा... जान को आ जाती है, चु... चु... चु... चुड़ैल कहीं की।"

इसके बाद उसने मेरी ओर पूरी तरह पीठ कर ली।

सच पूछिये तो मैं किसी भी चीज़ की आशा कर सकता था, पर ऐसे स्वागत की नहीं।

चार बजे का भोंपा बजा। पिछली शिफ्ट के कामगार टोलियों में आये और अपने-अपने घर चले गये, पर हम सब जहाँ के तहाँ जमे रहे। कोई टस से मस होता नज़र न आया। कुछ लोग बदन खुजलाते रहे तो कुछ खीसें बाते रहें। मैंने मन ही मन सोचा—"इस तरह काम करते हैं यह लोग? उसपर यह सब से अच्छी टीम कही जाती है! ताज्जुब ही है!"

आख़िरकार एक औरत आयी—नाटी-छोटी, चेहरा कुप्पे सा, नाक नन्हीं, पकौड़ी सी, ऊपर को मुड़ी हुई। औरत बहुत ही साधारण लगी, इसीलिए जब मुझे मालूम हुआ कि यह टीम की लीडर है तो मेरा जी चाहा कि मैं अपनी आँखें मलने लगूँ—"ऐसी बड़ी योजना के कंकरीट बिछानेवालों की टीम की लीडर, और यह?..."

वैसे तो वह नज़र आती नहीं, और ज़रूरी था कि सब को नज़र आये, इसलिए वह एक पत्थर पर चढ़ गयी और फोरमैन पर फटकार बरसाने लगी—"क्या फिक्र मुझे तुम्हारे इन बढ़ईयों की! बहुत हुआ, अब जितनी जल्दी इनसे जान छूटे उतना ही अच्छा।" इसके बाद उसने काम बाँटना शुरू किया—"हर आदमी कल की जगह ही आज भी... माश्का बड़े ब्लॉक में, दाश्का बाँध पर।"

"हे भगवान, फिर वही मुसीबत की जड़ बाँध... मैं तो ऊब गयी आपके इस बाँध से।"

"उठ, खड़ी हो, दाश्का! बहुत लोट लगा ली काहिलों की तरह, भैंस कहीं की।"

लोग न चाहते हुए भी उठे, और अपने-अपने फावड़े उठाकर अलग-अलग दिशाओं में चल दिये। सहसा ही मैंने बड़ा अकेला-अकेला सा अनुभव किया, और मेरा मन निराशा से बैठने लगा।

"मैं नया हूँ," आख़िरकार मैं बेसमझे बोल उठा। मुझे लगा कि मेरी ओर कोई ध्यान ही नहीं दे रहा।

"मैं जानती हूँ। दाश्का, येफिमिच से कहो कि..."

इन सब का व्यवहार कैसा रूखा रहा! जैसे किसी को कोई परवाह ही न हो! उन्होंने टीम की लीडर की बात भी यों ही सुनी और केवल हाथ हिलाये, जैसे कि कह रहे हों—"ठीक है, ठीक है, बड़बड़ाना बन्द करो।" और, उस आन्ना मोसकालेंको को जैसे

कुछ भी नहीं खटका, कुछ भी बुरा नहीं लगा। उसने चीख-चीख और गालियाँ दे-देकर टीम के सारे लोगों को काम पर हाँका और फिर खुद पत्थर से नीचे उतर आयी।

"क्या नाम है? अनतोली? निकोलाई, इसे पहले क्रेन पर ले जाओ। यह ट्रकों का काम देखेगा।"

"आओ, चलो!" बिना मेरी ओर देखे निकोलाई बुदबुदाया, और धन्नियों और पत्थरों के ऊपर से गुजरता आगे बढ़ चला। उसने एक बार भी मुड़कर यह नहीं देखा कि मैं भी पीछे-पीछे आ रहा हूँ या नहीं?

हमने घुटनों-घुटनों तक पानी में हिलकर एक गढ़ैया पार की और फिर एक सीढ़ी पर चढ़ना शुरू किया। इसके बाद ऊपर ही ऊपर चढ़ते गये। भूरी दीवारों, लोहे की धन्नियों और लकड़ी के मचानों के पास से गुजरे, लोहे की धन्नियों और लकड़ी के मचानों के पास से गुजरे, दोहरे हुए, सरके, मगर जैसे भी हुआ, ऊपर ही ऊपर बढ़ते गये। मैं नीचे देखने से बचने लगा। ज़मीन बहुत पीछे छूट गयी, बहुत गढ़े में रह गयी। हम लोहे और लकड़ी के अम्बार में खो गये और पीछे लौटने का तो जैसे सवाल ही बाकी न रह गया।

और, अचानक ही... हमें आसमान नज़र आया। हम आख़िरी संध से बाहर निकले और पुल के ढाँचे के सब से ऊपर के हिस्से में आ गये। हिस्सा सड़क की तरह चौड़ा नज़र आया। कितनी ऊँचाई पर आ गये थे हम! हमारे ठीक सामने एक लम्बा-चौड़ा क्रेन आधार पर जमा खड़ा था। क्रेन के धुर ऊपर एक लाल झण्डा फहरा रहा था और यह झण्डा जैसे बादलों से बातें कर रहा था।

ढाँचा पुल बिल्कुल वीरान था। कहीं कुछ भी न था। था कंकरीट के लिए केवल एक टब—यह टब भी क्या था, पटरियों पर सधा एक बक्शा सा क्रेन की कँटिया में फँसा हुआ था।

"ट्...ट्... टब देखा?" निकोलाई ने पूछा।

"हाँ।"

"देखो, जब ट्रकें आयें और कंकरीट उस टब में उड़ेल दें तो तुम अपना फावड़ा उठाना, हर ट्रक में लगी-लगाई कंकरीट काँछकर टब में डालना और क्रेन-ऑपरेटर की ओर देखकर ज़ोर से चिल्लाना—'उठाओ...ओ...हो!' समझे?"

"हाँ, समझ गया।"

"बस! इसके सिवाय ट्रकों का नम्बर नोट कर लेना और खेपों की गिनती लिख लेना। यह टीम-लीडर को देना होगा। यह लो, सम्हालो फावड़ा, मैं चला।"

इतना समझाने के बाद हम अभी-अभी जिस संध से बाहर आये थे, वह उसी में पैठ गया। मैं फावड़ा हाथ में साधकर खड़ा हो रहा और असमंजस से इधर उधर देखने लगा। फिर मैं टब के पास गया और मैंने उसमें हाथ लगाया। सोचा—ऐसी तैसी में जाये! मैंने सपने में भी सोचा था यह सब? यानी मेरा काम हो गया कंकरीट काँछना

और चिल्लाना—"उठाओ... ओ...हो!" और वह राक्षस सा क्रेन तो देखो। मेरे ऊपर इस तरह तना खड़ा है, जैसे कोई काला नाग चींटी के ऊपर! उसपर, अगर मुझसे कोई गलती हो गयी तो क्या होगा? और अगर यह काम मुझसे बिल्कुल हुआ ही नहीं तो क्या होगा?... मेरी रीढ़ काँप गयी। एक जगह कुछ लट्ठे टेढ़े रखे दीखे। ख़्याल हुआ—इनका भला क्या होगा? फिर बात समझ में आ गयी—ओहो, इनके सहारे लॉरियाँ ऊपर जायेंगी। फिर मन ने कहा—"मगर इस भकुये ने मुझे यह बात बतलाई क्यों नहीं? इसने शुरू-शुरू से ही मुझे नापसन्द क्यों किया?"

सवाल सामने आया—"और, यह क्रेन टब कहाँ ले जायेगा?" इतने में मैं चौका—"ओह, वहाँ उस पिंजड़े सी जगह में लड़कियाँ हैं... बिजली के केबुलों से उलझी हुई है।" मन जैसे उछलने लगा।—"बाज की सी भौंहोंवाली तोन्या है क्या वह?... वहीं तो है! तो, वह भी हमारी टीम में ही काम करती है! और, लाल बालोंवाला निकोलाई भी हमारी टीम में है—हाथ हिलाते हुए सड़क पर जैसे रेंग रहा है... अपनी जगह से मैं सभी को साफ़-साफ़ देखता रहा।

निकोलाई ने जो फावड़ा मुझे दिया था, वह काफ़ी भारी था, उसका हत्था गाँठ-गँठीला था, और उसके फर में सूखा सीमेण्ट चिपका हुआ था। अच्छी बात यह थी कि स्कूल में मैंने फावड़ा चलाना सीख लिया था। हर शरद में एक बार हम पौधा-रोपन-माह मनाते थे, और इसमें बड़े-छोटे सभी समान रूप से हिस्सा लेते थे। वीक्तोर हमेशा इससे जान चुराता था और इस मौके पर हमेशा उसकी तबीयत को कुछ न कुछ हो जाता था। पर, मुझे गढ़े खोदना पसन्द आता था और मैं पसीने से नहा उठने की हालत तक फावड़ा चलाता रहता था। उस समय तो मैंने कल्पना भी न की थी कि कभी इर्कूत्स्क पनबिजलीघर में फावड़े से कंकरीट काँछने का काम भी करना पड़ेगा। पर, बचपन का अभ्यास यहाँ दाहिने आ गया।

पुलों से सवारियों के गुजरने पर जिस तरह की खड़खड़ाहट होती है, ठीक वैसी ही खड़-खड़ सहसा ही मेरे कानों में पड़ी, और कंकरीट से भरी ओहारवाली ट्रक मैंने अपनी ओर आती देखी। अपने आप से कहा—"ठीक, तो, तोल्या—बहादुर हो जाओ तैयार!"

मैं अपने को साध भी पाऊँगा?

काम शुरू हुआ और तीन मिनट भी न बीते कि मैं पसीने से तरबतर हो गया। काम जितना आसान लगा उतना ही दुस्तर। भूरी कंकरीट की बौछार करती एक ट्रक हवा चीरती आयी, झटके से लट्ठों पर पीछे ही पीछे हटी और कंकरीट टब में गिराने लगी। मैं झपटकर ट्रक के पीछे, बीच दलदल में जा पहुँचा और कोनों में लगी रह गयी, घुली-मिली चिकनी मिट्टी की तरह भारी और लिसलिसी कंकरीट काँछ-काँछकर टब में गिराने लगा कि उसके साथ-साथ खुद भी उसमें सरक गया। वहाँ कुछ उल्टा-सीधा

करने के बाद कूदकर बाहर आया तो मन-मन के भारी बूट सम्हालना मेरे लिए दुशवार हो गया। खैर, मैंने आवाज़ लगाई—"उठाओ... ओ...हो!" क्रेन ने खड़खड़ाकर झटका खाया। टब सीधा हुआ और कंकरीट की बौछार करता और कंकड़ बरसाता आसमान में उड़ने को पर तोलने लगा। मैं एक तरफ़ को दौड़ता हुआ बाड़ की ओर बढ़ा। नीचे खड़े लाल बालोंवाले निकोलाई ने टब का संचालन किया और उसे खोला। लेकिन उसकी तरफ़ मैंने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। मैंने जल्दी-जल्दी ट्रक का नम्बर लिखकर निशाना लगाया और टब के नीचे से लट्टे खींच लिये। टब ज़रा देर बाद कंकरीट खाली कर वापस उड़ आया, धड़ाके के साथ धरती पर उतरा और घिसटता चला गया। मैं झपटा और अपनी पूरी ताकत लगाकर उसे ठीक जगह पहुँचाने लगा। ऑपरेटर ने सिगनल दिया—"तू-तू-तू!" यानी "ज़रा होशियारी से, हाथ-पैर बचाकर!" मैं उछलकर एक किनारे खड़ा हो गया और टब अपनी पटरियों पर कायदे से आ बैठा।

"दूसरी ट्रक!"

ट्रक आगे बढ़ती आयी और मैंने लट्टे खींचकर फिर से यथास्थान रख दिये।

"पीछे करो! ओहार उलटो!"

इस तरह काम करने से पन्द्रह मिनट के अन्दर मेरे हाथों में फफोले पड़ गये और फावड़े के हत्थे की गाँठों के कारण उनसे खून बह निकला। तन झुलसाती धूप में मैं पसीने से नहा उठा, प्यास से गला सूख चला और बुरी तरह हाँफने लगा। और, ट्रकें कि एक के बाद एक आती ही गयीं। मैं हर बार दौड़ा, चिल्लाया—"उठाओ... ओ... हो!" और, जैसे-तैसे लट्टे खींचता रहा।

यह कंकरीट नाम की चीज़ भी कैसी वजनी होती है—एक लिसलिसा, भूरा तूफ़ान, जिस में कंकड़ मिले हों! भर फावड़ा कंकरीट मेरे उठाये तो उठी नहीं! काश कि पल भर को साँस मिल जाती! लेकिन नहीं, इसकी गुंजाइश कहाँ! ट्रकों की पूरी लाइन लगी रही और हर ट्रक अपनी पारी की राह देखती रही।

होते-होते फावड़ा उठाने की सकत मुझमें न रह गयी और मुझे लगा कि शिफ्ट के आख़िर तक शायद मुझसे न खिंचे। ख़्याल आया—"अगर टब से चोट लग जाये तो क्या होगा?" कलेजा ठण्डा पड़ने लगा। मैंने मन सम्हाला—"नहीं, मैं काम करूँगा, सहूँगा... अपने को साधूँगा!"

ड्राइवर तरह-तरह के आये। कुछ तो ऐसे मजे, 'मस्त,' कायदे के लोग कि ओहार ऐसे झटके से उलटते कि सारी कंकरीट एक बार में ही टब में गिर जाती, और मेरे लिए बहुत थोड़ा काम बचता। पर, कुछ गाड़ी कायदे से टिकाने में बड़ा वक्त लेते और ऐसे सम्हाल सम्हाल कर उड़ेलते कि कंकरीट जैसे बेमन से टब में गिरती और लगभग आधी ट्रक में ही लगी रह जाती।

मैं फावड़ा चलाता रहा कि होते-हाते हाथ कटकर धड़ से अलग होते लगे। जैसे-तैसे कुछ आम तो हुआ ही!

"लेकिन, नहीं, मुझे अपने को साधना चाहिए—काम सहारना चाहिए और ज़रूर सहारना चाहिए।"

मैंने हाथ का खून ओवरऑल में पोंछा और दर्द का जैसे अनुभव ही नहीं हुआ। सारा पसीना बह-बहकर आँखों में आने और लगने लगा। पर मैं पोंछ नहीं पाया। पोंछता भी किससे? मेरी तो हर चीज़ कंकरीट की गीली मिट्टी और पसीने से तर थी। सारे बाल उलझकर आँखों पर आ गये थे। फिर भी मैंने कहा—"नहीं, मुझे अपने को साधना। मशक्कत सहारनी है।"

इस तरह पहिला घण्टा बीता, फिर दूसरा, और फिर तीसरा। होते-होते ख़तरे का भूत मेरे सिर से उतर गया और मैं टब के मामले में आज़ादी बरतने लगा। ऐसे में ऑपरेटर ने जब-तब ही पूरी ताकत से सिगनल दिये और क्रेन का ब्रेक खींचा। जी मचला—"खाने का समय कभी नहीं आयेगा क्या? इन ट्रकों से साँस भी कभी मिलेगी या नहीं?" पर, ट्रकें कि उन्होंने दम लेने का नाम ही न लिया। आती ही गयीं, आती ही गयीं कि तार कि काहे को टूटे।

पानी बरसा—

ठीक इसी समय अंधड़ आया और पानी के लक्षण नज़र आने लगे। सिर के ऊपर राख के रंग के बादल उमड़े और सारे आसमान को घेरने के बाद, नीचे उतरकर धरती को धमकाने लगे। सूरज की आग ठण्डी पड़ी, रोशनी मद्धिम हुई और फिर तो उसने जैसे कहीं मुँह छिपा लिया। एकबएक हर ओर रात घिर आयी। क्रेन की चोटी के ऊपर बिजली चमकी और पानी बरसने लगा। बूँदें मेरे सिर पर टपकीं और उछल कर दूर जा गिरीं। सारे बदन में ठण्डक की लहर सी दौड़ गयी। पैरों के नीचे धरती और सिर के ऊपर आसमान—लगा, जैसे कि मैं किसी खुले रंगमंच पर खड़ा हूँ। मुड़कर देखा तो नज़र आया कि पानी ने हर चीज़ पर अपनी भूरी, निलछरी चादर डाल दी है, हज़ारों बूँदें पुल पर गिरकर इधर—उधर उछल रही हैं, और बिजली रह रहकर कौंध रही है। सहसा ही ऐसा मालूम हुआ जैसे कि कहीं से गन्धक की महक आ रही है। ट्रकों ने रोशनी जला ली, पर उनका आना क्षण भर को भी न थमा।

पानी मूसलाधार बरसने लगा। मैं बुरी तरह तरबतर हो गया और जैसे मेरे दम में दम आ गया। सहसा ही मेरा जी ताजगी से हरा हो उठा। मुझे विश्वास हो गया कि यह मशक्कत मैं सहार ले जाऊँगा, और ज़रूर सहार ले जाऊँगा।

ड्राइवर भी जोश में लगे। मैंने ऊपर निगाह की तो क्रेन ऑपरेटर को मुस्कराते और सिर हिलाते देखा, जैसे कि कह रहा हो—"ठीक किये चलो ऐसे ही काम। यह है हिम्मत!"

तो, जिस दैत्याकार क्रेन की मैंने तस्वीरें भर देखी थीं, वह इस समय मेरे सामने

रहा आया और हम दोनों मिलजुलकर काम करते रहे। वैसे यह आसानी से विश्वास करने की बात नहीं कि क्रेन मेरे हाथ के इशारे पर नाचता और "उठाओ... ओ... हो!" चिल्लाते ही टब चिड़िया के पर की तरह ऊपर उठा लेता। यही नहीं, मैं हुक्म देता–"नीचे करो," तो सावधानी से, हल्के-हल्के झटकते हुए टब नीचे ले आता। मशीन और मेरे संकेत पर काम करे! मेरे मन की धड़क खुल गयी–भला इससे डरने की क्या बात!

इससे मुझे लम्बी दौड़ों की याद हो आयी। ऐसी दौड़ों में क्या होता है कि आप दौड़ते रहते हैं, दौड़ते रहते हैं कि अधभर में सकत ज़वाब देने लगती है और आपको लगता है कि अब गिरे कि तब गिरे। लेकिन नहीं, आप अपने को ज़रा सा साध ले जाते हैं। नतीजा यह होता है कि हवा का एक झोंका आपका दम ले जाता है तो सहसा ही हवा का एक दूसरा झोंका आता है, और आपका दम आपको वापस कर जाता है। तो, यह पानी मेरे लिए साबित हुआ हवा का दूसरा झोंका।

मुझे लगा कि मैं कितना मजबूत हूँ। जीवन में पहली बार मैंने समझा कि असलियत में काम है किस चिड़िया का नाम। हवा कानों में सीटियाँ बजा रही है, आँखों में पसीना बहा चला आ रहा है, और आप हैं कि जुटे हुए हैं।

सो, ड्राइवरों ने चिल्लाकर मुझे शाबाशी दी, पर पानी के शोर के कारण उनकी आवाज़ मैंने सुनी नहीं। नीचे, सिर के ऊपर हाथ बाँधकर निकोलाई कुछ इशारा करता दिखा। हो न हो, वह भी मेरे काम की तारीफ ही कर रहा होगा।

यानी, मेरी आँखों के आगे कंकरीट बंधियों के सांचे में ढलती रही। इस करामात की भी आज के पहले मैंने तस्वीरें ही देखी थीं। उस पर यह कि बंधियों की सारी कंकरीट मेरे हाथों से गुजर रही थी। यानी यह कि सारी टीम का काम मुझ पर निर्भर कर रहा था और इर्कूत्स्क पनबिजलीघर का काम टीम पर! क्या कहने हैं!...

वर्षा ऐसी कि आदमी को रास्ता नज़र न आये, अन्धेरा ऐसा कि प्रकाश की किरणों से जड़ा हुआ, ट्रकों की फ्लडलाइटें बरसात की धुंध भेदती हुई, और एक तरह की गरज और घनघनाहट में दूसरी सारी आवाज़ें डूबती हुई। ऐसे में तो लोग उमंग से भर जाते, एक दूसरे से छेड़छाड़ करते, पागलों की तरह काम में जुटते और ऐसा क्या होता जो कर न डालते। पहाड़ उठाने की बात होती तो पहाड़ भी यहाँ से उठाकर वहाँ रख देते!

लेकिन, यहाँ के लोग थे कि अपना काम किये जा रहे थे। केवल एक मैं था, जिस पर शराब का सा नशा छा रहा था। बाकी लोगों के लिए आँधी, पानी सब बराबर था। सिर्फ़ काम था उनके सामने। निकोलाई, टब खोलने के लिए रस्सा खींचता हुआ, नीचे की सलाखों के बीच रेंग रहा था। लड़कियाँ फ्लडलाइटों के बीच झुक और तन रही थीं। जितनी भी कंकरीट मैं उनतक पहुँचाता, वे सारी की सारी दूसरे ही क्षण बिछा डालतीं, और मैं उनकी ज़रूरत का मुँह न भर पाता।

उन क्षणों में इन ड्राइवरों, इन क्रेन-आपरेटरों और इन कंकरीट बिछानेवालों, यानी

इन तमाम लोगों को मैंने एक बिल्कुल ही नयी रोशनी में देखा। वे मुझे पहले की तरह ओछे और बेरुखे न लगे, बल्कि नज़र आये खूबसूरत और बिल्कुल बदले हुए।

वैसे, हमारा काम इतने ठाठ से चला कि मेरे कण्ठ में गीत के स्वर में मचलने लगे, और पानी हल्का पड़ा तो मेरा जी जैसे दुख उठा। मन बोला—"जब भीग ही गये तो क्यों न कायदे से नहा लो!" पर, यह वातावरण आखिर कितनी देर तक चलता? शायद एक घण्टा, शायद दो घण्टे, शायद सौ घण्टे तक, शायद सृष्टि के अन्त तक?

सहसा ही ट्रकों का सिलसिला खत्म हो गया। इस पर मैं तो चौंक तक गया। कहना न होगा कि रहे-रहे ऐसा सन्नाटा हो गया कि पानी की अन्तिम बूँदें पुल पर गिरीं तो उनकी पटापट मुझे साफ सुनाई दी। मैंने आँखें ऊपर उठायीं तो क्रेन-आपरेटर अपने केबिन से गायब मिला। दिखलाई पड़े लीवर और केवल लीवर। आखिर उसे हुआ क्या?

आन्ना मोसकालेंको ऊपर चढ़कर पुल पर आयी। वह भी मेरे समान ही गीली थी। उसका गीला स्कर्ट उसके पतले-पतले पैरों से लगकर फड़फड़ा रहा था।

"बस करो, अनतोली," काम-काज वाले स्वरों में बोली, "तुम्हारा क़ागज़ कहाँ है? कितनी खेपें हुईं कुल?"

हमने निशानों की गिनती की। अट्ठानवे निकले।

"सौ में दो ही कम हैं," मोसकालेंको ने दर्द से कहा,

"दूसरे क्रेन पर साठ खेपें हुईं। खैर, जाओ और अपना फावड़ा जमा कर दो।"

सहसा ही उसके माथे पर बल पड़े, वह मेरी ओर मुड़ी और जैसे गुस्से से मेरी आँखों में आँखें डालने लगी—"काम मुश्किल लगा?"

"ऐसा कोई मुश्किल नहीं," मैं अस्पष्ट स्वरों में बोला, "पहले ज़रूर ज़रा खला, पर फिर सम्भाल में आ गया। अब तो ऐसा है कि आप कहें तो मैं दूसरी शिफ्ट भी अभी-अभी कर दूँ। मुझे तो ताज्जुब हुआ कि ट्रकों का आना रुक क्यों गया?"

"हूँ... खैर, कोई बात नहीं, आदी हो जाओगे," वह अज़ीब उदासी से बोली, 'जाओ, आराम करो।"

इसके बाद वह लकड़ी की सीढ़िया खटखटाती नीचे चली गयी। मैंने भी उसके पीछे कदम बढ़ाने की कोशिश की, पर फिर... रह गया। मुझे लगा कि मेरे पैर काँप रहे हैं।

लकड़ी की सीढ़ी—

मुझे नहीं याद कि ढाँचा-पुल से नीचे मैं कैसे उतरा और कैसे मैंने अपना फावड़ा जमा किया। साथ ही यह भी दिमाग़ से उतर गया कि उस समय मैंने अपने दस्ताने पेटी में किस तरह खोंसे। दस्ताने खून से सन गये थे।

लोग गढ़ैया से निकलकर सड़क पर जल्दी-जल्दी बढ़ते दिखे। हमारी टीम के लोग भी कितने ही दूसरे लोगों की तरह आँखों से ओझल होने लगे। कुछ अज़ीब-अज़ीब से आदमी तख़्ते लिये इधर-उधर आते-जाते रहे। मैंने सोचा कि निकोलाई और बाज की सी भौंहोंवाली तोन्या भी चली गयी होगी। मैं एक-अकेला गढ़ैया की गहराई में पहुँचा और धन्नियों पर पैर रखता हुआ बूफ़ेत* की ओर बढ़ा। भूख कोई खास महसूस न हुई, पर कुछ न कुछ खाना ज़रूरी मालूम हुआ।

ट्रकें बगल से गुजरीं तो लगा कि मुझे कुचल देंगी। मैं छिटककर एक किनारे हो गया। उनकी हेडलाइटों से मेरी आँखें चौंधियाने लगीं। आख़िरकार मैंने एक तख़्ता देखा और तख़्ते पर टीमों का काम लिखा पाया। इसके पीछे एक छोटी से झोपड़ी मिली। यह झोपड़ी थी बूफ़ेत और यह बूफ़ेत दिन-रात खुला रहता था।

अगर मैं कलाकार होता तो आपको चित्र खींचकर समझाता कि कैसे ड्राइवर अन्दर कुछ खाते रहे, कैसे उनकी ओहारवाली, भूत सी लम्बी-चौड़ी 'माज' ट्रकें, हाथियों के दल की तरह झोपड़ी घेरे, जड़ बनी, बाहर खड़ी रहीं, और कैसे उनकी बुझी हुई आँखें एकदक बूफ़ेत पर टिकी रहीं। वैसे अगर झोपड़ी किसी ट्रक के एक भी पहिये के नीचे आ जाती तो बराबर हो जाती।

इस बीच बूफ़ेत में इन ट्रकों के जी-तोड़ मालिक ज़ोर-ज़ोर से बातें करते, मेजों पर अपने मग पटकते, और सस्ती सिगरेटों के धुएँ के बादलों के बीच सॉसेज छीलते रहें मैंने देखा कि 'माज' ट्रक-ड्राइवरों का व्यवहार दूसरों से ज़रा अलग होता है। वे अपने को काफ़ी महत्वपूर्ण समझते, आज़ादी से बातें करते, ज़ोर-ज़ोर से मजाक करते और धुआँधार ढंग से खाते हैं। संक्षेप में यह कि दूसरे कामगारो के बीव वे अपना स्थान यही जानते-मानते हैं, जो पैदली फौजियों के बीच टैंक-चालक।

और, इस पर भी, अपने सीमेण्ट से भूरे ओवरआल, जूतों और दस्तानों पर मुझे गौरव का अनुभव हुआ। दस्ताने तो मैंने झटके से पेटी से बाहर खींचे और खिड़की के दासे पर लोका दिये। मुझे यह अनुभव कर बड़ी ही प्रसन्नता हुई कि मेरा रखरखाव पहले से भद्दा हो तो हो, लेकिन अब मैं सच्चे अर्थों में मज़दूर हो गया हूँ।

बूफ़ेत की मेजें और बेंचें टेढ़े-सीधे तख़्तों की बनी थी। पीपे जहाँ-तहाँ खड़े थे। फर्श पर जहाँ-तहाँ क़ागज़ के टुकड़े और सिगरेट के सिरे पड़े थे और कमरे में सिगरेटों का निलछरा-भूरा धुआँ भरा हुआ था। काउण्टर पर कड़े, धूल से भरे चाकलेटों और 'वसन्त' नामक मिठाइयों की बगल में रखी थीं तमाम सादी चीज़ें, जैसे सैंडविच, रोल, दूध, हेरिंग मछली, दही और कोफ्ते, आदि। इन चीज़ों की बड़ी माँग थी। यह सब देखकर मेरी तो आँखें चमक उठीं। यहाँ बीयर या शराब न मिलती थी, पर 'क्वास' के पीपे का नल बराबर चालू था और मगों में भर जाने पर क्वास बिल्कुल बीयर सा लगता था—रंग वैसा ही भूरा और झाग भी बिल्कुल उसी तरह का।

---

* एक तरह की कैण्टीन।

मैंने बिस्कुट के साथ थोड़ा सा मखनिया दूध लिया। इसके बाद एक टुकड़ा सॉसेज खाई और इस पर एक मग क्वास जमाया। अब झोपड़ी से निकलकर बाहर अँधेरे में आया तो रबड़ की तरह गन्धाती एक दीवार से टकरा गया। एक क्षण को लगा कि जिसे मैं दरवाज़ा समझरहा हूँ वह कोई और चीज़ है। पर, दूसरे ही क्षण स्थिति साफ हुई कि यह जो मेरी राह में आ अड़ा है, यह तो पहिया है और आकार में मेरे बराबर है। बात यह है कि इस बीच एक दूसरी 'माज' ट्रक आयी थी और दरवाज़े के ठीक सामने खड़ी कर दी गयी थी। खैर, तो मैं जैसे-तैसे दबता-सिकुड़ता, किसी तरह अपनी जान बचाता उधर से निकला। बूफेत की झोपड़ी ट्रकों के इन भूतों के बीच उसी तरह खोई रही, जिस तरह लोकोमोटिवों के बीच खिलौनेवाला मकान।

मैंने बड़े सुख और सन्तोष का अनुभव किया कि मैं यहाँ कोई सैलानी नहीं, मामूली ढंग से चीज़ों को देखने-सुनने वाला नहीं, बल्कि असलियत में मज़दूर और कामगार हूँ।

मेरे हाथ दर्द कर रहे और जैसे झूल रहे थे। जूते ऐसे मन-मन के हो गये थे कि घसीटे न घसीटे जा रहे थे। मैं सचमुच का कामगार हो गया था। यानी, आप चाहें तो कह सकते हैं कि यहाँ का कामगार हो गया था। यानी, आप चाहें तो कह सकते हैं कि यहाँ आकर मैं एक खास, बड़ी फ़ौज में शामिल हो गया था। और, कहना न होगा कि यही वह फ़ौज है जिसने क्रान्ति की, ग़ुलामी का मुँह काला किया और समाजवाद का निर्माण किया।

लेकिन, कोई फायदा नहीं, यह बात समझाई नहीं जा सकती। उसे जानने-समझने के लिए तो ज़रूरी है कि आदमी 98 ट्रकों का बोझ उतारे और इस तरह काम करे कि थकान से पैर काटने लगे। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि पहले दिन के काम के बाद मेरे बदन का जोड़-जोड़ दर्द करता रहा, पर मेरा मन खुशी से नाचता रहा, और उमंगें मन में आश्चर्यजनक ढंग से लहरें लेती रहीं।

मैंने रेल की पटरी पार की और ठोकर खा गया। कुछ क्षणों में गरजती हुई मास्को-पेकिंग एक्सप्रेस उधर से गुजरी तो उसने भाप और काजल की एक लहर मुझ पर दे मारी। टिमटिमाती रोशनियोंवाली खिड़कियाँ बिजली की तरह कौंधती हुई मेरी बगल से निकल गयीं, और कोई दो सेकेण्डों में गाड़ी की पीछेवाली लाइटें अन्धकार में समाने लगीं। लगा कि गाड़ी आगे ही आगे बढ़ती जायेगी। बैकाल झील आयेगी, फिर चीता और फिर पेकिंग। मगर हम जहाँ के तहाँ रहेंगे और अपना निर्माण का काम करेंगें

इर्कूत्स्क पनबिजलीघर के निर्माण-स्थल पर काम करनेवालों में शायद ही कोई ऐसा हो, जिसे गढ़ैया से बाहर लानेवाली लकड़ी की स्मरणीय सीढ़ियों का ध्यान न रहे। इन्हीं सीढ़ियाँ पर इस समय जैसे-तैसे मैंने अपने को घसीटना शुरू किया। वैसे लेओनीद के साथ जल्दी-जल्दी जब मकान-मैनेजर के यहाँ गया था तो यही सीढ़ियों मैंने एक

बार में दो-दो पार की थीं, पर इस समय ऐसा सम्भव न था। इस समय वह काफ़ी दूर-दूर लग रही थीं और मुझे हर सीढ़ी पर पैर रखने के लिए जैसे थोड़ा उचकना पड़ रहा था। सीढ़ियाँ तो जैसे खत्म होने को ही न आ रही थीं। अतएव, मैं बीच-बीच में ठहरता, दम लेता और नीचे की रोशनियों पर एक नज़र डालता।

ऊपर, और ऊपर, और ऊपर!

बतलाइए, आप हँसेंगे न मेरी बेवक़ूफ़ी पर, सारी दुनिया सो रही थी, रात के एक बज चुके थे, और मैं कि अभी अपने घर की ही मंजिल तय न कर पाया था।

पहाड़ी के ऊपर के खाली मैदान में लोगों की एक भीड़ सी काला घेरा बनाये चली जा रही थी। ऐसा लग रहा था, जैसे कि कोई कहीं रो रहा हो, या प्रार्थना कर रहा हो और दूसरे उसके स्वर बार-बार दोहरा रहे हों—स्वर भी थे बड़े नीरस, अज़ीब-अज़ीब से, कुछ 'आ-आ-आ...' जैसे। यानी यह थे बुरयात कामगार। इस समय वह अपना 'योखार' नाम का अनन्त नाच नाच रहे थे। और लड़कियाँ-लड़के एक दूसरे का हाथ पकड़कर घेरा बनाये, एक स्वर में, कोई गीत गा रहे थे। गाना मेरी समझ में नहीं आया।

लेओनीद ने मुझसे पहले ही इस 'योखार' नाच की चर्चा की थी और कहा था कि बुरयात हफ्ते में यहाँ तीन बार जमा होते हैं और सुबह होने तक नाचते रहते हैं। कुछ तो अल्युमीनियम के कारखाने के अपने निर्माण-स्थल से इतनी दूर चलकर यहाँ आते हैं, क्योंकि अपना 'योखार' उन्हें बहुत प्रिय है, और इससे उनके मनों में घरों की याद हरी हो उठती है।

पता नहीं क्यों, हर चीज़ में बड़ी उदासी और दर्द सा भरा हुआ था। गढ़ैया के नीचे प्रकाशों का समुद्र सा ठाठें मार रहा था और पहाड़ियों और दलदलों के बीच चीटियों के जमघट सी लगती मशीनें घड़घड़ा रही थीं। उधर से आनेवाली हवा से पानी के विस्तारों का संकेत मिल रहा था और सीमेंट और धातु की महक सी आ रही थी। बस्ती के मकानों की खिड़कियों में एक-एक कर अँधेरा होता जा रहा था। पर इस पर भी यह बुरयात थे कि अपना 'योखार' नाच नाचे ही चले जा रहे थे।

मैं खड़ा हो गया और यह तमाशा देखने लगा।

ऐसे में सहसा ही मेरे होश उड़ गये। मैंने अनुभव किया कि मेरे दस्ताने गायब हैं, और मैं उन्हें बूफेत के दासे पर छोड़ आया हूँ।

वापस लौटा। पूरा रास्ता फिर तय किया, फिर उचक-उचक कर सीढ़ियाँ पार कीं, और घण्टों बाद जाकर कहीं घर पहुँचा। कहना न होगा कि यह मेरे जीवन की एक सबसे विचित्र रात रही।

थोड़े समय बाद—वीक्तोर का पत्र—

"कहो, प्यारे तोल्या!

तुम्हारा पत्र मिला। पढ़ा। लगा कि तुम बेवक़ूफ़ हो।

सोचकर तकलीफ होती है कि तुमने मेरी बात नहीं सुनी। खैर, तो रगड़ते रहो, बड़े राजा बेटे हो!

नहीं, साइबेरिया आने का मेरा कोई इरादा नहीं—उस पर रेलगाड़ी की तीसरी बर्थ पर लेटकर, तुम्हारे उन लफँगे, लँगोटिया यारों जैसे लोगों का साथ करने का तो और भी नहीं! कारण मैं तुम्हें बतला रहा हूँ।

तो भाई मेरे, मैं पोलीटेक्नीकल इंस्टीट्यूट में दाखिले के लिए अर्जी देने चला। वहाँ पहुँचा और भीड़ देखी तो, हे भगवान! मेरे तो पैर थरथराने लगे। लोग नज़र आये जाने क्या-क्या घोटे-घोटाये, काम का अनुभव ऊपर से, और इस पर भी कोई उम्मीद नहीं। मैंने सोचा अपने किये यहाँ कुछ भी होने से रहा! किस्मत कहीं और आजमाई जाये! तो, फिर डाक्टर बनने का इरादा किया—उस इंस्टीट्यूट में भी हालत पतली! अर्थशास्त्र और वित्त के इंस्टीट्यूटों में भी कोई गुंजाइश नहीं! फिर पीट-इंजीनियरिंग का इरादा किया—और फिर किस-किस चीज़ का इरादा नहीं किया, पर साँस कहीं नहीं! सौ की एक बात यह कि मैंने कोई दर्जन भर इंस्टीट्यूटों के चक्कर काटे, पर सींग कहीं न समाया।

दूसरी ओर परिवार की संसद बैठी तो 'बड़े मियाँ' का प्रस्ताव एक मत से स्वीकार कर लिया गया। मामला वाणिज्य विद्यालय पर आकर टिका। लगता है कि आजकल वाणिज्य विद्यालय तक का सिक्का चलता है।

होड़ाहोड़ी तो वहाँ भी चलती है, पर फिक्र की ऐसी कोई बात नहीं—देखा जायेगा। 'बड़े मियाँ' ने इधर-उधर सूँघा और एक वसीला ढूँढ ही तो निकाला। सच मानो, यार, 'बड़े मियाँ' आदमी क्या हैं, सोना हैं! सुना है कि वाणिज्य विद्यालय के सहायक संचालक उनके दोस्त हैं—दूर का कोई रिश्ता भी है—चचेरे-भाई के चचेरे-भाई के चचेरे-भाई के चचेरे-भाई हैं। लेकिन इसके साथ ही कुछ मुट्ठी भी गरम करनी पड़ी। म्याँ, दोस्ती एक चीज़ और काम दूसरी चीज़। काम कराना हो तो कीमत तो अदा करनी ही पड़ेगी।

और, तोल्या, सुनो अब इस जगह से बढ़कर मुझे कोई जगह नहीं लगती—विद्यालय क्या है, जादू है! यहाँ की पढ़ाई खत्म करने के बाद मैं किसी न किसी दुकान का मैनेजर हो जाऊँगा और ज़माने के लिहाज से यह जगह भी हज़ारों में एक समझो! हमारी दाहिनी ओर का बँगला इसका जीता-जागता सबूत है। और, दिन-ब-दिन इस मामले में मेरा यकीन पक्का ही होता जाता है... अब जब अक्ल के अन्धों को इम्तहान के लिए रटाई करते देखता हूँ तो एक साथ ही रोना भी आता है और हँसी भी। यूना पढ़ाई में हड्डी-हड्डी गलाये दे रही है। कल हम दोनों साथ-साथ सिनेमा देखने गये। बात यह हुई कि बिना किसी तरह के दिलबहलाव के लड़की इस तरह किताबों में जुटी रही कि मुझे तरस आया

और मैं उसे घर से बाहर निकाल लाया कि चलो, ज़रा चित्त बदल लो। फिल्म के बाद हम आइसक्रीम-काफे में गये और थोड़ी देर तक तुम्हारी चर्चा होती रही।

तुम्हारे मामले में वह भी दुखी है। उसका कहना है कि कुली का काम ही सीखना था तो तुम उसके पिता के कारखाने में सीख सकते थे। काश कि तुम सुनते उसकी बात! देखते कि उसने कैसे और किस तरह कही।

खैर, तो यह हुई मेरी राम-कहानी। मैं तुम्हारे जीवन के बारे में और समाचार पाना और जानना चाहता हूँ। प्रतीक्षा में रहूँगा। हाँ, यह बतलाओ कि तुमने रीछ भालू-वालू भी देखें या नहीं? और मच्छरों के क्या हाल हैं? उन्होंने तुम्हें बाकी छोड़ा या चबा डाला?

नहीं, प्यारे, नहीं!

तुम एक ज़माने तक बुद्धू बनते रहे। अब तो खत्म ही करो यह राग। यानी बेकार की बातें बन्द करो कि तुम यह नहीं समझते कि ज़िन्दगी क्या है! मैं तुम्हारी बात नहीं जानता, पर मैं कैसी-कैसी खूबसूरत कल्पनाओं और कैसी-कैसी ऊँचाइयों के बीच से गुजर रहा हूँ कि देखो तो आँखें चौंधिया जायें। यह कल्पनाएँ और यह ऊँचाइयाँ जवानों का मुँह भरने के लिए खास तौर पर गढ़ी गयी हैं। दूसरी तरफ़ दुनिया है कि कुछ दूसरे ही ढर्रों पर चल रही है। यह तरीके आसान भी ज़्यादा है और ठोस भी ज़्यादा। पर यह सही है कि इनके लिए ज़्यादा ज़रूरत है तुम्हारे जैसे काठ के उल्लुओं की।

शायद तुम सोच-विचार करोगे तो तुम्हें मेरी बातें सही लगेंगी। ज़रा एक बार अपने चारों तरफ़ तो निगाह दौड़ाओ। मेरा ख़्याल है कि अपना काम और अपने यहाँ की ज़िन्दगी हमारी आज की असलियत का छोटा-मोटा नक्शा मालूम होगी तुम्हें। तुमने बात नहीं मानी। न सही। अब तो सब कुछ खुद देख-समझ लिया! मारो गोली और लौट आओ। वैसे एक होशियारी का काम तुमने यह किया कि किसी कण्ट्रैक्ट-वण्ट्रैक्ट से अपने को नहीं बाँधा। अगर ऐसा न होता तो तुम फँस गये थे, जान नहीं छूटती किसी तरह। तो, भाई, सलाम करो और घर वापस! आशा है कि जल्दी ही भेंट होगी तुमसे!

लेकिन, जो कुछ तुमने मुझे लिखा है, अगर तुम्हारा उसमें यकीन है तो मैंने तुमसे हाथ धोये! तुम्हारे जैसे भोले-भाले बुद्धू ही तो दुनिया को चालू रखते हैं। न मानो तो जिओ और देखो! आसमान से धरती पर आ गिरोगे यह मत समझो कि मैं अपनी ओर से कोशिश करूँगा और तुम्हें कुछ समझाऊँगा।

भला, मैं क्यों कहने जाऊँ कि आ बैल, सींग मार! ज़िन्दगी खुद सिखला देगी तुम्हें!

पुनःश्च और, हाँ, मैं भूल गया। माँ तुम्हें प्यार भेजती है औ कहती हैं कि तुम आना तो देवदार की एक बोंड़ी लेते आना। वे उसके सामान वाली आलमारी के ऊपर रखना चाहती हैं, इसलिए बोंड़ी ज़रा बड़ी ही हो।

तुम्हारा

वीक्तोर–"

हिस्सा तीसरा

ज़िन्दगी–लोहे के चने!

बेचारे–बेचारे मेरे हाथ! दिन में दर्द करते है, रात में उनकी पीड़ा और बढ़ जाती है। मुसीबत शुरू हुई है गाँठ-गँठीले हत्थेवाले फावड़े के साधने और चलाने के कारण पड़नेवाले फफोलों से। अब यह है कि हर दिन हालत बिगड़ती ही जाती है। दिन में काम करते समय यानी ढाँचा-पुल पर लपकते समय, ट्रकों के बीच चक्कर काटते समय और कंकरीट काँछते समय मुझे ख़्याल नहीं रहता और तकलीफ़ इतनी नहीं होती, पर घर पहुँचने पर एक पल को चैन नहीं मिलता। दर्ज ज़रा नहीं थमता, पूरे के पूरे हाथों में फैल जाता है और जोड़-जोड़ चटखने लगता है। हथेलियों के जगह-जगह से फटे हिस्से ऊपर से सताने लगते हैं और मन करता है कि चीख पड़ूँ। मैंने अनुभव किया है कि हवा से दर्द को आराम मिलता है, इसीलिए मैं हवा में हाथ झुलाते हुए कमरे में इधर-उधर टहलता हूँ और जब पीर सम्हाल के बाहर हो जाती है तो मुँह से फूँकने लगता हूँ। नतीजा यह होता है कि मुँह से फू-फू करते घण्टों बीत जाते है।

पेतका की निगाह मेरे हाथों पर पड़ी तो उसने मुझे डॉक्टर के पास जाने और कुछ दिनों की डॉक्टरी-छुट्टी ले लेने की सलाह दी। और, मन कमज़ोर पड़ा तो मैं डॉक्टर के यहाँ जाने के लिए रवाना भी हुआ, पर घर की सीढ़ियों से नीचे उतरते ही ठिठका और लौट आया। शर्म आयी कि अभी-अभी तो काम शुरू किया है और अभी-अभी छुट्टी लेने जा रहा हूँ! मन ने कहा–"तुम डॉक्टर के पास गये तो तुमसे बुरा कोई नहीं। तुम अपने को कमज़ोर और छुइमुई का फूल समझते हो! तुम्हें तकलीफ़ बहुत है। पर, सहो, झेलो, और फिर देखो कि तुम जीतते हो या जीतता है यह दर्द।" बस तो मैंने सोचा–"मैं दर्द को मुँह की खिलाकर रहूँगा। डॉक्टर के यहाँ नहीं जाऊँगा और फू-फू करता रहूँगा। यह उससे कहीं अच्छा रहेगा।"

इसी समय स्वभाव से शान्त और विनयी ओकत्याब्रीना नाम की जवान क्लीनर ने मुझे देखा और सिर हिलाया–"लड़कों, तुम सबको सौदा महँगा पड़ रहा है। लोहे के चने चबाने पड़े रहे है। घर से बाहर निकलो तो ज़िन्दगी में कठिनाइयाँ ही कठिनाइयाँ नज़र आती हैं।"

इसपर मैं चिढ़ गया और बोला–"बेकार की बातें न करो। इससे अच्छा तो यह

है कि गोदाम जाकर मेरे लिए कोई पुरानी टोपी ला दो, क्योंकि कंकरीट का ऐसा छिड़काव हुआ है कि मेरे सारे बाल चिकट कर एक हो गये हैं।"

वह चुपचाप चली गयी और अपने पति की बिल्कुल नयी सी टोपी ले आयी। मुझे अपने ऊपर बड़ी लज्जा आयी। मैंने कहा—"मैं तुम्हारे बच्चों के लिए टोपी भर मिठाई ले आऊँगा।"

दिन पर दिन बीत रहे हैं, पर हर दिन एक तरह की ज़िन्दगी, एक तरह का काम—काम खत्म होने पर हम कुछ खाने-पीने की चीज़ें खरीदने के लिए दौड़ते हुए दुकान में जाते हैं। फिर आलू की छिलाई की जाती है और फिर अपनी पारी का इन्तज़ार करना पड़ता है कि कब स्टोव खाली मिले और कब चीज़ों के पकाने की बात सधे। यही नहीं, हमें अपनी-अपनी क़मीज़ें और मोज़े भी धोने पड़ते हैं। ओकत्याब्रीना हमारे कपड़े नहीं धोती। कहती है—"मेरे हाथ यों ही भरे रहते हैं।" और, घर में दूसरी कोई औरत है नहीं।

सीमेण्ट के घोल ओर पसीने से तरबतर मेरे रबड़ के गंदे जूतों और ओरवऑलों से बदबू आती है और इन्हें सुखाने के कमरे में ले जाना पड़ता है। यहाँ स्टोव बराबर धधकता रहता है और दर्जनों सूखते हुए ओवरऑलों से ऐसा भभका उठता है कि बैल भी यहाँ आये तो बेहोश होकर गिर पड़े।

वैसे ओवरऑलों को धोना न मेरे वश की बात है और न ही अक़्ल की! मैं अगर अपने बदन की ही क़ायदे की सफ़ाई करने और कानों से कंकरीट निकालने पर आ जाऊँ तो नहाने के कमरे में पूरा दिन का दिन लग जाये...

फिर, जब मैं थोड़ा देखने-सुनने लायक आदमी बनता हूँ और पेट से फुर्सत पाता हूँ तो दूसरे किसी काम के लिए मुझमें ताक़त ही नहीं बचती। पर पेतका और कुबिशकिन की हिम्मत देखकर तो मैं दाँतों तले उँगली दबा लेता हूँ। वे इतवारों वाले अपने खास सूट डटते हैं और नाचने चले जाते हैं। नाच सुबह के दो बजे तक चलता रहता है। जख़ार जख़ारिच या तो अपने साथी-ड्राइवर के यहाँ चला जाता है या उसे यहाँ बुला लेता है। यों आने-जाने की जगहों की कमी नहीं—हमारे मकान के बगल में ही क्लब है, सिनेमा है, पुस्तकालय है, और रात को नाच होता है। दूर क्यों जाइए, हमारे इस मकान में ही आराम का एक कमरा है, और इस कमरे में ही बिलियर्ड की व्यवस्था है। गेंदों की खड़ाखड़ दिन-रात किसी भी समय सुनी जा सकती है। पर मेरे लिए यह सब कुछ नहीं बना। मैं या तो धम्म से अपने पलँग पर जा बैठता हूँ और अपने हाथ पर फूँक मारने लगता हूँ या नीचे उठ आता हूँ, इधर-उधर टहलता हूँ, और हाथों को मुँह के सामने कर फू-फू करता हूँ।

क्या रात और क्या दिन!

क्या रात और क्या दिन, निर्माण-स्थल के पास से गाड़ियाँ गुजरती ही रहती हैं—कुछ पूर्व की ओर जाती हैं, तो कुछ पश्चिम की ओर। सीटियों की कूकें जब-तब ही कानों में पड़ती हैं।

दिन ढल चला है। सूरज डूबने लगा है। चटख, लाल किरनें हमारी खिड़कियों से आ टकराने लगी हैं। जख़ार जख़ारिच थकान से चूर घर लौटा और आराम की ज़रा सी झपकी लेने के लिए पलँग पर लेट गया है। मैं सिर गड़ाये, विचारों में डूबा मेज के पास बैठा रहा हूँ कि उसके खर्राटों की आवाज़ें मेरे कानों में पड़ने लगी हैं।

यूना, यूना, कितनी दूर हो तुम! ऐसी हो गयी हो, जैसे कि बिल्कुल अजनबी हो!...

एक बार यूना बीमार पड़ गयी। पर बीजगणित का इम्तहान क़रीब था, और उसे बहुत कुछ आता न था, अतएव साशा, वीक्तोर और मैंने सोचा कि उसके घर चलें और उसकी थोड़ी-बहुत सहायता कर दें।

यूना के पिता एक बड़े कारखाने के डाइरेक्टर थे और फ़्लैटों के एक नये ब्लॉक में रहते थे।

हम गये। वहाँ बलूत के लम्बे-चौड़े दरवाज़े के पास लगी घण्टी बहुत देर तक बजाते रहे कि तब कहीं जाकर दरवाज़ा जरा सा खुला और पेशबन्द पहिने एक औरत लगी सन्देह से भरकर दुश्मनों की तरह झाँकने। फिर बाहर निकलकर, उसने दरवाज़ा बन्द किया, हमें सिर से पैर तक देखा और सवाल पर सवाल करने शुरू कर दिये—"कौन हो तुम लोग? कहाँ से आये हो? क्या चाहते हो? कौन हो तुम लोग?" इसके बाद हमारे देखते-देखते दरवाज़ा झटके से बन्द हो गया और हम ड्योढ़ी पर बिल्कुल हैरान से खड़े रह गये।

कोई पाँच मिनट बीत गये। दरवाज़े के पीछे केवल सरसराहट होती रही। इस बार बहुत ठाठ के कपड़े पहिने, एक मोटी तगड़ी औरत आयी, ड्योढ़ी पर खड़ी हुई और सवाल दोहराने लगी—"कौन हो तुम लोग? कहाँ से आये हो? क्या चाहिए? तुम्हारे नाम क्या है?"

हम समझ गये कि हो न हो, यह यूना की माँ है। बोलीं—"ज़रा देर यहीं ठहरो!"

दरवाज़ा फिर धमाके से बन्द हुआ और हम एक दूसरे की ओर देखने लगे। समय बीतता गया, इन्तज़ार चलता गया और हम ऊबते गये कि दरवाज़ा तीसरी बार खुला, यूना की माँ बाहर निकलीं और हमें सन्देह की दृष्टि से देखते हुए हटकर एक ओर को खड़ी हो गयी—"अन्दर आ जाओ... यहाँ रुको... ओवरकोट यहाँ टाँग दो... गैलोश यहाँ उतारो... और उधर निकल जाओ।"

वे इस तरह खड़ी रहीं कि बाकी कमरों के दरवाज़े उनके भारी-भरकम शरीर की आड़ में पड़ गये। यहीं नही, वे हमें ऐसी तेज निगाहों से देखती रहीं जैसे कि उन्हें

आशंका हो और मन ही मन सोच रही हों—"ईश्वर न करे कि यह कहीं उन कमरों की ओर मुड़ जायें। इन्हें उधर नहीं जाना चाहिए।"

अन्त में फ़र्श पर बिछे कालीन के ऊपर से वे हमें एक बड़े ड्रॉइंग रूम में ले आयीं और दरवाज़े खुले छोड़कर चली गयी।

कमरा ज़रूरत से ज़्यादा बड़ा और खाली था। एक दीवार से लगे सोफ़े पर यूना लेटी हुई थी और पास ही हमारे लिए तीन कुर्सियाँ डाल दी गयी थीं।

मुझे लगा कि बीमारी की हालत में ऐसे कमरे मे तो बहुत ही तकलीफ होती होगी—सर्दी ऊपर से लगती होगी।

खैर तो हम कुर्सियों पर बैठ गये। कुछ आराम सा नहीं मिला। बातचीत शुरू हुई तो तकल्लुफ़ चलता रहा और केवल अगले इम्तहान की चर्चा होती रही। इस बीच जाने कौनसी चीज़ मेरा मन कचोटती रही कि न तो मैं कन्धे सीधे कर पाया और न ही, न जाने क्यों, यह भूल पाया कि मेरे ओवरकोट में हैंगर नहीं है। मेरा मन डरता रहा कि कहीं ओवरकोट ज़मीन पर न गिर पड़े! यहीं नहीं गलियारे में होती सरसराहटों पर भी मेरे कान बराबर लगे रहे।

यूना ने हमें आने के लिए धन्यवाद दिया और फिर आने को कहा पर हमारी समझ में ही न आया कि करें तो बात क्या करें। अतएव, पाँच मिनट ठहरने के बाद हमने जल्दी-जल्दी 'दोस्विदानिया'* की और जैसे-तैसे बाहर निकल आये। परन्तु सड़क पर आने के बाद ही हमारे मनों की धड़क खुली और हम अचरज से एक दूसरे को देखने लगे। साशा ने पानी पी-पीकर कोसा और वीक्तोर सारी स्थिति पर ठहाका मारकर हँस पड़ा।

फिर, उन लोगों के पवित्र फ़्लैट में दुबारा प्रवेश मैंने कई महीनों बाद किया। बात यह थी कि स्कीईग की क्रॉसकन्ट्री दौड़ होनेवाली थी। यूना की स्की का एक बन्द खो गया था, वह बन्द उसने मुझसे माँगा था, और उसे लेकर मैं वहाँ गया था। कहने को इस बार ताज्जुब की घटना द्वार पर कोई नहीं घटी, पर अब की मुझे अन्दर घुसने का मौका नहीं दिया गया और प्रवेश वाले हॉल में ही इन्तज़ार करने को कहा गया। इस तरह मैं ओवरकोट टाँगने के रैक के पास पड़ी छोटी सी गोल मेज के किनारे गैलेशों के बीच, बैठाल दिया गया। परन्तु यूना को तैयार होने में देर लगी तो वह बीच-बीच में दौड़ती हुई आयी, ओर मुझसे बैठे रहने की बात कहकर दूसरे ही क्षण हवा हो गयी।

अन्त में वह आयी तो एक गिलास चाय और एक तश्तरी में रखे ढेर के ढेर केक साथ लायी। मैं परेशान हो उठा और मेरी समझ में न आया कि मैं करूँ तो करूँ क्या! मन ने कहा—"शायद घरवालों ने सारी चीज़ें स्नेह से भेजी हैं, और आगर मैं इनकार करूँगा तो वे बुरा मानेंगे!" सो चाय तो मैंने रैक के नीचे बैठे ही बैठे, ओवरकोट पहिने ही पहिने पी डाली। केक मशीन की तरह गटकता गया और आख़िरी केक गले के

---

* अलविदा।

नीचे उतार जाने के बाद ही मेरी समझ में आया कि वे खासे हैं। मैं अपने अभद्र व्यवहार पर काँप गया।

नहीं, यह घटना न मैं कभी भूल सकता हूँ और न अपने को कभी माफ कर सकता हूँ। आख़िर मैं उसी क्षण उलटे पैरों लौट क्यों नहीं आया, और मैंने सदा-सदा के लिए उससे अपने को काट क्यों नहीं लिया?

मैंने उसे प्यार क्यों किया? लेकिन कोई प्यार करता है तो कारण तो पूछता नहीं। दूसरे, लड़की असाधारणतया सुन्दर और समझदार लगती। घर पर वह एक तरह से रहती, पर स्कूल में, सड़क पर, थियेटर में या स्केटिंग-रिंक में बिल्कुल ही दूसरी तरह का व्यवहार करती। लड़कों से बहस करने पर आती तो जीत सदा उसी की रहती। उसे हमारे गिरोह का केन्द्र-बिन्दु समझिए। और तो और बाल भी वह लड़कों की सी काट के रखती। हम सब उसे पूजते। वह दूसरी लड़कियों को नापसन्द करती, तो लड़कियाँ उसे नफ़रत की निगाह से देखतीं और कहतीं कि सियासी घोलने और चमक पैदा करने के लिए वह आँखों में एत्रोपीन डालती है। वह सातवें फ़ार्म से ही कपड़े नये से नये फ़ैशन के पहिनती और ऑस्कर वाइल्ड, थिओडोर ड्रीयेजर और हैमिंगवे की रचनाओं पर बातचीत करने को उत्सुक रहती। उसके पिता का पुस्तकालय बहुत बड़ा बतलाया जाता और उसमें दुर्लभ से दुर्लभ और कीमती से कीमती पुस्तकों के संग्रह की बात कही जाती। पर, पुस्तकालय को देखने का अवसर हममें से किसी को न मिलता...

यूना पढ़ते-लिखने में सदा ही बहुत तेज रही और स्कूल की पढ़ाई खत्म करने समय उसे चाँदी का पदक मिला। हर गर्मी में उसके पिता उसे रीगा-तट पर ले जाते और पाँच सौ रूबल महीना जेब-खर्च देते।

इन्हीं पाँच सौ रूबलों के लिए मेरी माँ को सिलाई की दुकान में सारे दिन मशीन के ऊपर कमर झुकाये बैठा रहना पड़ता। साथ ही, सिनेमा के नाम पर पाँच-पाँच रूबलों के लिए मुझे घिघियाना पड़ता। यह रूबल मैं यूना पर अगली बार खर्च करने के लिए सम्हाल कर रखे रहता। मुझे सदा लगता कि उस जकड़े हुए, घुटन से भरे प्रवेश-हॉल और केकोंवाले फ़्लैट में रहनेवाली यूना नकली है, अतएव किसी न किसी दिन ऐसा जादू होगा कि वह अपने असली रूप में आ जायेगी। असली यूना की कल्पना करता तो वह सुन्दर, सरल, समझदार और अद्‌भुत लगती, और लाख न चाहने पर भी उसका ख़्याल आता ही रहता।

पर, जब उसने पदक प्राप्त कर इंस्टीट्यूट में दाखिला लिया तो मुझे लगा कि उसका जीवन फूलों की सेज है, और किसी तरह के किसी बादल के घिरने का वहाँ सवाल ही नहीं उठता। बस, तो मैंने सही स्थिति समझ ली और हमारी दिशायें जैसे कि सदा-सदा के लिए अलग हो गयीं।

मैं उसके पास वापस कभी नहीं लौटूँगा। पर भूल भी मैं उसे कभी नहीं सकता।

ऐसी बातें भूलने की नहीं होतीं। पर इन दिनों वह वीक्तोर के साथ सिनेमा देखने जाती है और अपने पिता के कारखाने में काम सीखने की बात को लेकर बोली ठोली मारती है। लगता है कि वीक्तोर को ज़िन्दगी का रास्ता मिल गया और मात देने का मोहरा भी उसके हाथ लग गया।

मैं गाड़ियों की सीटियाँ दिन-रात सुनता हूँ—इनमें से कुछ पूर्व को जाती हैं तो कुछ पश्चिम को। आख़िर मेरा क्या होगा? मैं यहाँ आया क्यों हूँ? मैं अपने को दबा सकता हूँ कि न मुँह से उफ़ निकले और न डॉक्टर के यहाँ जाने का ख़्याल दिमाग़ में आये! पर, इतनी कीमत अदा करना उचित भी है क्या?

सवाल यह है कि ज़िन्दगी का कौनसा रास्ता ज़्यादा सीधा और सही है—वह जो अपने पिताओं के बल पर वीक्तोर और यूना तय कर रहे हैं, या वह जो लेओनीद, स्त्रेपेतोव और बाज की सी भौंहोंवाली तोन्या आदि बिछा रहे है?

रास्ते, ओ मेरे छोटे से रास्ते, तुम कहाँ हो कि तुम मिलो और मेरा हाथ पकड़ो तो मैं प्रकाश से नहायी, सीधी सड़कों की दुनिया में आ निकलूँ?

देवदार की बोंड़ी—

अपने टूटे-फूटे सूटकेस में मोज़ा, क़मीज़ और साबुन रखते समय जैसे किसी भूल का अनुभव हुआ। लगा कि कोई चीज़ अच्छी-खासी है, पर मेरे दिमाग़ से उतरी जा रही और मुझे याद नहीं आ रही है—यहीं नहीं, बाद में ख़्याल आयेगा तो मुझे उसके लिए दुख भी होगा।

अचानक ही मेरी कल्पना ने कहा कि जख़ार जख़ारिच की निगाह मेरी हर हरकत पर है। पर मैं मुड़ा तो मैंने उसे, हथेली गाल के नीचे रखे, आराम से सोता पाया। बर्फ़ की तरह उजले तकिये के गिलाफ पर सधे रहने के कारण उसके सफ़ेद बाल दूधिया लगे।

बड़ा सन्नाटा था। मैंने मुड़कर अपने बिस्तरे पर नज़र डाली तो दिमाग़ में बिजली सी कौंध गयी। याद आ गया। इससे जहाँ मन को शान्ति मिली, वहीं चित्त खराब भी हुआ कि जसे भुलाने की कोशिश इतनी की, उसका ख़्याल आख़िरकार आकर ही रहा।

बोंड़ी! सामान की अलमारी पर रखने के लिए देवदार की बोंड़ी।

मैं पलँग पर बैठ गया।

ठीक इसी समय मैंने देखा कि ज़खार ज़खारिच की आँख खुल गयी है और वह बदन सीधा कर रहा है। इसके बाद उसने अपने नंगे, गँठीले पैर नीचे कर लिये और आनन्द से जमुहाई ली। मैंने अपने सूटकेस का ढक्कन खड़ाक से बन्द किया।

"अपना सामान ठीक कर रहे हो?" बूढ़े ने सरल-सादे ढंग से पूछा, "बहुत अच्छी बात है!... तुम्हें याद नहीं है, कल हेरिंग मछलियाँ बच गयी थीं? ज़रा मुँह नमकीन

करने को जी कर रहा है।"

उसने देखा-दाखा या नहीं इससे मुझे क्या लेना-देना! मेरे लिए तो कोई अन्तर पड़ने को था नहीं!

पर, ज़खार ज़खारिच कुछ गपशप के मूड में लगा। सो मेज के पास बैठते और हेरिंग पर हाथ साफ़ करते हुए बोला—"काम कैसा चल रहा है? आदी हो चले? घर की याद तो नहीं आती?"

"हूँ..." (मैंने सोचा—"इसने देख लिया है, इसीलिए इस तरह का सवाल कर रहा है")

"ऐसा ही लगता है आदमी को। तुम यकीन नहीं करोगे, तोल्या, पर जब मैं पहले-पहले यहाँ आया तो मेरा तुरन्त ही भाग खड़े होने को जी किया। उस वक़्त तक यहाँ कुछ भी तैयार न था—जिस तरफ़ नज़र जाती सिर्फ़ दलदल और कीचड़ नज़र आती। पानी बरसता रहता, ओले पड़ते रहते, बुखार का बाज़ार गरम रहता—जगह क्या, नरक समझो बिल्कुल! ऐसे में मैं अपना सिर खुजलाता और सोचता—'भाई मेरे, उठाओ अपना बक्सा, और नौ-दो-ग्यारह हो जाओ यहाँ से!' फिर मैं सोचता—'नहीं, ज़रा रुककर देखूँ कि चीज़ें क्या मोड़ लेती हैं।' सो वह दिन है और आज का दिन है। मैं देखता जा रहा हूँ और चीज़ें मोड़ लेती जा रही हैं। ज़िन्दगी में ऐसा ही होता है।"

"हूँ..."

"मैं तुम्हें देखता रहा हूँ।" उसने सब से मोटी हेरिंग चुनी और सधे हुए हाथों से छील डाली, "मैं तुम्हें देखा और अनुभव करता रहता हूँ कि चीज़ें मुश्किल हैं तुम्हारी लिए।"

"नहीं, बिल्कुल नहीं!" (मन ही मन बोला—"नहीं, मैं नहीं समझता कि उसने मुझे सचमुच देखा। कम से कम उसकी आवाज़ से तो ऐसा नहीं ही लगता")

"हाँ, यह तो है, चीज़ें मुश्किल तो हैं। लेकिन कोई फ़िक्र न करे," वह स्नेह से बोला, "तुम फ़िक्र न करो। सब कुछ ठीक हो जायेगा... देखो ज़रा इस मछली को देखो... अण्डे फूटे पड़ रहे हैं... बेटे, सीधे-सीधे ज़िन्दगी के मुँह में धँस आये हो, रेले में तुमने अपने को डाल दिया है, अच्छा ही किया है। काम बहादुरी का था। देखना, अब हिम्मत न हारना। हम सभी के पैर पतले पड़ते हैं, पर डरने वाला आदमी, आदमी नहीं होता, इस कमरे में ही मैंने बड़े-बड़े बुजदिल देखे हैं... पानी के बुलबुले बिल्कुल! ऐसा इंसान, इंसान नहीं होता, चिड़िया होता है। उड़कर आता है, अधिक से अधिक एक सप्ताह टिकता है, और हाथों में थोड़े-बहुत घट्टे डालने के बाद घर फुर्र हो जाता है, माँ के पास। अजब मसखरेपन की बात है! मेरा ख़्याल है कि इस रोग की जड़ है मन के अन्दर का डर, बुजदिली।"

"ज़खार ज़खारिच, तुमने यहाँ की तरह ही और बहुत सी जगहों में भी काम किया है, है न?" बातचीत को खतरनाक मोड़ लेने से बचाने की चेष्टा करते हुए मैंने कहा।

"हाँ, काफ़ी जगहों में किया है। काफ़ी देखा-सुना है... हाँ, तो क्या कह रहा था मैं? हाँ, हाँ, भगोड़ों की बात चला रहा था। मेरा अनुभव है कि लोगों के आने और फिर भाग खड़े होने का सिलसिला जितना निर्माण-स्थलों में चलता है, उतना और कहीं नहीं। इसका कारण है और वह कारण यह है कि यह जगहें आदमी के दम-खम को कसौटी पर कसती हैं। निर्माण-स्थल आज की ज़िन्दगी की सब से आगे की पाँत में आते हैं और ऐसे-वैसे, कूड़ा-कबाड़ लोग यहाँ बहुत देर तक टिक नहीं पाते। लेकिन तुम्हारे साथ गड़बड़ी क्या है? तबीयत तो ठीक है न? इधर आओ, बैठो, ज़रा हेरिंग चखो। अच्छी चीज़ है... आम आदमी का खाना है... देखो, कैसी मोटी है यह! आओ, बैठो।"

मेरे सिर से पैर तक आग लग गयी। दिमाग़ जैसे बौखला उठा—"तो इसने मुझे सामान ठीक करते देख लिया? यदि नहीं, तो क्या यह सारी बातचीत यों ही चल पड़ी है, अपने आप?" मैंने बूढ़े के मन के भाव पढ़ने की कोशिश की। पर वह शान्त भाव से खाता, हड्डियाँ एक क़ागज़ के टुकड़े पर जमा करता, और तटस्थ भाव से बातें करता रहा।

"दुनिया में हर एक के हिस्से में थोड़ी-बहुत नोच-खरोंच और ठोकरें पड़ती हैं। उनके लिए तैयार रहो। अभी क्या है, अभी तो तुम लड़के हो! तुम्हारे सयाने होने तक अभी तो जाने कितनी मुसीबतें मुँह फैलाये तुम्हारी ओर बढ़ती चली आयेंगी। लेकिन इससे तुम्हारी हड्डी मजबूत ही होगी, नुकसान कुछ न होगा। तुम कुछ खाते क्यों नहीं? इतने सुस्त-सुस्त से लगते हो! मैं कहता हूँ कि इस सूटकेस में सिर खपाने के बजाय तुम बाहर जाकर थोड़ा घूम-टहल क्यों नहीं आते?"

"इसने देख लिया है मुझे," डर से काँपकर मैंने सोचा, "इसने सब कुछ देखा है, इस समय तो यह केवल नाटक कर रहा है।"

वह बोला—"खैर, तुम जाओ, न जाओ, मैं तो जाता हूँ। सो जाने के बाद से जैसे नशा सा मालूम हो रहा है।"

मेरी जान में जान आयी—"नहीं, इसने कुछ नहीं देखा, नहीं तो इस समय मुझे अकेला छोड़कर इस तरह जाता नहीं।"

ज़खारिच सचमुच चला गया। मैंने मोज़े, साबुन वगैरह बाहर निकाला और सूटकेस पलँग के नीचे ठेल दिया। मेरा दिल बुरी तरह धड़कने और सारा शरीर कँपकँपाने लगा। ऐसे में अकेला रहना असम्भव लगा। दिमाग़ ज़वाब देने लगा। खीझ ने परेशान कर मारा।

मैंने कमरे में ताला लगाया और लेओनीद का दरवाज़ा खटखटाया। सौभाग्य से वह घर पर ही मिल गया।

मैं अक्सर ही उससे मिलने जाता हूँ। उसके पास एक पुराना ग्रामोफ़ोन और ढेर के ढेर रेकार्ड हैं। मुझे देखते ही वह जैसे खुशी से खिल उठता है, बड़े तकल्लुफ़ से

कुर्सी मेरी ओर बढ़ाता है, जैसे कोई पवित्र कृत्य-सा करते हुए ग्रामोफ़ोन पर रेकार्ड रखता है, और सुई पर कई बार उँगली फेर कर उसे परखता है। इसके बाद अपने बड़े-बड़े, सींग से हाथ मेज पर रखता है, सिर झुकाता है, और संगीत में डूब जाता है–

बीच गगन से तारा टूटा,
जैसे धीरज छूटा–
किसी झोपड़ी के छप्पर ने ऊपर-ऊपर लूटा–
मेरी रानी, वापस कर दो वह रूमाल अनोखा–
और अँगूठी भी लौटा दो। अब न चलेगा धोखा!

रूसी लोक गीतों के पीछे तो जैसे वह पागल रहता है। इतने लोक गीत मैंने पहले कभी नहीं सुने। मास्को में तो मैंने इनकी तरफ़ कभी ध्यान भी नहीं दिया। पर मर्दो के इस हॉस्टल के काले-भूरे कम्बलों, दीवारों के फ़ोटोग्राफ़ों, चरमराते फ़र्शो और निचली छतों के इस वातावरण में जब घड़घड़ाते हुए, बाबा आदम के ज़माने के ग्रामोफ़ोन से गीत फूटते हैं तो मेरी आँखों में आँसू छलछला आते हैं, दिल ऐंठने लगता है, और आदमी के अन्तरतम का कोई दर्द सामने लहरें लेता मालूम होता है। यह दर्द शब्दों मे नहीं बाँधा जा सकता। वैसे यह अपनी सीमा में विराट लगता है।

सो, मैंने गीत सुना तो सारी मुसीबतें एक-एक कर पीछे जातीं और बुझती लगीं। मन ने कहा–"आख़िर में सब कुछ ठीक हो जायेगा।" मैंने निश्चय किया–"तो ठीक, मैं इन्तज़ार करूँगा और देखूँगा कि चीज़ें कौन-सा रूप लेती हैं। वह रूप अपने आप में अन्तिम होगा।"

मैं नहीं जानता कि लेओनीद का संगीत-बोध किस तरह कार्य करता है। पर उसके सामने लोक गीत और लघु संगीत नाटक आपस में उलझते कभी नहीं। जितना नशा उसे एक का रहता है, उतना ही उन्माद दूसरे का–

नारी, बिना तुम्हारे जीवन सदा असम्भव!
अरी, प्रियतमे, मधुरे, तुम हो देवदूत सी!
....
शीघ्र बनोगी मेरी भामा–
सुखदा, जीवनदा, अभिरामा!

लेओनीद यह रेकार्ड भी उसी तरह सुनता है, उसी तरह हाथ से चेहरा साधता है और उसी तरह उदासी में नहाये विचारों में खो जाता है। आख़िर में जब रेकार्ड खत्म होता है तो वह उसे कपड़े से हल्के-हल्के, सावधानी से पोंछता है और फिर खोल में रख देता है।

"नारी, बिना तुम्हारे जीवन सदा असम्भव!"

और फिर हम औरतों के हॉस्टल में गये। यानी अब और केवल अब लेओनीद के मोहरे मेरी समझ में आये और उसकी चालाकी की ओर ध्यान गया। उसने खास मतलब से मेरा परिचय, नाच के समय, बाज की सी भौंहोंवाली तोन्या से कराया था। तोन्या और लेओनीद की प्रेमिका तमारा एक ही कमरे में रहती हैं।

हम अन्दर पहुँचे और पलँग पर बैठे कि लेओनीद ने तमारा से झगड़ना शुरू कर दिया। (यह उसके प्रेम-प्रसंग का अपना अलबेला ढंग है)

"लोहे में रस्सा बाँध दिया, सोचो तो! औंधी खोपड़ी हो तुम! भगवान बचाये इन औरतों से।"

"तुम फ़िक्र से दुबले न हो। रस्सा ठीक है।"

"बेवक़ूफ़ हो, आग लग जायेगी। तारों से बाँधना चाहिए... फूहड़ हो तुम सब!"

"अच्छा है, तो क्या हुआ? जिसे अच्छा न लगे वह अपना दिमाग़ अपने पास रखे, नहीं तो कहीं ऐसा न हो कि कोई लम्बी नाक पर भरपूर हाथ जमा दे!"

"लम्बी नाक तो खुद तुम्हारी है!"

"अच्छा है तो है—तुम्हें क्या पड़ी है? तुम हर मामले में मुझसे न भिड़ा करो, सुनते हो न? देखो ज़रा, कैसे राजा बने बैठे हैं!.... किसने माँगी तुम्हारी सलाह जो दिये चले जा रहे हो? और कोई न पूछे तो अपना मुँह बन्द रखा करो और हर जगह टाँग अड़ाते न फिरा करो।"

"लाओ, मैं लोहा ठीक कर दूँ, घर में तार है?"

"किसी को नहीं चाहिए तुम्हारी मदद।"

तमारा स्वभाव से बहुत तेज और फुर्तीली है। उसके हर काम में दिखावा होता है... अपने ड्रेस पर इस्त्री करने चली तो बिजली का पुराना लोहा एकदम आग हो उठा और उसने उसे गीले कपड़े पर फिराना शुरू किया तो भाप का बादल सा उठने लगा और छन्न-छन्न की आवाज़ होने लगी।

तमारा तीसरे विभाग में फ़ोरमैन है। शायद यही कारण है कि इस तरह हाकिमाने ढंग से बात करती है। उसके बालों की छोटी-छोटी दो चोटियाँ चेहरे के दोनों ओर लटकी रहती है। इससे उसके चेहरे-मोहरे में कोई अन्तर नहीं पड़ता, और कुल मिलाकर देखने में वह ज़रा सयानी सी लगती है।

"तोन्या, और कपड़ा है इस्त्री करने को?... कोई नहीं है? बहुत अच्छा... हे कौआ हाँक आदमी के पुतलो, अपने पतलून उतारो!"

"भाग जा!"

"मैंने कहा न कि अपने पतलून उतारो, तुम दोनों! इनपर कब लोहा हुआ था पिछली बार? शायद पिछले साल हुआ होगा... है न? तुम्हारा ख़्याल है कि हम तुम्हारे

जैसे फूहड़ों के साथ नाचती फिरेंगी! उतारो न... अरे, कौआ हाँक कहीं का, सुनता है कि तुझे भून दूँ इस लोहे से!"

लेओनीद चीख पड़ा और तोन्या हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी। हमने हुक्म की तामील की और पतलून उतारकर इस्त्री के लिए दे दिये। इस तरह हम इस ज़रूरी चीज़ से वंचित हो गये और फिर इन स्त्रियों की कृपा पर बुरी तरह आश्रित भी। हमारे पतलूनों से भाप उठी और उनपर नुकीली, चाकू की धार सी क्रीज पड़ने लगी। लेओनीद परेशानी से बदन खुजलाता और मैं कमरे में इधर-उधर नज़रें दौड़ाता रहा।

कैसा साफ़-सुथरा था सारा कमरा—मैं तो कहूँगा कि बहुत ही ज़्यादा साफ़-सुथरा! और कायदे से हर चीज़ अपनी जगह—खिड़कियों पर सफ़ेद पर्दे, मेज पर मेजपोश, पलँग पर तकिये, तकियों पर जालीदार रूमाल से, कम्बल, क़ागज़ के फूल, दीवारों पर रंगीन तस्वीरें, इत्र की शीशियाँ और शीशे। सबसे खास जगह घेर रखी थी फ़ैशन की पत्रिका के एक पृष्ठ ने। यह लोग इसे कला कहती हैं! आख़िरकार औरतें हैं ये।

पलँग कमरे में तीन थे—तमारा की बहन भी वहीं रहती थी। बड़ी ही अज़ीब लड़की थी। बहुत स्नेहमयी पर बहुत ही अधिक लजीली। उसने स्कूल की पढ़ाई अभी-अभी खत्म की थी और इस समय वह पत्र-व्यवहार के इंस्टीट्यूट के दाखिले के इम्तहान की तैयारी कर रही थी।

मेरा उससे परिचय कराया जाने लगा तो वह कमरे के कोने में पड़ी मेज के पास के अपने दरबे से बाहर निकली और बिना हाथ आगे बढ़ाये धीमे स्वरों में बोली—"ओल्या!" उसका चेहरा लाज की लाली के कारण बिल्कुल सुर्ख हो उठा।

पर, मैंने अपना हाथ आगे किया तो उसने हिचकते हुए अपना हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया। सो, झटकते समय मुझे उसकी हथेली अस्वाभाविक ढंग से सकरी लगी। मैंने कनखी से राज भाँपने की कोशिश की तो अँगूठी और बगलवाली उँगली साफ़ नज़र आयी। लगभग आधी हथेली गायब और गाँठ के पास भद्दा सा धब्बा दिखा। यह सारा कुछ उसके मधुर, जगमगाते चेहरे से ऐसा अलग-अलग सा लगा कि मेरा मन सहज ही कचोट उठा। अन्तर ने कहा—"लेओनीद ने यह बात मुझे पहले से बतलाई क्यों नहीं?" ओल्या ने होंठ काटे, पीछे हटी और अपने कोने में जा दुबकी। फिर तो जब तक हम कमरे में रहे, वह वहीं बैठी अपना दाहिना हाथ मेजपोश के नीचे छिपाये, बायें हाथ से पाठ्य-पुस्तकों के पन्ने उलटने का काम लेती रही। इस बीच न उसने एक बार मुँह खोला और न आँखें उठाकर एक बार हमारी ओर देखा।

"तोन्या, कितनी सारी किताबें हैं तुम्हारे पास! मैं देख सकता हूँ?"

"ज़रूर... ज़रूर!"

"'सुर्ख पाल!'... मुझे यह पुस्तक उधार दे दोगी पढ़ने के लिए?"

"अभी नहीं... अभी तो हमने ही नहीं पढ़ी... कल ही तो आयी है।"

"मक्खीचूस डाइनो!" लेओनीद गुर्राया, "तुम तो ऐसी कंजूस हो कि जाड़े में मुट्ठी

भर बर्फ़ तुमसे किसी को नहीं देते बनेगी!"

"अच्छा, सूप बोले तो बोले को चलनी भी बोले! कंजूसी की बात करने को तेरा मुँह हो गया?" तमारा ने उसे सरसेट लिया, "पिछले पाँच साल से अब तक एक पैंट बन रही है! शर्म नहीं आती तुझे! जल्दी ही छेद ही छेद नज़र आयेंगे इस पतलून में!... तू एक सूट नहीं बनवा सकता, शराबी, कंगाल कहीं का!"

"कंगाल होगी तुम!"

"कौन? मैं? अगर तुम हमारे बराबर कमाते तो अपनी किस्मत सराहते! हमें तुम्हारी यह टीम फूटी आँखों नहीं सुहाती। ज़्यादातर लोग किसी काम के नहीं हैं... तोन्या, कल जो फ़्रॉक तुमने खरीदा है, ज़रा दिखला तो दो इन्हें!"

"यह रहा... पसन्द आया?"

फ़्रॉक अच्छा था। सफ़ेद ज़मीन पर बड़े-बड़े गुलाबी फूल बने हुए थे। पर, भड़कीलापन ज़रा भी न था। कपड़ा देखने में कोई सस्ता सा लगता था।

"हा...हा....हा!" लेओनीद गरजा, "मैं कहता हूँ, कितनी बड़ी चीज़ खरीदी है! इसे देखकर कोई बहुत बतलायेगा तो इसकी कीमत पचास रूबल बतलायेगा।"

"जैसे कि तुम कुछ समझते-बूझते हो इन चीज़ों के बारे में... बेवक़ूफ़ कहीं के! यह क्रेप-द-फ़्लौर है!.... पर, तोन्या, मेरा ख़्याल है कि वह पाँच सौ रूबल का रेशमी फ़्रॉक लेना चाहिए था हमें... बेवक़ूफ़ी हो गयी, क्यों?"

तमारा ने पलँग पर रखा गिटार लपककर उठाया और साफ़, सधी हुई आवाज़ से गाने लगी—गाने का ढंग जिप्सियों जैसा—

ओहा, रकम जो पास हमारे,
किसे फ़िक्र है गिने, सहेजे और सँवारे....
हे.... हो.... हे..... हो...
हम जिप्सी कि हमारे नैना....
हे.... हो.... हे.... हो....
बड़े रसभरे, मारें सैना!
हे.... हो.... हे.... हो....

"औरत अपनी मालकिन आप हो तब है ज़िन्दगी का मजा। यह तो मर्दों की बातें हैं कि वे अपनी घरवालियों को पालते और उनकी परवरिश करते हैं। यह है तुम्हारी बेकार की अकड़, मरदुओ! औरत लाख तुमसे ज़्यादा कमाये और लाख तुमसे ठाठ से रहे, तुम रोब उसपर ज़िन्दगी भर यही जमाते रहोगे कि—'तुम्हारी इज़्ज़त हमसे है, हम तुम्हारा पेट पालते हैं....' नहीं, मैं शादी नहीं करूँगी। मैं कमाती हूँ और जो चाहूँ सो अपनी कमाई का कर सकती हूँ! देखते जाओ, तुम्हारे देखते-देखते तोन्या भी सर्ज के ड्रेस और पेटेण्ट के जूते खरीद लेगी और मैं भी। और तुम... तुम इसी फटे-कटे सूट

में चक्कर काटते रहोगे। मैं कहे देती हूँ, हमारे पास ये सारी चीज़ें हो जायें तो तुम पास फटकने की भी हिम्मत न करना!..."

मिले तगांका के पास हम तुम
कि बात कल की—
कि जान-पहचान हुई अचानक...

तमारा की चोटियाँ चुनौती देती सी हवा में ऐसे लहराने लगीं जैसे कि सूरज की किरनें कमरे में इधर-उधर दौड़ लगा रही हों। उसने खुशी के खजाने लुटा दिये। ज़र्रा-ज़र्रा जैसे जी जागकर मुस्करा उठा। उसने आँखें मारीं, पैर पटके और बुलबुल की तरह अपने बदन का अंग-अंग झकझोर डाला—

कि पोलयांका के पास कल ही
हमें बिछुड़ना पड़ा कलप कर....

कोने में दुबकी ओल्या ने अपना सिर और झुका लिया और कान बन्दकर लिये। आगे लहराती बालों की लटवाली एक भारी-भरकम सुहानी सी छाया ने दरवाज़े के अन्दर झाँककर देखा, आँखें नचाईं, खीसें बाईं और हवा हो गयी। लेओनीद तमारा की ओर देखता रहा। उसका मुँह आश्चर्य से फैल गया। तमारा नाचती, गाती और कमरे में लहराती रही, जैसे कि आँखों ही आँखों ललकार रही हो—"देखा, यह हूँ मैं और ऐसी हूँ मैं! तो, तो हुआ क्या?"

"आह, रात का यह सन्नाटा..."

हम ठमक-ठमककर चलते और अँधेरे को अपनी हँसी के ठहाकों से भेदते रहे। तमारा नयी बछेड़ी की तरह कुलेलें करती और अपनी सुध-बुध खोकर थिरकती रही। उसके स्वर पूरी की पूरी बस्ती में गूँजते रहे—

आह, रात का यह सन्नाटा,
औ, सागर का तट यह,
साँस नहीं सुन पड़ती जैसे—
बस कि हवा है,
और कि सागर की लहरें हैं!

ऐसी अच्छी आवाज़ मैंने कभी नहीं सुनी—अच्छे से अच्छे कन्सर्टों में भी नहीं सुनी। चारों ओर घुप अँधेरा—न कहीं चाँद, न कहीं सितारे! मैंने तोन्या की कोहनी साध

ली, तो गुलाबी फूलोंवाले ड्रेस के कपड़े से छनती उसके हाथ की गर्मी जैसे मेरी नसों में दौड़ने लगी। (ड्रेस आज उसने पहिली बार, नाच के लिए, पहिना था)

सो चलते-चलते हम जब-तब ही किसी ऊँची-नीची जगह में ठिठक रहते, हँसते, एक दूसरे को कोहनियाते और जहाँ के तहाँ बने रहते......

"तुम कहाँ की हो, तोन्या?"

"मास्को के पास के ओचाकोवो की। ओचाकोवो मास्को-कीएव लाइन पर पड़ता है।"

"तुम यहाँ कैसे आईं?"

"वैसे ही जैसे हर आदमी... गाड़ी पर सवार हो गयी और यहाँ आ गयी।"

"यानी तुम अपना परिवार पीछे छोड़ आयी हो?"

"हाँ... हमारा परिवार खासा बड़ा है... पापा, माँ और आठ बहनें हैं हम!"

"आठ बहनें!"

"मैं सब से बड़ी हूँ। दूसरी बहनें अभी बच्चियाँ हैं। बड़ी हँसी की बात है कि जब वे सब की सब खाने के लिए बिलख रही हों तब कोई जान छुड़ाकर भाग खड़ा हो!"

"तो तुम वहाँ से भाग खड़ी हुई?"

"हाँ, आख़िर मुझे अपने आप कुछ तो करना ही था। अब उनका सवाल थोड़ा-बहुत हल हो गया है। मैं चार सौ रूबल हर महीने उनके लिए भेज देती हूँ।"

पर, सहसा ही उसने इस तरह जबान रोक ली, जैसे कि कोई बड़ी गलती हो गयी हो उससे। फ़ौरन ही बात बदल गयी और उसकी आवाज़ में खीझ सी घुल उठी।

"मुझे तो यहाँ अच्छा लगता है। तुम्हारा मन यहाँ लगता है? तुम यहाँ की ज़िन्दगी के आदी हो गये या नहीं? निकोलाई बेवक़ूफ़ है। उसने पहले दिन तुम्हें सारा कुछ क़ायदे से समझाया नहीं। हमसे कहने लगा—'आदमी पढ़ा-लिखा है। उसे अपनी हिम्मत से काम लेने दो।' इसपर हमने इस मामले में अपनी राय उसके सामने रखी। लेकिन, तुम साध ले गये। तुम काफ़ी तेज़ निकले और तुम्हारी इस तेजी का अनुभव हम सब ने किया।"

"देखने में तुम ज़रा भी नहीं मिलतीं।"

"किससे नहीं मिलती?"

"अपने आप से। मैं तुम्हें ओवरऑल चढ़ाये ब्लॉक में देखता हूँ तो तुम बिल्कुल दूसरी ही नज़र आती हो—हर तरफ़ से कंकरीट का काम करने वाली लड़की दिखती हो। पर इस समय तुम्हारा रूप बिल्कुल दूसरा है—कैसी दुबली-पतली, सुन्दर और चुस्त लग रही हो।"

"सचमुच?" उसने ज़रा मज़ाक उड़ाते हुए पूछा, "मैं तुम्हारे मुँह से यह सब नहीं सुनना चाहती... चलो, लपककर उन लोगों को पकड़ लें... है न? दौड़ो!..."

स्कूल के सामने अस्फ़ाल्ट के मैदान में सदा की तरह आज भी लोगों का जमघट

लगा दिखा। लगा जैसे कि निर्माण-स्थल पर काम करने वाले सारे के सारे तरूण यहाँ आ जमे हुए हैं।

मैं आश्चर्य से सोचने लगा—"इनमें इतनी स्फूर्ति आ कहाँ से गयी? दिन की जी तोड़ मेहनत के बाद तो सारा बदन इस तरह चूर-चूर हो जात है कि आदमी को सब से बड़ी साध पलँग की होती है। लगता है कि कैसे साँस मिले और कैसे हाथ-पैर ज़रा सीधे हों! पर, यह लोग हैं कि इसके बाद भी अपने कपड़ों पर लोहा करते हैं और नाचने के लिए आ जमते हैं। यही नहीं, इसके बाद सारी रात उछलते-कूदते रहते हैं। और केवल सिरों के चक्कर खाने पर ही दम लेते हैं।

सो, अकारदीयन के ऊँचे स्वर गूँजे और कोई मस्त पियक्कड़ दर्शक-मण्डली को अपने कौतुक से रिझाने लगा। नाचनेवालों के बीच कुछ जहाज़ी भी जहाँ-तहाँ दिखलाई पड़े। सवाल उठा—"आख़िर यह यहाँ उग कहाँ से आये?"

टिपाई कहीं कुछ भी न दिया। हम अँधेरे में चक्कर काटते रहे, काटते रहे कि फिर सूखी घास के भभके के साथ धुआँयंध नाक में आयी और फिर सैकड़ों पैर अस्फ़ाल्ट खुरचने लगे। बाद में नाचते-उछलते-कूदते और अपने शोर-गुल से आसमान सिर पर उठाते हम लौटे। सच तो यह है कि जाने कितने लोगों की नींद हराम कर दी होगी हमने!

और, जब हम बुरयातों के 'योखार' नाच की आम जगह पर पहुँचे तो तमारा ने बहादुरी से उनका घेरा तोड़ दिया, अपनी अगल-बगल के लोगों के हाथ पकड़ लिए और नाचना शुरू कर दिया। कहना न होगा कि देखते-देखते उसने उनकी धुन पकड़ ली, और इस तरह उन्हीं की तरह पैर पटकने लगी जैसे कि 'योखार' नाच नाचने के आलावा जीवन भर उसने और कुछ किया ही न हो।

इस तरह हम ऐसे आनन्द-विभोर हुए कि हमें अलविदा करने तक का होश न रहा। लेओनीद और मैं लड़कियों को उनके दरवाज़े तक छोड़ने गये। इसी समय तमारा ने लेओनीद को खड़िया के पीपे पर इस तरह ढकेला कि उसके दोनों हाथ सन गये। वैसे हँसे हम इतना थे कि सीनों में दर्द अलग महसूस हुआ।

ओल्या ने दरवाज़ा खोला तो वह थकी हुई, गम्भीर दिखी और उसकी आँखों के चारों ओर काले घेरे नज़र आये। उसने बायें हाथ से माथा रगड़ा। मेज पर स्याही से नहाई पाठ्य-पुस्तकों का अम्बार लगा रहा। तमारा बावर्चीखाने में चली गयी।

तोन्या सुस्ती से रूमाल पलँग पर फेंकते हुए बोली—"लेकिन कल काम कैसे होगा? हर वक़्त आँखों में नींद भरी रहेगी। इसपर भी, आज मजा खूब रहा!"

उसकी नीली आँखें अपनी नज़रों के सहारे मेरे दिल की गहराई में उतरने लगीं, जैसे कि कोई राज हो जो हम दोनों के अलावा और कोई न जानता हो...... बेचारे-बेचारे लोग!

"रहा न खूब मजा?" उसने मुझसे धीरे से पूछा।

"हाँ, ज़रूर रहा!"

"जाओ, हाथ धाओ और फिर नौ-दो-ग्यारह हो जाओ यहाँ से....... जल्दी करो!"

लेओनीद और मैं बावर्चीखाने में गये। तमारा ने स्टोव के पास खड़े होकर क़ाग़ज़ के थैले की बची-बचाई सेवईंयाँ पैन में डालीं। उसका चेहरा भूरा पड़ गया, कोई वेदना सी आँखों से झाँकने लगी और माथे पर बल पड़ गये। सारा बदन पीला और हड्डहा यानी इस तरह हड्डी का एक ढाँचा सा नज़र आया कि मैं आश्चर्य से अवाक् रह गया। उसने थकान से चढ़ी-चढ़ी आँखों से हमारी ओर देखा और गम्भीरता से पूछा—"तुम्हें झाड़ू लेकर हाँकना पड़ेगा क्या?"

हमने विदा ली और वहाँ से चल पड़े। सारा आनन्द, सारा उछाह जैसे पर लगाकर उड़ गया। हम मकान की ड्योढ़ी पर पहुँचे कि मैंने लेओनीद से पूछा—"बेचारी, लड़की ओल्या.... उसका हाथ इस तरह कट कैसे गया?"

उत्तर मिला—"वह गोल आरे पर काम कर रही थी कि दो उँगलियाँ चपेट में आ गयीं और उड़ गयीं। मेरे मन में बड़ा दर्द है उसके लिए। लड़की बहुत अच्छी है। कोई कभी उसे बाहर नहीं ले जाता। उसने इंस्टीट्यूट में नाम लिखाने का इरादा किया है और काम छोड़कर दाखिले के इम्तहान के लिए घोटाई कर रही है। तुमने तो उसे देखा है। तमारा दोनों का मुँह भरने के लिए काम में हड्डी-हड्डी गलाये दे रही है। इसपर भी तोन्या के साथ वह अपनी कमाई शेखी में गँवाती और क्रेप-द-फ़्लौर खरीदती फिरती है। वैसे यह लड़कियाँ खाती क्या हैं, सो तो तुम देख ही आये हो—खाती हैं सेवईंयाँ। खैर, चलो, घर चलें..... सोने का समय हो गया।"

दोस्त और दुश्मन—

कोई करे तो करे क्या, अगर ड्राइवर पास आये और आँखों में याचना भरकर अरदास करे—"कृपया इस गिनती में दो और जोड़ दो... जोड़ दो न!"

ट्रक नम्बर 00—39 के इस ड्राइवर को देखकर मुझे अपनी गाड़ी के कण्डकटर चाचा कोस्त्या की याद आ जाती है। इसकी आँखों से भी उसी तरह की ढिठाई टपकती है और ये भी उसी तरह नाचती रहती हैं। अन्तर केवल यह है कि इस आदमी में आत्मविश्वास के साथ-साथ तेहा कुछ ज़्यादा है। दूसरे यह कि इसके लगभग सारे के सारे दाँतों पर सोना मढ़ा हुआ है।

सो, दस खेपें करने के बाद उसने मेरी बगल में आकर ट्रक में ब्रेक मारा, दरवाज़ा खोला और पूछा—"सुनो, कितनी खेपें अब तक की हैं मैंने?..... क्या मतलब, दस? मैं तो बारह समझता हूँ।"

"नहीं, सिर्फ़ दस... देखो न।"

"तुम्हारा गिनती करने का ढंग बड़ा अजीब है... चलो, बारह कर दो।"

"लेकिन, मैं यह नहीं कर सकता।"

उसने मेरे मन की गहराई कूतने की कोशिश करते हुए मुझे सिर से पैर तक देखा और बहुत इत्मीनान से थूका—"तो यह बात है... मेरा ख़्याल है कि अगर तुम इस दस को बारह कर दोगे तो तुम्हारे हाथ की पेंसिल टूट जायेगी!"

उसने शान्त भाव से दरवाज़ा बन्द किया और फिर इतने ज़ोर से गाड़ी स्टार्ट की कि ब्रेक खड़खड़ा उठे। इसके बाद एक घण्टे तक उसकी सूरत नज़र नहीं आयी। आख़िरकार फिर कंकरीट लेकर आया तो बड़ी मोहब्बत से हँसते हुए बोला—"पन्द्रह... ठीक है न?"

"देखो," मैं ज़रा चिढ़ते हुए बोला, "दूसरे सभी ड्राइवरों ने बीस-बीस खेपें की हैं, पर तुम अब तक सिर्फ़ ग्यारह कर पाये हो।"

इस पर-वह कुछ नहीं बोला और फिर शिफ़्ट के आख़िर तक मैंने उसकी शक्ल नहीं देखी। मैंने उसका नाम 'सोने के दाँतों वाला ठग' रख दिया है और वह मुझे नज़र नहीं आता तो मुझे बड़ी खुशी होती है।

ट्रक नम्बर 00—77 का ड्राइवर अधेड़ है। कमर ज़रा झुकी हुई है। आँखों में उदासी घुली रहती है। अक्सर गुमसुम रहता है। मेरे हर हुक्म की तामील करता है, कंकरीट मेहनत से गिराता है और बिना मुँह खोले ट्रक लेकर लौट जाता है। मुझे तो यह भी नही पता कि उसकी आवाज़ है कैसी! जो भी हो, जब मैं उसे कन्धे झुकाये, इशारे के लिए अपनी ओर देखते, थकान से चूर, स्टीयरिंग के पास बैठा देखता हूँ तो मेरे मन में कचोट सी उठती है और मैं इसका कारण समझ नहीं पाता।

तो, पन्द्रह खेपें करने के बाद वह केबिन से निकला। फिर उसने बिना मुँह से कुछ कहे मेरे पैड की ओर देखा, आह भरी, दूरी में निगाह दौड़ाई और अगली खेप के लिए चल पड़ा। आदमी कोशिश बहुत करता है, पर काम जल्दी कर नहीं पाता और दूसरे उससे ज़्यादा खेपें कर लेते हैं; यानी कहने को कह सकते है कि काम करते समय साँस नहीं लेता, पर इसपर भी दूसरों से पिछड़ा ही रहता है। नतीजा यह कि मैं अक्सर ही अपने निशानों की गिनती करता हूँ और सोचता हूँ कि काश कि कोई गलती कहीं निकल आये और मैं इस थकान से टूटे आदमी की मदद कर सकूँ! सच तो यह है कि इसके लिए मैं बड़ा उत्सुक रहता हूँ। मुझे लगता है कि इसका परिवार बड़ा है और इसके बहुत से कच्चे-बच्चे हैं। दूसरी ओर, मेरी सूची में सब से कम खेपें करने वालों में सोने की दाँतों वाले ड्राइवर के बाद इसी का नाम आता है।

कल एक नया ड्राइवर आया-तातार था। उसके अभी-अभी काम सम्हालने के बावजूद लोगों ने उसे ट्रक दी खड़खड़ाती हुई, कीचड़ से तरबतर, टूटी-फूटी, एक-एक अंजर-पंजर ढीला। इसके पहले यह मिट्टी ढोने के काम लाई जाती थी और जब इस नौसिखिया तातार ने ओहार उलटा तो कंकरीट गिरी नहीं, बल्कि मढ़े हुए आटे के पहाड़ की तरह जहाँ की तहाँ बनी रही। मैं हाँफने लगा। यह समझिए कि फावड़ों और घन

से काम लिया गया और तब कहीं कोई पन्द्रह मिनट में हम दोनों मिलकर वह कंकरीट गिरा सके। काम ने जैसे जान निकाल ली और तातार मुझसे भी अधिक चूर-चूर हो गया। इसपर हर तरह की मदद करने के लिए तैयार रहने पर भी उसे शर्म बड़ी आयी। इससे भी बड़ी बात यह कि ओहार गिराये बिना ही उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी। नजीजा यह हुआ कि साइड बोर्ड ज़ोर से टब से टकराया और निचले कब्जों के हुक अलग होकर दूर जा गिरे। उस दिन तातार और खेपें न कर सका। गाड़ी की मरम्मत ज़रूरी हो गयी।

"आइ... आइ... आइ!" जैसे सिसकते हुए तातार बोला, "आइ... मुझसे चूक हो गयी... आइ... मैं भूल गया... मैंने आज फिर कुछ नहीं कमाया!"

"तुमने दो खेपें की हैं," मैं बोला।

"एक की है।"

"नहीं, दो।"

"शुक्रिया," वह झुका और मैं दूसरी ओर देखने लगा।

लेकिन एक ड्राइवर ऐसा है जो अपनी हर मुश्किल आसान कर लेता है। उसका नाम जिप्सी गेना है। सचुमच वह जिप्सी है नहीं, सिर्फ़ यह है कि उसका रंग जिप्सियों सा पक्का है। दाँत ऐसे उजले हैं कि चमचमाते रहते है। माथे पर बालों की एक लम्बी लट बनी रहती है और ट्रक उसकी साँप की तरह लहराती चलती है। लगता है जैसे कि हर आदमी उसे जानता है।

"हलो, गेना!"

"कहो, प्यारे!"

ट्रक में स्टीयरिंग के पास बैठता है तो ऐसा लगता है जैसे कि कोई शानदार घुड़सवार अपने स्टैलियन पर सवार हो और उसे इधर-उधर नचाता फिर रहा हो। लड़कियों की किसी टोली पर निगाह पड़ते ही ब्रेक लगाता है, हाथ हिलाता है और अपनी बत्तीसी की बिजली कौंधा देता है। बिना किसी खास कोशिश के तीस खेपें खींच लेता है और घण्टे, दो घण्टे को अपने काम से जहाँ-तहाँ आने-जाने का समय अलग से निकाल लेता है। आदमी क्या है, शैतान की आँत है। फिर यह कि अपनी खेपों की निगती भूल से भी नहीं पूछता। ट्रक लाता है तो बल्लियों के ऊपर उड़ता चला जाता है और सारी कंकरीट यों उलट देता है जैसे कोई आदमी फ़्राइंगपैन से पैनकेक नीचे उलट दे। इसके बाद हँसते हुए पूछता है—"सब ठीक है न?"

"क्या कहने है! चमाचम करती रहती है! तुम अपनी ट्रक ग्रीज से चमकाते हो क्या?"

"ज़रूर चमकाता हूँ... चेहरे पर लगाने की क्रीम से साफ़ करता हूँ।"

मैंने उससे सलाह माँगी—"भाई मेरे, और ड्राइवरों के मामले में भला क्या करना चाहिए मुझे? वे आँखों में याचना भरकर तरह-तरह की, बेसिरपैर की माँग करते हैं

मुझसे! घेरे रहते हैं जैसे!"

गेना गम्भीर हो उठा और मुँह बनाते हुए मुस्कराया—"यह बहुत बड़ा सवाल है और इस सवाल का जितना सम्बन्ध ज़िन्दगी से है, उतना आत्मा की ईमानदारी से नहीं। दो शब्दों में मेरी सलाह यह है कि इस मामले में काफ़ी होशियारी बरतो और एक-दो खेपें जब-तब इधर-उधर डाल दो। तुम्हारा इससे क्या नुकसान होगा? तुम्हें पकड़ कोई सकता नहीं। कौन कह सकता है कि मेरी ट्रक में एक घन मीटर कंकरीट है या डेढ़ घन मीटर? मामला आकर अटकता है खेप पर। हमारा काम आँका जाता है खेपों की गिनती से, और तुम्हारा कंकरीट के घन मीटरों से। खेपों की गिनती के घटने-बढ़ने से तुम्हारे लिए कोई अन्तर नहीं पड़ता। फिर दो को चार कर देने के इस काम से छुटकारा किसी तरह नहीं। लोगों की आदत पड़ गई है। यह है कि ऐसी ज़्यादती भी न करो कि बात आँख में तिनके की तरह खटकने लगे। लेकिन यह काम तुम बिल्कुल करो ही नहीं, यह भी ठीक नहीं। बस, मैं तो यही और इतना ही कह सकता हूँ तुमसे! जहाँ तक मेरा सवाल है, मेरी खेपें इस तरह बढ़ाने की तुम्हें कोई ज़रूरत नहीं। मैं इसके बिना भी अपना काम चला सकता हूँ और बिना किसी तरह की रू-रियायत के भी मैं जितना कर लूँगा, उतना मेरे लिए काफ़ी होगा।"

लेकिन, इस सलाह पर चलने से बात कुछ बनी नहीं। मैंने एक निशान कभी यहाँ बढ़ा दिया तो एक निशान कभी वहाँ। नतीजा यह हुआ कि लोगों के मुँह फैलते गये और उनकी माँगें बढ़ती गयीं कि इस बार दो और बढ़ा दो और इस बार कृपया तीन और जोड़ दो। मैं बिल्कुल परेशान हो उठा और मेरी समझ में न आया कि करूँ तो आख़िर करूँ क्या? जब एक बार शुरू ही कर दिया तो सिलसिला चल निकला... फिर तो यह कि मैंने इससे हाथ खींचा तो मैं उनके लिए जहर हो उठा, और मैंने फिर झूठमूठ जोड़ना शुरू कर दिया तो उनसे बड़ा मेरा कोई दोस्त ही न रहा। वे मीठी-मीठी बातें करने और फुसलाने लगे—"कृपया एक और जोड़ दो... ज़्यादा नही, बस एक और!"

और, शिफ़्ट के खात्मे पर जब मैंने मोसकालेंको के सामने क़ागज़ रखा तो उसकी आँखों से आँखें मिलाने का हिआव मेरा न हुआ। मैं सोचने लगा—"यह क्या है? या तो मैं बहुत कमज़ोर हूँ या मेरा दिल 'कोमल' है। आख़िर मामला क्या है?"

अबाबील का घोंसला—

मेरे क्रेन-ऑपरेटर का नाम साशा गुर्जी है। आदमी बहुत खुशमिजाज और मीठे स्वभाव का है। वही तो पहले दिन अपने केबिन से मेरी ओर देखकर मुस्कराता, मेरे हर क़दम पर निगाह रखता और मुझे रह-रहकर सावधान करता रहा था कि यह नौसिखिया लड़का कहीं टब के नीचे न आ जाये। सो, खाने की छुट्टी में वह मेरे पास आया। उसने कँटिया परखी, टब ठोंकठाँक कर देखा और स्नेह भरे ढंग से मेरी ओर

देखकर मुस्कराया—"तो काम समझ में आ गया तुम्हारी? मुझे तो तुम्हारी वजह से अक्सर परेशानी होती है। और, यह बतलाओ कि इन ट्रकों के एक-एक कंकड़ को साफ़ करने की फ़िक्र तुम क्यों करते हो? तुम्हें काम चलाना है! और बस! अगर ट्रकों की क़तार की क़तार सामने खड़ी हो तो यह सफ़ाई का काम बिल्कुल न किया करो और उन्हें उसी तरह जाने दिया करो। सफ़ाई के काम का भी वक़्त आयेगा। थोड़ा समय गुजर जाने दो और चीज़ों में आसानी पैदा हो जाने दो। समझ गये न? आओ, चाय पिओ मेरे साथ!"

उसका सहायक उम्र से सयाना है। खोपड़ी लगभग गंजी है। दो-चार ललछरे से बाल जहाँ-तहाँ नज़र आते हैं। येफ़्रेमिच कहलाता है। वैसे यह उसका पितृनाम है, पर लोग उसे इसी नाम से पुकारते हैं। उसे अपनी नपी-तुली ज़िन्दगी पर बड़ा नाज़ है। साथ ही खाने के समय अखबार पढ़ने और राजनीतिक मामलों पर बातें करने का खासा शौक़ है। साशा अपने केबिन में बैठकर मुस्करा-मुस्कराकर एक पर एक लीवर खींचता-दबाता रहता है तो येफ़्रेमिच पूरे के पूरे क्रेन का चक्कर लगाता-फिरता है। यहाँ तेल दे देता है तो वहाँ ठोंक-ठांक कर देता है। इसके बाद वह ढाँचा-पुल पर जाता है और कोई बोल्टू या तार का टुकड़ा उठाकर अपने केबिन की ओर क़दम बढ़ाता है। उसका केबिन क्रेन के पास है और केबिन क्या है, अच्छा-खासा गोदाम है।

दूसरे क्रेनों पर 'मकड़ों' यानी बोझ उठाने वाले, पक्के लोहे के खास फ़न्दों की अक्सर कमी रहती है। पर, येफ़्रेमिच के केबिन के नीचे इन फ़न्दों के गुच्छों के गुच्छे ऐसे टँगे रहते हैं, जैसे कि किसी किफ़ायतसार किसान के घर के बाहरवाले ओसारे में घोड़े का साज। वैसे इन्हें गायब करना आसान नहीं, क्योंकि ऊपर यह लटके रहते हैं। तो नीचे एक भयानक सी खाई मुँह फाड़े रहती है। येफ़्रेमिच खुद ही जब-तब इन्हें निकालता है, पर कैसे, यह उसके सिवाय और कोई नहीं जानता। निकालता भी है तो तब जब कोई माँगनेवाला आता है, ज़रा मुश्किल से मिलने वाला लुब्रिकेटिंग तेल या बोल्टू आदि बदले में लाता है और येफ़्रेमिच से जी भर गालियाँ अलग से खाता है।

येफ़्रेमिच बड़ा-भारी दार्शनिक है। एक बार मैं टब की पेंग का अन्दाजा लगाने में चूक गया और उसे बीच में ही रोक लेने की हड़बड़ी में फिसला और गिर पड़ा। इसपर येफ़्रेमिच नीचे उतरा, मेरे पास आया, मुझे एक किनारे ले गया और भरी ट्रकों की क़तार और खाली टब की ज़रा भी परवाह न कर आराम से बोला—"तुम्हारा क्या ख़्याल है, बतलाओ, यहाँ खड़ी इस ट्रक में सब से महत्व की चीज़ कौन-सी है, क्यों म्याँ?"

"मशीन," मैं गड़बड़ाया।

"ठीक... बहुत ठीक... इसके बाद?"

"पहिये!"

"आदमी तेज़ हो! सचमुच पहिए! पर कोई मौत का मारा सुअर का बच्चा सड़क

पर दौड़ता चला आये तो काम की चीज़ कौन-सी साबित होगी?"

"ब्रेक!" मैंने ज़रा ज़ोर से कहा और बेसब्री से टब पर निगाह डाली। मेरी समझ में न आया कि वह आख़िर कहना क्या चाहता है।

"तो, ठीक, बहुत ठीक! हड़बड़ाओ नहीं! अब यह बतलाओ कि ब्रेक हमेशा एक तरह से काम करते हैं—वे चूकते कभी नहीं?"

"नहीं, हमेशा एक तरह से काम नहीं करते—चूक भी सकते हैं।"

"यानी, कभी-कभी वे बेकार भी साबित हो सकते हैं, है न?"

"हाँ, हो सकते हैं।"

"बहुत ठीक..... अब बतलाओ कि तुम्हारा क्या ख़्याल है, हमारे इस क्रेन में भी ब्रेक होते हैं या नहीं?"

आख़िरकार बात समझ में आयी—"मैं तुम्हारा मतलब समझ गया।"

"बहुत अच्छे लड़के हो! तेज लोग मुझे पसन्द आते हैं। मेरी बात पर विचार करना और यह भी याद रखना कि टब का वजन तीन टन होता है। इसके बाद जो मैं कहना चाहता हूँ वह तुम्हारे सामने आईने की तरह साफ़ हो उठेगा। खैर, म्याँ, चाय का दावतनामा अब भी खुला हुआ है।"

और, छूटी हुई तार की गेंडुरी घसीटता वह धीरे-धीरे अपने केबिन की ओर चल दिया। हमारी सारी बातचीत के बीच साशा बैठा शान्त भाव से मुस्कराता रहा। अब तक अपने सहायक से वह कोई अपरिचित थोड़े ही रहा था!

सो, मैंने दावतनामे से फ़ायदा उठाने की सोची और उस दिन खाने की छुट्टी में क्रेन-ऑपरेटर के केबिन की मंजिल तय करनी शुरू की। अगर ढाँचापुल से नीचे देखने पर आपका सिर चक्कर खाने लगता, तो यहाँ से तो इन घनघोर ऊँचाई का अनुमान लगाना भी आपके लिए मुश्किल हो जाता। मैं रेंगता हुआ सा लोहे की सीढ़ियों पर चढ़ा और बीच-बीच में लोहे की आड़ों पर ठिठक-ठिठक कर दम लेता रहा। हवा मेरे कानों में सनसनाती रही और पैर फिसलने के डर से नीचे देखने की हिम्मत मेरी न हुई। सीढ़ी आग लगने पर बचाव के साधन सी कमज़ोर लगी और हवा की तेजी से गले में काँटे पड़ने लगे।

साशा का केबिन बिल्कुल सिरे पर था। वह अबाबील के घोंसले की तरह एक अतल खाई के ऊपर लटका हुआ था। हवा और धूप तो जैसे वहाँ भरी रहती थी। बैठने की गद्दी गुदगुदी और घूमनेवाली थी। पास ही तरह-तरह के लीवर और कितने पुर्जे थे। टाँड़ पर सफ़ेद कपड़ा बिछा हुआ और उस पर 'मोस्कविच' रेडियो-सेट रखा हुआ था। बिजली के स्टोवों की पलटन की पलटन जमा थी और बिजली के हीटर पर रखी एक चायदानी में चाय खुदबुद-खुदबुद कर रही थी।

येफ़्रेमिच के चाय पेश करने के ठाठ देखते ही बने। उसने एक आलमारी से कठरे की शक्ल के तीन फूलदार प्याले निकाले, उनके सेट की तश्तरियाँ निकालीं, एक

तश्तरी पर थोड़ा सा मक्खन रखा, किशमिशवाली रोटी का एक टुकड़ा निकाला, ऊँचे वोल्टेज के ट्रांसफॉर्मर को अखबार से ढककर मेज बनाई, इसपर चाय का सेट कायदे से सजाया और ऐलान किया–"चाय तैयार है!" खास मेहमान मानकर मुझे गद्दीदार जगह दी गयी।

"कुछ गाना-वाना भी रहेगा?"

"क्यों नहीं?"

"हमारी यह जगह 'बैकाल' रेस्तराँ से किसी मानी में उन्नीस नहीं–ताजी हवा और खूबसूरत नजारा ऊपर से!" साशा ने रेडियो खोलते हुए कहा, "वैसे तो यह रेडियो क्या है, कूड़ा-कबाड़ है, पर प्रोग्राम इससे कहीं का भी सुना जा सकता है, और, इसका कारण है। कारण यह है कि हमारा एरियल लगभग चाँद तक जाता है। यहाँ तो जैसे हम अन्तरिक्ष में रहते हैं। येफ़्रेमिच, तो क्या सुना जायेगा, भारत या योरोप?"

मेरी समझ में न आया कि चाय पिऊँ या केबिन के बाहर का दृश्य देखूँ। बहुत नीचे नज़र आया मैदान और जंगल का अनन्त विस्तार, उसके ऊपर, पर केबिन से नीचे, दिखीं उड़ती हुई चिड़ियाँ और ज़मीन पर चींटियों से रेंगते लगे लोग। फिर, मेरे क्रेन के विषय में एक मामूली-सा सवाल करने भर की देर थी कि साशा ने पूरे ज़ोर-शोरसे लेक्चर देना शुरू कर दिया। उसने बड़ी उमंग से क्रेन के काम करने का तरीक़ा समझाया, ऊपर के डण्डे की हरकत का एक-एक कोण बतलाया और बोला–"मैं तुम्हें ऊपर के ध्वज के सिरे तक ले चलूँगा।" साशा को अपनी मशीन से बड़ा प्यार और उसपर बड़ा अभिमान था, अतएव मेरी दिलचस्पी से उसे बड़ी खुशी हुई और उसका मन जैसे खिल उठा।

मेरे वहाँ से चलने का समय हुआ तो मैंने हिम्मत कर साशा से भी वही सवाल किया, जो पहले गेना से किया था–"सुनो, मेरी समझ में नहीं आता कि मैं ड्राइवरों की खेपों की गिनती झूठमूठ क्योंकर बढ़ा दिया करूँ? मेरी जगह जो लोग पहले काम कर चुके है, वे यह मामला कैसे निबटाते थे? थोड़ी मदद करो मेरी।"

साशा विचारों में डूबा सा मुस्कराने और रेलिंगों पर उँगलियाँ पटपटाने लगा–"तोल्या, सचमुच तुम बहुत भोले-भाले लड़के हो। इन बातों पर आम तौर पर बहस नहीं की जाती। यह सब हर जगह चलता है, और हर जगह की तरह यहाँ भी लोग खींच-खाँचकर, ऊपर से, जैसे-तैसे सौ-दो-सौ बना लेते हैं। नहीं, लेकिन, जहाँ तक हमारा सवाल है, हम इसके लिए तुमपर निर्भर नहीं। वैसे यह है कि खाने की छुट्टी में ढाँचों के एक-दो पैकेट हाथ लग जाते हैं तो हमारा कायदे का जेब-खर्च निकल आता है, और क्या!"

"यह तो ओवरटाइम का बोनस समझो! इसी तरह खरीदा गया है यह रेडियो-सेट!" येफ़्रेमिच ने अर्थ भरे स्वर में कहा।

"लेकिन, येफ़्रेमिच, कहो चाहे जो कुछ, बात तो यह गलत है... है कि नहीं?"

मैंने कहा।

"तुममें और मुझमें यानी हममें अभी तक साम्यवादी चेतना नहीं आई है," येफ़्रेमिच बोला, "यह हथकण्डे बरबादी की जड़ हैं, और ऊँचे विचारों वाले आदमी का दिल कीड़े की तरह छलनी कर डालते है। मैं तो कहता हूँ कि अगर फ़रिश्ते भी यहाँ काम करने आयें तो वे भी यही करेंगे। आदमी स्वभाव से पैसे का लोभी होता है—ईमानदारी से कमाया जाये तो और बेईमानी से मिले तो, आख़िर को पैसा—पैसा है।"

"शायद तुम्हारी बात अपनी जगह ठीक है, पर ऐसे में मुझे क्या करना चाहिए, यह बतलाओ, येफ़्रेमिच!"

"लोगों से कहो कि ऐसी-तैसी में जायें!"

इसपर साश ने ज़ोर का ठहाका लगाया। मैंने बेताबी से हाथ हिलाया और नीचे उतर चला। मन ने संकल्प कर लिया। उस दिन मैंने एक भी खेप ऊपर से नहीं जोड़ी। 'सोने के दाँतोंवाले ठग' ने मेरी ओर इस तरह देखा जैसे कि मुझे निगल डालेगा। ट्रक नम्बर 00-77 के उदास ड्राइवर का मुँह और लटक गया। दूसरे दिन मुझे अपना काम आसान लगा और अनुभव हुआ कि मुसीबत खत्म हो गयी। पर, उस दिन ट्रकें कुल सत्तर ही आईं। अगले दिन उनकी गिनती घटकर साठ हो गयी और फिर चालीस ही रह गयी।

ड्राइवरों ने हाथ मार दिया! यानी हमारे क्रेन पर काम करने के लिए भेजे जाने पर भी वे दो-एक खेपें कर अपना चेहरा भर दिखला जाते। बाकी ट्रकें वे ऐसे दूसरे विभागों में ले जाते, जहाँ उनकी निश्चित खेपों में कुछ खेपें ऊपर से जोड़ दी जातीं।

होते-होते हमारी टीम में कंकरीट का तोड़ा पड़ने लगा, और इसका सही कारण मेरे और क्रेन-ऑपरेटरों के अलावा और कोई न समझ सका। दूसरे विभागों में ट्रकोंकी क़तार की क़तार खड़ी इन्तज़ार करती रहती।

पर, गेना सदा की तरह अब भी मुस्कराता हुआ आता और मुस्कान से बिजली सी कौंध उठती। एक दिन बोला—"लोग कहते हैं कि तुम हत्थे नहीं चढ़ते। ठीक है। पर, अजब मसखरे आदमी हो, इससे मुसीबत में तो अपनी टीम पड़ेगी। तुमने सोचा है कि आख़िर तुम अपना काम क्या दिखलाओगे? नहीं, खेपें तो ऊपर से जोड़नी ही चाहिए, पर यों ही मुफ़्त में नहीं। तुम समझते हो, अगर तुम किसी का भला करोगे, तो वह तुम्हारे लिए जान देने को तैयार रहेगा—वह तुम्हें बड़े से बड़ा अफ़सर समझेगा, घर पहुँचायेगा और सुबह घर से यहाँ ले आयेगा। यही नहीं, तुम्हें बालन के लिए लकड़ी की ज़रूरत पड़ेगी तो वह तुम्हें लकड़ी ला देगा, और पेट्रोल की ज़रूरत पड़ेगी तो पेट्रोल मुहैय्या कर देगा। मौका है, मौके से फ़ायदा उठाओ, बैठे-बैठाये बेकार को दुश्मन क्यों खड़े करते हो?"

हाँ, गेना ने ठीक ही कहा। मैंने पहले दुश्मन बनाये और टीम को बहुत नुकसान

पहुँचाया... पर नहीं, बात मेरे गले के नीचे नहीं उतरती...

दो हाथों के अनगिनत हाथ--

टब के वापस आने पर उसे बन्द करना भी मेरा कर्तव्य था पर यह काम काफ़ी मुश्किल होता है, क्योंकि टब खतरनाक ढंग से लहराता हुआ नीचे आता है। इसके तले में दो पल्ले होते हैं, और लीवर दबाते ही दोनों बन्द हो जाते हैं। सो, पहले दिन तो यह काम मेरी ओर से निकोलाई ने कर दिया पर दूसरे दिन मुझे सौंप दिया। 'आदेश' देते हुए बोला—"काफ़ी समय इधर-उधर कर चुके... अब तुम जानते हो कि कौनसी चीज़ क्या होती है!"

लेकिन, बाद में एक दिन एक ऐसी घटना घटी कि उसकी याद से आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

उस दिन कंकरीट सिर्फ़ हमारे ब्लॉक में गिराई जा रही थी और सारी ट्रकें चाहे-अनचाहे आकर मेरे आसपास जमा हो रही थीं। काम इतना था कि आदमी का दिमाग़ खराब हो जाये—बिल्कुल पहले दिन की तरह! मैं दौड़कर लीवर के पास जाता, टब के पल्ले बन्द करने के लिए पूरी ताक़त लगाया, ट्रक-ड्राइवर की ओर देखकर चिल्लाता—"आगे बढ़ाओ," और फिर क्रेन-ऑपरेटर की ओर देखकर चीखता—"उठाओ... ओ... हो!" यानी इस तरह मैं अपने को इतना महत्वपूर्ण समझता कि मेरा मन गाने को होने लगता...

मैं नहीं कह सकता कि यह हुआ तो हुआ कैसे, पर यह सच है कि इस दौड़धूप और आपाधापी में एक बार लीवर दबाने का ख़्याल ही न रहा। क्रेन ने झटका दिया और टब ढाँचा-पुल से ऊपर उठा कि... अचानक ही उसके नीचेवाले पल्ले खुल गये। फिर क्या था, पहाड़ सा भरभराकर धरती पर टूट पड़ा और कंकरीट की ऐसी धुआँधार वर्षा हुई कि ढाँचा-पुल कराह उठा। सौभाग्य से आसपास कोई था नही। येफ़्रेमिच के 'दार्शनिक प्रवचन' के बाद मैं सदा ध्यान रखता था और क्रेन के टब को ऊपर उठाते ही छिटककर दूर खड़ा हो जाता था।

साशा ने झटके देकर, हिला-डुलाकर टब खाली किया और फिर उसे कंकरीट के पहाड़ के पास ही गिरा दिया।

मैं हक्का-बक्का सा आँखें फाड़े देखता रहा। फ़ोरमैन दौड़ते हुए आये। कोई आपे से बाहर होकर बुरा-भला कहने लगा तो कोई मुझे कुछ समझाने की कोशिश करने लगा।

मुझे ख़्याल आया—अब तक काम कैसे शानदार ढंग से चल रहा था! पर, सहसा ही हर चीज़ ठप हो गयी और सो भी केवल मेरे कारण ठप हो गयी!

ट्रकें जैसे मुझे धिक्कारने लगीं। हर आदमी मुझे यह समझाने की कोशिश करने

लगा कि टब के पल्ले हमेशा ही बन्द कर देने चाहिए। जैसे कि यह बात वे न बतलाते तो मुझे मालूम ही न होती!...

कंकरीट आधी सड़क घेरे रही, पर बाकी आधा हिस्सा खाली रहा। मैंने क़िस्मत का मारा लीवर दबाया और कंकरीट के पहाड़ को जहाँ का तहाँ छोड़ काम चालू रखने का निश्यच किया। माथे पर पसीने की बूँदें झलक आई–"अगर कंकरीट ने ज़मीन पकड़ ली तो टीम की टीम को हथौड़े लेकर जुटना पड़ेगा, और तब कहीं इसकी सफ़ाई हो पायेगी। उस हालत में भला मेरा क्या होगा?"

"आगे बढ़ाओ... अगली ट्रक! ऊपर ले जाओ!" दो ट्रकें आगे आईं। क्रेन एक झटके में टब को खींच ले गया। यह अच्छा रहा। काम फिर शुरू हो गया। मैंने सोचा–"जब तक ट्रकें कंकरीट टब में उड़ेलें-उड़ेलें तब तक मैं फावड़े से यह पहाड़ टालूँ।" परन्तु, दो-एक बार फावड़ा चलाते ही यह बात आईने की तरह साफ हो गयी कि इस काम के लिए तो मुझे दो दिन चाहिए। मन चाहा कि कंकरीट के अम्बार पर ढह पड़ूँ, जी भरकर रोऊँ और इसी में गढ़ जाऊँ। मगर काम सामने था और काम होना था। रोने-गाने से क्या होता!

मैं कोई एक घण्टे तक फावड़े चलाता रहा कि पसीने-पसीने हो गया, और मुझे दिन में सितारे नज़र आने लगे।

यह समझिये कि कंकरीट सीसे सी भारी लगती और फावड़ा-फावड़ा कर दस बार साफ़ करने के बाद मैं रुकता और दम लेता। इस बीच ट्रकें आती रहीं और उनका जैसे ताँता सा बँध गया। सहसा ही मेरे फावड़े की बग़ल में किसी दूसरे के फावड़े ने अम्बार में अपनी नोक गड़ाई। मैंने मुड़कर देखा तो तोन्या नज़र आई! तोन्या, वही बाज की सी भौंहोंवाली तोन्या! मैं अचरज में पड़ गया–"आख़िर यह यहाँ कहाँ से फट पड़ी? शायद इसने मेरा संकट देखा और मेरा हाथ बँटाने के लिए यहाँ आ गयी!" वैसे न तो वह परेशान नज़र आई और न उसने मुँह खोला। अर्थ भरे ढंग से केवल मुस्कराती रही। मैंने भी कुछ नहीं कहा। ज़रा देर बाद दूसरी लड़कियाँ भी अपने-अपने फावड़े लिये आ पहुँची और हमारा हाथ बँटाने लगीं। बीच-बीच में वे इस तरह मामूली ढंग से एक दूसरे से इधर-उधर की बातें करतीं, जैसे कि यहाँ कोई खास बात ही न हो, जैसे कि मैं बिल्कुल वहाँ होऊँ ही नहीं, और जैसे कि वे खास अपना, हर रोज का, आम काम कर रही हों।

"मेरे रास्ते से हटो न..... मैं कहती हूँ, हटोगे कि नहीं?"

"तुम दूसरी तरफ़ चली जाओ, दाश्का।"

"ओह, मेरी हुस्न की परियो!" गेना जिप्सी दौड़ता हुआ आया, और मेरे हाथ से फावड़ा छीनकर, ज़ोर से आवाज़ करते हुए, एक्सकवेटर यानी खनन-यंत्र की तरह उठा-उठाकर कंकरीट टब में उलटने लगा।

"हे, काली आँखोंवालियो, सुनती हो, ज़रा थोड़ा आगे बढ़ो! दो कामवाले हाथों को जगह दो!... तुम मुझे इस तरह घूर क्यों रही हो? आओ, आओगी मेरे साथ! केबिन

में चलो, चुम्मी दूँगा तुम्हें!"

"डण्डा खाने को पीठ खुजला रही मालूम होती है... क्यों रे जिप्सी के बच्चे?"

"लड़कियो, ऐसा नहीं, मैं तो मतलब से समझ-बूझकर कह रहा हूँ! अच्छा, यह बतलाओ कि तुम में से कौन मुझसे शादी करना चाहती है? ज़रा देखो, मैं कैसे ठाठ से काम करता हूँ!"

इस तरह हँसी-मज़ाक करते, चीखते-चिल्लाते, हँसते-हँसाते उन्होंने आधा पहाड़ साफ़ कर दिया। जहाँ तक मेरा सवाल है, पहले तो मैं मुँह बाये खड़ा रहा, पर फिर बेकार समय न गँवाने के ख़्याल से मैंने दूसरी ट्रक के काम में हाथ लगाया—"उठाओ... ओ... हो!"

वे लड़कियाँ, रीछ के बच्चों की तरह, सीढ़ी के ऊपरवाली संध की ओर बढ़ीं और टब के पहले ही ब्लॉक में पहुँचने के लिए हड़बड़ाई। आभार से मेरी आँखें भर आई। मुझे लगा—अब बात बन जायेगी... शायद अब डाँट-फटकार की भी नौबत न आयेगी!

इस बीच एक ट्रक बाकी न रही कि येफ़्रेमिच आया और जेब में हाथ डालकर खड़ा हो गया—"साशा! टब इधर लाओ... यहाँ... हाँ, यहाँ! और नीचा करो! ठीक... अब घुमाओ!"

मैं सधते टब को ठीक जगह कर देने के लिए लपका, पर येफ़्रेमिच ने बीच ही में रोक दिया—"कोई ज़रूरत नहीं... साशा ठीक कर लेगा... ज़रा सा दायें काटो!... अब घुमाओ!..."

मैं मुँह बाये सब कुछ घूरता रहा। टब जीती-जागती चीज़ की तरह अपने केबुलों पर नाचा और जैसे अपने उतरने के लिए अच्छी से अच्छी जगह खोजते हुए इधर-उधर नज़र दौड़ाने लगा। आख़िरकार, मुँह फैलाये, कंकरीट के पहाड़ की ऐन सीध में आ जमा।

"टेकनीक जादू कर सकती है.... तुम्हें सीखना चाहिए और अपना काम इस तरह करना चाहिए कि एक तरफ़ जहाँ उसमें मजा आये, वहीं दूसरी तरफ़ मेहनत अकारथ न जाये," येफ़्रेमिच अधिकार से बोला। इसके बाद उसने हाथ पर थूका, फावड़ा सम्हाला और कंकरीट के अम्बार पर टूट पड़ा। इसी समय दूसरा फावड़ा सम्हाले साशा आ पहुँचा। मैंने हाथ से एक किनारा कर दिया गया, और वे ऐसे ज़ोर-शोर से पहाड़ टालने के काम में जुटे कि मेरे देखते-देखते अम्बार हवा होने लगा। मैं देखता रहा, देखता रहा कि तरह-तरह की भावनाओं से मेरा हृदय भर उठा।

हँसते-हँसते वे तख़्ते इस तरह साफ़ करने लगे जैसे कि उन्हें चमका रहे हों।

"यह मामला है... बुरा कुछ नहीं... समझे न!" साशा बोला, "मैं तो सारे दिन इसी तरह खुशी-खुशी सफ़ाई करता रह सकता हूँ, और येफ़्रेमिच तुम?"

"मैं इसी तरह दिन भर गोश्त पर हाथ साफ़ करता रह सकता हूँ," येफ़्रेमिच ने ज़वाब दिया।

ग्लैडियेटर—कटघरे में—

मैं थक गया हूँ। थकान का बोझ दिमाग़ पर है। तबीयत बहुत गिरी हुई है। ऐसा ही तो प्रायः उस समय भी लगता है जब पानी बरसता रहता है, बरसता रहता है कि बूँद टूटने को ही नहीं आती। जहाँ भी रहूँ, जो भी करूँ एक ही बेहूदी बात सूझती है कि पड़ रहो, आराम करो। इससे भी बड़ी बात यह है कि गाँठ की रकम खत्म होती जा रही है। सिर्फ़ पन्द्रह रूबल बाकी बचे हैं और इनमें भी तीन रूबल का एक नोट फटा हुआ है। कोशिश कर इसकी जुड़ाई करनी पड़ेगी। तनख़्वाह का दिन अभी बहुत दूर है। इसीलिए कभी-कभी जब थकावट के कारण भूख मर जाती है, तो खाने-पीने की बात ही टाल जाता हूँ।

हो सकता है कि मोसकालेंको को कंकरीट के तोड़े का कारण हो गया हो। यों हो सकता है कि उसने सच ही कहा हो। जो भी हो, एक दिन मुझसे बोली—"यह ट्रकों का काम तो हम, ज़रा साँस लेने के ख़्याल से, पारी-पारी से करते हैं। बहुत हुआ, अब तुम ब्लॉक में कंकरीट बिछाने का खास काम शुरू करो।"

ओ हो!...... मुझे लगा कि आज तक मैंने जो काम किया है, वह तो जैसे ऐश रहा है—उसे 'दिमाग़ी-ऐयाशी' का नाम देना ही अधिक उचित होगा। इसलिए मैंने ट्रकों का यह धंधा छोड़ा और ब्लॉक का रास्ता लिया।

आपने कभी सोचा है कि कंकरीट-मास्टर का यह काम भला क्या बला होती है? ब्लॉक तख्तों से तैयार किये गये लम्बे-चौड़े बक्से को कहते हैं। इसके अन्दर साँचे की सलाखों का जाल-सा बिछा होता है। कंकरीट ऊपर से गिराई जाती है। कंकरीट बिछानेवाले, अधगीले, भूरे अम्बार के बीच घुटनों-घुटनों तक हिलते हुए, फावड़ों से कंकरीट इधर-उधर फैलाते और वाइब्रेटरों से पाटते हैं। हमारा काम होता है बक्से को ऊपर तक भर देना। वाइब्रेटर का वजन कोई 60 पौण्ड होता है। इसके अलावा कोई 60 पौण्ड का ही बोझ हमारे हर पैर पर होता है, और यह बोझ साधकर हम जैसे घसिटते चलते हैं। हमें पुराने रोमन सर्कस के कटघरों में बन्द 'ग्लैडियेटर' समझिए!

"माश्का, कंकरीट इधर-उधर फेंकना बन्द कर... बेवक़ूफ़... गधा... कंकरीट पाटती क्यों नहीं, भैंस कहीं की?"

"वाइब्रेटर टूट गया।"

"बिजली मिस्त्री! ओ बिजली मिस्त्री!.... आँखें फूट गयीं तुम्हारी!"

फ़ोटोग्राफ़र पेतका भी हमारी टीम में काम करता है। यह चीख-पुकार सुनते ही बिजली मिस्त्री के केबिन से तीर की तरह झपटता है, साँचे से, बन्दर की तरह, उतरता हुआ संकट के स्थान की ओर लपकता है, और मिचटियों और प्लाशों की सहायता से तार ठीक-ठाक करता है। ऐसे में उसके हाथों के नीचे से आग की चिनगारियाँ फूटती हैं।

वाइब्रेटर देखने में, मोटे ढंग से, खनक के न्यूमैटिक हैक से मिलता-जुलता है। केवक यह है कि काट करने वाले सिरे के हिस्से के बजाय इसमें भारी-भरकम सिलिण्डर होता है और इस सिलिण्डर के अन्दर मशीन होती है। बटन दबाते ही वाइब्रेटर काँपने लगता है, हाथों से फिसलने लगता है, और इसके बाद इसे केवल कसकर थामे और साधे रहना पड़ता है। काँपते हुए सिलिण्डर को कंकरीट में धँसाते ही सतह पर बुलबुले उठने लगते हैं और कंकरीट तैरने और गाढ़ी होने लगती है। इसी लिए इस क्रिया को 'कम्पन' कहते हैं और 'गाँठे' न छोड़ देने के ख़्याल से यह प्रक्रिया कंकरीट की हर परत के अम्बार के साथ दोहरानी पड़ती है। (वैसे यह 'गाँठें' रह जायें तो टेक्नीकल निरीक्षक बहुत लाल-पीले होते हैं।)

वाइब्रेटिंग सबसे मुश्किल और जिम्मेदारी का काम होता है। और हमेशा एक सा इस तरह रहता है कि आदमी ऊब और थक ऊपर से जाता है। इस काम के लिए खास ट्रेनिंग की ज़रूरत होती है। पर मैं स्कूल में भौतिकी पढ़ चुका था, कम्पन का सिद्धान्त जानता था, कंकरीट की रासायनिक प्रक्रियायें समझता था, और संकेत मात्र से चीज़ें ग्रहण कर सकता था, अतएव, काम की तड़ापड़ी के कारण, मुझे वाइब्रेटर तुरन्त ही सौंप दिया गया। लोग बोले—"पढ़े-लिखे आदमी हो... इसलिए बेवक़ूफ़ों की सी बातें बन्द करो और चालू हो जाओ।"

दो शिफ़्टें तो मैं सहार ले गया, पर तीसरी ने जैसे मेरी जान निकाल ली। हाथ ऐसे काँपने लगे जैसे कि लकवा मार गया हो। बेहूदे वाइब्रेटर के कारण बाजू कटकर गिरने-गिरने को हो गये। मैं कंकरीट के दलदल से वाइब्रेटर को बाहर खींचने के लिए किचकिचाता रहा कि टुकड़ी लीटर दाश्का आई और कमर पर हाथ रखकर पास ही खड़ी हो गयी। इसके बाद एक क्षण तक तो देखती रही, पर फिर ज़मीन पर थूकने के बाद चीखी—"तुम्हें भी मज़दूर कहते हैं... कामगार हो तुम... है न! जाओ उधर और आराम से टब खोलने का काम करो... जाने कहाँ के, इधर-उधर के..."

दाश्का को गाली-गलौज करनेवाले पसन्द नहीं, पर बात मन में आ जाये तो फिर मुँह से कहे बिना उसे कल भी नहीं! इसीलिए उसने एक दूसरा हल खोज लिया है और गालियाँ देने के बजाय "जाने कहाँ के, इधर-उधर के" जब-तब ही कहती रहती है।

यहाँ टब खेलना 'दिमाग़ी-ऐयाशी' का दूसरा काम है। इसमें जितनी ही अक़्ल की ज़रूरत होती है, उतनी ही होशियारी की। कटघरे के साँचे का ऊपरी हिस्सा तीन मंजिले मकान की छत के बराबर ऊँचा होता है। ऊपर हवा सर्राटे भरती है और नीचे इनी-गिनी सलाखें आदमी के बोझ से लच-लच जाती और हल्के-हल्के झनझनाती हैं।

सो, मैंने पैर तो साधे ही, हाथों से भी हिलती-डुलती सलाखें कसकर पकड़ लीं। मेरी समझ में न अया कि यहाँ आख़िर मैं तनकर खड़ा कैसे होऊँ, सीधा कैसे होऊँ!

लेकिन, इस बीच टब नीले आसमान के बीच झलका और फिर लहराता, कंकरीट

की बौछार करता, नीचे उतरने लगा।

"होशियार, लड़कियो!"

लड़कियाँ किनारे होकर ब्लॉक की दीवारों के सहारे खड़ी हो गयीं। साशा गुर्जी केबिन से मेरी ओर देखकर मुस्कराया और फिर उसने सावधानी से टब मेरी ओर बढ़ाया। मैंने हाथ से इशारा किया—"और नीचे...... थोड़ा और नीचे...... बस, अब रोक दो।"

मैं बन्दर की तरह रेंगता हुआ टब की ओर बढ़ा, और हाथ आगे करने लगा कि टब का सिरा पकड़ में आ जाये तो उसके सहारे सीधा हो जाऊँ। पर, टब के बच्चे ने स्थिर होने का ही नाम न लिया। वह इधर-उधर लहराता और पास आ-आकर पीछे हट जाता रहा। मैंने पूरा ज़ोर लगाया और उसे साधकर ठीक जगह खड़ा किया। अब पारी आई लीवर से अटके रस्से को साधने और उसे, तोप छोड़ने की तरह, झटकने की। सो, मैं रेंगता-रेंगता दूर आया, रस्से की पूरी गुंजाइश तक पीछे झुका, और झटके देने लगा—एक बार, और फिर एक बार!

कोई हरकत न हुई। मैं और क़ायदे से जमा, और फिर झटका दिया। कहना न होगा कि मैं पसीने-पसीने हो गया, मेरे पैर फिसलने लगे और घुटने काँपने लगे, पर कोई फ़ायदा, इस पर भी, न हुआ।

"और ताक़त से खींचो! जाने कहाँ के, इधर-उधर के!... आख़िर हम सारे दिन यों ही खड़े-खड़े तुम्हारा मुँह देखते रहेंगे क्या?"

मैंने अपनी बची-खुची ताक़त सहेजी। सोचा—"या तो मैं ढह पड़ूँगा या टब खुल जायेगा!" दुबारा खींचा। ऐसे धड़ाके की आवाज़ हुई, जैसे कि सचमुच तोप दग गयी हो। कंकरीट का पहाड़ ब्लॉक के अन्दर टूट आया। टब उछलकर ऊपर चला गया। सांचे की सलाखें जैसे नीचे बैठने लगीं। मैंने उन्हें दोनों हाथों से जकड़ा तो फुनगी पर बैठी गौरैया की तरह, मैं भी उनके साथ ही हिलने-डुलने लगा और डर के मारे जिन्दा से ज़्यादा मुर्दा हो रहा।

"ठीक! चलो!"

ऊपर निगाह की तो साशा गुर्जी के हाथ सिर के पीछे बँधे देखे—मतलब कि बहुत ठीक! फिर केबुल तने और टब ऊपर ही ऊपर उठता गया...... एक!..... ख़ैर, तो इस काम के मामले में मैं दूसरों से इक्कीस नहीं रहा तो उन्नीस भी रहीं रहा। मैंने माथे का पसीना पोंछा—इसका नाम है काम!

हाँ, इस तरह लोग ढाल रहे हैं कम्युनिज़्म का भविष्य और बना रहे हैं कम्युनिस्ट समाज, तोल्या!

यह लोग कौन?

मेरे मन में हर समय तरह-तरह के डर समाये रहते हैं और मैं थकान से चूर-चूर रहता हूँ। ऐसा कमज़ोर और असहाय यहाँ कोई और नहीं! बाकी लोग मुझसे कहीं अधिक स्वस्थ और मोटे-तगड़े हैं। काम वे यों करते हैं गोया सब्जियों का बागीचा खोद रहे हों, या लकड़ी काट रहे हों। कोई खास ज़ोर या मेहनत जैसे पड़ती ही नहीं। जब-तब ही आपस में हँसी-मजाक भी कर लेते हैं। और, यह लड़कियाँ... हाड़-मांस की इन साधारण लड़कियों को यदि मैं पहले से न जानता तो इस्पात में ढली मान लेता।

बाज की सी भौंहों वाली तोन्या—दुनिया में तोन्यायें दो हैं: एक जो मैदान में थिरकती और नाचती है, और दूसरी वह जो ब्लॉक में काम करती है। दूसरी तोन्या शान्त और तरीकेवाली है। वह हमेशा वाइब्रेटर का काम देखती है, और सदा जिम्मेदार से जिम्मेदार जगहों में रखी जाती है—कभी कोनों में, कभी दीवारों के नीचे, तो कभी साँचे के, दिमाग़ चकरा देने वाले, पेचीदे से पेचीदे स्थानों में। दाश्का तोन्या का बहुत ख़्याल रखती है, और उससे कभी कुछ भी कहती सुनती नहीं। पर, भाई, अगर मैं तोन्या होता, और मुझे वह काम करना पड़ता, तो मैं इस जगह को सलाम कर, कभी का यहाँ से रफ़ा-दफ़ा हो गया होता।

"कैसे चलाती हो तुम... जब देखो तब वाइब्रेटर... हर समय वाइब्रेटर ही साधे रहती हो?"

"वाइब्रेटर मेरी उँगली के इशारे पर नाचता है... मुझ पर कोई ज़ोर नहीं पड़ता... मैं तो सिर्फ़ संकेत दे देती हूँ... बाकी काम तो वह खुद ही करता है!"

"ठीक, मगर इसे कंकरीट से बाहर खींचते समय?..."

"थोड़ी मुश्किल होती है तो क्या हुआ? मजे की कसरत हो जाती है... देखो, तुम इसे मेरी तरह साधना सीखो। जानते हो, यह वाइब्रेटर जीता-जागता है, इसमें प्राण है, और यह अपने मन का राजा है। चलो, जब तक टब आये तब तक ज़रा कोशिश तो करो।"

तोन्या सारी लड़कियों में अलबेली है—दुबला-पतला शरीर और अपनी अलग की एक शान—हाँ, रीछों जैसे ओवरऑलों और रबड़ के जूतों में भी शानदार लगती है। मैं नहीं जानता कि वह कैसे, क्या करती है, पर ढीले-ढाले ओवरऑल पहिनने पर भी बर्च की तरह बदन की छरहरी और कद की लमछरी लगती रही है। ओवरऑल उस पर ऐसे जमते हैं कि बस! हमेशा कलाई पर 'पोबेदा' घड़ी लगी रहती है। लड़की दूसरों से ज़्यादा साफ नज़र आती है, और हाथ भी उतने मैले और गन्दे नहीं रहते।

चेहरा लाली में डूबा रहता है, और बालों की दो-चार लटें रूमाल के नीचे से इधर-उधर झाँकती रहती है कि जब-तब ही कटघरे के नीचे से सिर ऊपर कर आसमान

पर नज़र दौड़ाने लगती हैं। बस, हम दोनों की निगाहें मिल जाती हैं, और अपने साँचे पर जमे ही जमे मेरा मन करने लगता है कि ज़रा पीठ सीधी करूँ, और माथे पर झूलते बालों का लच्छा झटककर पीछे कर दूँ। वह गम्भीर, रहस्यभरे ढंग से एकटक मेरी ओर देखती है, और नज़रों ही नज़रों जैसे एक खास सवाल करती है। इसके बाद होठों पर स्नेहभरी मुस्कान की बिजली कौंध उठती है और वह फिर काम में खोज जाती है। इस तरह एक दूसरे को देखने का यह क्रम राज है और हमारे सिवाय इसे और कोई नहीं जानता। तोन्या को क्या पता कि उसकी यह निगाहें मेरी कितनी बड़ी मदद हैं!

वाल्या से रेदा-अविवाहित माँ है। नाक उठी हुई, चेहरे की हड्डियाँ उभरी हुई, और बदन गठीला—बड़ी ही प्यारी लड़की। उसके चेहरे पर उदासी तो कभी नज़र आती ही नहीं। न कभी खीझती-बिगड़ती है, और न ही किसी से कभी लड़ती-झगड़ती है। वह या तो तार के तानों-बानों के बीच, घोल से अपने बूट साने, कंकरीट के दलदल में हिली रहती है, या पूरी ताकत से वाइब्रेटर को कंकरीट के पहाड़ से बाहर खींचती रहती है। फिलहाल काम चाहे जो करे हर हालत में, हर वक्त खुशी से खिली चहकती दीखती है। एक बार बोली-

"लड़कियों, तुम्हें मालूम है, मेरे वोवा ने आज सुबह मुझसे क्या कहा?... कहने लगा-'माँ, सर्कस में जोकर ने वह जादू दिखलाया था न? सुनो, बड़ा हो जाऊँगा न, तो मैं भी जोकर बनूँगा...'"

वाल्या दिन भर जबान चलाती और जाने क्या क्या मतलब-बेमतलब की बकती रहती है, पर उसकी बातों से ऊबता कोई नहीं, और उसे बुरा-भला समझता कोई नहीं। उल्टे, लोगों को लगता है कि वाल्या न हो तो पूरा ब्लॉक खाली-खाली सा लगे।

आज कहने लगी—"अरे, लड़कियों, मैं तो तुम्हें बतलाना ही भूल गयी। हमारी दुकान में बड़े ही शानदार सिरके के खीरे आये हैं... खीरे क्या हैं, बस, पूछो मत! जल्दी जाकर ले आना, नहीं तो बिक जायेंगे... मैं खरीद लूँ तुम्हारे लिए?"

वाल्या को गाना पसन्द है, और उससे अच्छी आवाज़ टीम में और किसी की नहीं। कभी-कभी तो काम रोककर दम लेते समय, और कभी काम करते ही करते वह अपनी साफ आवाज़ में गाना शुरू कर देती है तो स्वर कानों में बजने लगते हैं। फिर दूसरे स्वर उन स्वरों का हाथ पकड़ लेते हैं, और गीत चलते जाते हैं। दूसरी ओर, क़तार बनाकर लड़कियाँ साथ-साथ वाइब्रेटर खींचती, एक दीवार से दूसरी दीवार की ओर बढ़ती जाती हैं।

ता स्या-रीछ का बच्चा—लड़की नाटी-छोटी, गोल-मटोल और सुन्दर है। वैसे भी बड़ी स्नेहमयी है। पर, उसके मजदूरों के से बड़े-बड़े लाल-लाल हाथ इतने बुरे लगते हैं कि उन पर नज़र पड़ते ही आँखों में दर्द होने लगता है। तास्या गुड़ी-मुड़ी रहती है तो गोल गेंद सी मालूम होती है। उस पर चेहरे पर रूमाल अलग से लपेटे रहती है कि कहीं खाल न छूट जाये। अभी-अभी स्क्रेपर ऑपरेटर से शादी की है।

सो, जब-तब ही मचान के सहारे दीवार पर चढ़ जाती है, अपने को बहुत व्यस्त जताती सी हाँफती है, आँख पर हथेली की आड़ कर बाँध पर नज़र दौड़ाती है, और अपने पति के स्क्रेपर की झलक पाना चाहती है। स्क्रेपर दिखलाई पड़ जाता है तो अंग-अंग खुशी से खिल उठता है, और वह फिर कंकरीट की दुनिया में वापस आ जाती है।

कभी-कभी तो पूरी की पूरी टीम चीखना शुरू कर देती है—"तास्या, तास्या, ऊपर जाओ, ऊपर, तोल्या आया है।"

इसका मतलब यह कि स्क्रेपर उस ओर से गुज़रा कि उसके तोल्या ने अन्दर झाँककर उसे एक निगाह देखा। तोल्या के बाल भूरे और बदन इकहरा है। सिर से पैर तक ग्रीज से सना रहता है। पूरे बदन से लुब्रिकेटिंग ऑयल की बू आती रहती है। वह मीठे ढंग से मुस्कराता और सीढ़ियों पर इन्तज़ार करता है। तास्या भागकर उसके पास जा पहुँचती है, और एक दूसरे के हाथ हाथों में लिये, आँखों में आँखें डाले वे कुछ देर तक ज्यों के त्यों खड़े रहते हैं।

और, काम की हज़ार आपाधापी होने पर भी कोई कुछ बुरा-भला नहीं मानता। और तो और, भयानक और कर्कशा दाश्का तक इन तीन मिनटों के लिए उसे कुछ कहती-सुनती नहीं। होठों-होंठों बुदबुदाती है—"जाओ, जाओ... तुम यह, तुम वह, जाने कहाँ की... जाओ, अपने तोल्या को चूम आओ।"

और इस पर डाह से मेरे बदन में आग लग जाती है। तोल्या तो मैं भी हूँ पर वह नहीं!

कर्कशा दाश्का—हमारी टुकड़ी-लीडर स्वभाव की जितनी बुरी और जबान की जितनी तेज है, उतनी टीम की कोई दूसरी लड़की नहीं। देखने में मोटी-तगड़ी और ऐसी मजबूत है कि हाड़-मांस के बजाय इस्पात की बनी मालूम होती है। उम्र होगी यही कोई तीस। मुँह पर चित्तियाँ हैं, दाँत पीले हैं, कानों में झुमके लटकते हैं, और देखने में अनोमान गाँव की मालकिन लगती है। लेकिन इससे कुछ नहीं। ट्रेनिंगें उसने कई तरह की प्राप्त की हैं। पहले ट्रैक्टर चलाया है, फिर मास्को की पेस्वानाया सड़क की गृह निर्माण योजना के अन्तर्गत ईंटें बिछाई हैं, और इसके बाद स्तालिनग्राद के बिजलीघर में काम किया है। वैसे औरत क्या है, चुस्ती और फुर्ती का साकार अवतार है, और मेरी ज़िन्दगी के लिए जीती-जागती, चलती फिरती मुसीबत। एक पल साँस नहीं लेने देती। आज तक न तो मैंने उसके मुँह से स्नेह का एक बोल सुना है, और न ही उसकी निगाह में दया-मया की कोई झलक देखी है। कभी-कभी तो उसके लिए मेरे मन में नफरत तक उमड़ पड़ती है।

"तोल्या, तुम यह, तुम वह, जाने कहाँ के, उठाओ पेंसिल... यहाँ के इस विभाग का घनफल तो निकाल डालो... जल्दी करो, सुनाई पड़ता है कि नहीं! क्या लिखा पढ़ा है, भाड़ झोंका है तुमने स्कूल में?"

उसके मन में इस बात का बड़ा कीना मालूम होता है कि मैंने दस सालों तक स्कूल में लिखाई-पढ़ाई की है, और वह खुद कुछ नहीं कर सकी है। यों, हमारा उद्देश्य ज़्यादा से ज़्यादा घनफुट कंकरीट बिछा देना रहता है, इसलिए नाप जोख, हिसाब किताब और संख्या गिनती यहाँ हमेशा ही चलती रहती है। मैं अपना दिमाग़ भिड़ाता हूँ, और सारा ज्ञान लगा देता हूँ—ऊँचाई 6; rR^2...3,1416 गुणे...

दाश्का बेसब्री से प्रतीक्षा करती है और फिर हिसाब की जाँच करती है। अगर मेरी जल्दबाजी के कारण कहीं कोई गलती निकल आती है तो मुझ पर बरस पड़ती है और मास्टर, प्रोफ़ेसर, अकादमीशियन आदि जाने क्या क्या नाम दे डालती है। नाम प्रायः गलती के छोटे-बड़े होने पर निर्भर करते हैं।

निकोलाई—सिर के बाल ललछरे—हमारी टीम में मर्द इने-गिने हैं, और इस टुकड़ी में सिर्फ़ हम दो हैं—एक निकोलाई और दूसरा मैं। कहते हैं कि मोसकालेंको की टीम में काम करने की कोशिश कितने ही पुरुषों ने की; पर कुछ लोग यहाँ की गरमी से परेशान होकर भाग खड़े हुए तो कुछ को मोसकालेंको ने ठोकर मारकर निकाल बाहर किया। उसे लड़कियों के साथ काम करना ज़्यादा पसन्द है, और कुछ लड़कियाँ तो पिछले चार साल से उसकी टीम में हैं।

पर निकोलाई के मामले में मोसकालेंको सदा ही साँस खींच जाती है—पता नहीं क्यों! निकोलाई आदमी क्या है, सचमुच भूत है—आदमी, रूखा, भयावना, उदास और काहिल। कम से कम मुझे तो ऐसा ही लगता है। औरतों का जानी दुश्मन है। उसका कहना है कि उसकी पत्नी खुचुर निकालने और जान के पीछे पड़े रहने के सिवाय और कुछ नहीं करती। जहाँ तक, उसका अपना सवाल है, वह लड़कियों को जब भी बुलाता है, सिर्फ़ 'बैयरबानियों' के नाम से बुलाता है। लड़कियाँ ईंट का ज़वाब पत्थर से देती, उसे मुँह चिढ़ाती और उसका हींक भर मज़ाक बनाती हैं।

लड़कियों को उसे सताने और तंग करने का खास मौका मिलता है तब, जब वह थोड़ा-बहुत समय निकालकर कमर सीधी करने के लिए लेट रहता है।

वह करता क्या है कि मचान में कहीं न कहीं कोई संध खोज लेता है और फिर कीलोंवाले तख्ते लगा, क़ागज़ मढ़, टीन की पत्तियाँ लगा, अपना 'बसेरा' तैयार कर लेता है। फिर क्या है, मौका मिला नहीं कि वहाँ जा लेटा और वहाँ जाकर लेटा कि लड़कियों की बन आई।

"देखो, लड़कियो, निकोलाई मुर्गियोंवाले अपने दरबे में जा पहुँचा!" लड़कियों के ठहाके गूँजते हैं, 'निकालाई, कुड़क... कुड़क.... कुड़क!... तुमने अण्डा दिया है क्या, निकोलाई?... कुड़क... कुड़क.... कुड़क!"

निकोलाई इन सारे सवालों के ज़वाब में अपने 'मुर्ग़ियों के दरबे' से झाँककर देखने तक की तकलीफ़ गवारा नहीं करता। महज धुयें के बादल उड़ाता रहता है। हाँ, उसकी बैंगनी नाक ज़रूर दूर से झलकती है।

"टब आया... टब!"

निकोलाई में फौरन जान आ जाती है। वह तड़ से उठ खड़ा होता है, और आड़ के पीछे से अपने शिकार की ओर दौड़ती मकड़ी की तरह, बेकैयाँ-बेकैयाँ मचान के किनारे-किनारे रेंगने लगता है। छलाँग बस एक—और वह टब को पकड़ लेता, और एक जगह स्थिर खड़ा कर देता है—झटका बस एक—और, कंकरीट नीचे गिरने लगती है। और, निकोलाई वापस रेंगता नज़र आता, अपने 'मुर्गियों के दरबे' में फिर आ पहुँचता और बदन तोड़ने लगता है।

हम दोनों इस समय पड़ोसी हैं। अगल-बगल के ब्लॉकों में काम करते हैं। मैं उसे काफ़ी पास से देखता हूँ और उसमें कुछ न कुछ ऐसा है जिसके कारण ताज्जुब में पड़ा रहता हूँ मैं हड्डी-हड्डी खटाता हूँ, नीचे कभी नहीं आता-जाता और पूरी शिफ्ट धूप में भुनता रहता हूँ, लेकिन इस पर भी कंकरीट की मात्रा निकोलाई के ब्लॉक में ही अधिक नज़र आती है। सवाल उठता है कि आख़िर यह होता कैसे है?...

इस तरह दिन एक-एक कर बीतते जा रहे हैं। अब तक मैं अपनी इस गढ़ैया का पूरी तरह आदी हो चुका हूँ। पास ही फ़ोटोग्राफ़र पेतका का केबिन है, और प्यास लगने पर आदमी वहाँ जाकर अपना गला सींच सकता है। केबिन का अन्दर का हिस्सा अजब गोरखधन्धा है। हर ओर धातु के टुकड़े, तार, बल्ब और ऐम्परमीटर जैसी चीज़ें भरी और पड़ी नज़र आती हैं। पेतका इन सबको अपना माल-खजाना कहता है और इनके बीच प्यार से फुदकता रहता है। कभी वाइब्रेटरों की मरम्मत करता है तो कभी फ्लडलाइटों के स्विच दबाता है। बीच-बीच में एक-दो मिनट मिल जाते हैं तो कैमरे से दो-चार स्नैप मार देता है। उसका मन-भावना सपना है इस सारे निर्माण कार्य का फ़ोटो इतिवृत्त तैयार करना।

जख़ार जख़ारिच भी यहाँ अक्सर ही नज़र आता है। वह हमारे ब्लॉक में कंकड़ी पहुँचाता है, और अपने केबिन से हाथ हिलाकर अभिवादन किये बिना इधर से कभी नहीं गुजरता। कहना न होगा कि यह गढ़ैया हम सबका मिला-जुला घर है, और बड़ा घर है।

इर्कूत्स्क से दल के दल यात्री और स्कूली बच्चे निर्माण स्थल देखने के लिए बराबर ही आते रहते हैं। यहाँ की हर चीज़ से उनकी बुद्धि हैरान हो जाती है, और उनके मुँह फैल जाते हैं। वे क्रेनों को देखकर फेर में पड़ जाते, और ट्रकों को इधर-उधर भागते दौड़ते देख छिटककर पीछे हो जाते हैं। मैं उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता और शान्त भाव से अकड़ता हुआ बगल से गुजर जाता हूँ। वैसे जब इन सहमे हुए तमाशबीनों की भीड़ साँचा पुल से हमें काम करते देखती है तो काहिल निकोलाई तक अपने 'मुर्ग़ियों के दरबे' का नाम भूल जाता, और कुछ न कुछ करने लगता है। मैं और निकोलाई पूरी तरह सामने रहते, अपनी टीम का प्रतिनिधित्व करते और अपने-अपने मन में समझते रहते हैं कि महज ऊब के कारण गाइड बन जाने के लिए आगे आने

वाला फायरमैन इस समय हमारी टीम की चर्चा कर रहा और दर्शकों को समझा रहा है—"यह मोसकालेंको की टीम है। इसका काम यहाँ बाकी सारी टीमों से अच्छा रहता है। चुनौती का ध्वज इसी टीम के पास है।" ताज्जुब होता है कि यह फायरमैन यहाँ के जीवन के हर पक्ष से इतने परिचित हैं, और चीज़ों के बारे में इतना अधिक जानते हैं! सारी प्राविधिक प्रक्रियायें उनकी ज़बान की नोक पर रहती हैं।

सम्वाददाताओं से बड़ी छुतही-बीमारी और कोई नहीं! लगता है कि देश में एक भी समाचारपत्र ऐसा नहीं है जिसने अपना एक-न-एक सम्वाददाता यहाँ न भेजा हो। उस पर मजा यह कि हर सम्वाददाता अपने लेख के लिए अपने खास शहर के लोग यहाँ ढूँढ़ता है, और सो भी अच्छे से अच्छे कामगारों के बीच। यानी जैसे कि हम जानते हैं कि हमारे बीच सबसे अच्छे कामगार कौन हैं! यह बात भला हम कैसे बतला सकते हैं?

परसों मास्को के एक सम्वाददाता ने हमारी पूरी टीम की फ़ोटो ली। बोला—"ज़रा ठीक-ठाक हो लीजिए, और ब्लॉक में जहाँ-तहाँ अपनी-अपनी जगह जम जाइए।" नतीजा यह हुआ कि हमने आधे घण्टे तक टब हवा में साधे रखा और खुद तरह तरह के 'चलते-फिरते' पोजों में बने रहे। इसका मतलब यह कि हमने सुरक्षा के बारे क़ायदे कानून तोड़ डाले और ऐसे खड़े रहे जैसे कभी भी नहीं खड़े होते। सम्वाददाता ने अपने कैमरे का खटका कोई एक दर्जन बार खुट-खुट किया, और अपने आप पर खुशी से फूला न समाता वापस चला गया। रह गये बाकी हम। सो, अपने कटघरे में लौट आये।

"तुम यह, तुम वह..."

मेरी गाँठ की सारी रकम चुक गयी। सिर्फ़ बाकी बचा एक तीन रूबल का फटा हुआ नोट। सवाल सामने आया कि अब आख़िर काम कैसे चलेगा? मैं बहुत ही परेशान हो उठा और मेरी समझ में कहीं से यह न आया कि इस मुसीबत को काटने के लिए करूँ तो आख़िर करूँ क्या!

हर दिन खाने की छुट्टी में हम रूबल एक जगह जमा करते, और किसी न किसी को थोड़ी बहुत सैण्डविचें और क्वास ले आने के लिए रवाना कर देते हैं। हम खाते उतना नहीं जितना पीते हैं—कारण कि गरमी भयानक है।

सो, हर दिन की तरह आज भी दाश्का ने रकम जमा करनी शुरू की। फटा नोट देने में मुझे बड़ी शर्म आई और मैं दुम दबाकर कोने में खड़ा हो रहा।

"हे, तुम यह, तुम वह, इन्तज़ार किसका है, तुम्हारे लिए कोई खास दावतनामा कहीं से छपकर आयेगा क्या?" दाश्का बोली।

"आज भूख नहीं है मुझे," मैंने उत्तर दिया।

"हे, तुम!" वह बुदबुदाई और उसने ऐसी नफ़रत से भरी नज़र मेरे सिर से पैर

तक डाली, जैसे कि खा जायेगी मुझे! मेरा जी चाहा कि लपककर उसका दाग दगीला, तामलोट जैसा मुँह नोच लूँ। मन ने कहा—"नहीं, अनतोली, नहीं, भाई, गड़बड़ाओ नहीं, साधे रहो अपने को!"

हर आदमी छायादार जगह में जा जमा और लोग ज़ोर-ज़ोर से एक दूसरे से बातें करने लगे। केवल मैं कुछ देर तक बेमतलब इधर-उधर भटकता रहा। अन्त में सोचा—"क्यों न इस बीच सलाखें ही साफ कर डालूँ! आख़िर को बाद में तो करनी ही पड़ेंगी!"

गरमी के कारण पसीने की धारें बह चलीं और प्यास से गले में काँटे पड़ने लगे। फिर भी, मैं जहाँ का तहाँ का बना फावड़े से सलाखें खुरचता रहा, खुरचता रहा कि मैंने सहसा ही निकोलाई को बेकैयाँ-बेकैयाँ अपनी ओर आते देखा। लगा वह भद्दा, रीछ की तरह। बना वह इस तरह जैसे कि अपने किसी काम से जा रहा हो, पर मेरे मन में इस मामले में कोई भ्रम न रहा, और मुझे यह समझते देर न लगी कि वह सिर्फ़ मेरे पास आ रहा है। मेरी नसें तन गयीं।

"दे... देखो...ओ..." वह उदास स्वरों में बोला, "एक सिगरेट दे दो... है तुम्हारे पास?"

"मेरे पास एक भी सिगरेट नहीं," मैंने बुदबुदाते हुए उत्तर दिया। बात अपनी जगह सही थी।

"तुम झूठ बोल रहे हो," उसने शान्त भाव से कहा और अपनी जेब में हाथ डाला—"लो... यह लो..."

उसके हाथ में पच्चीस रूबल का एक नोट नज़र आया।

"मैं कहता हूँ, लो इसे... तनख्वाह मिले तो लौटा देना... ब...बीब...बीबी ने मुझे किरमिच खरीदने के लिए दिया है...लो, पकड़ो...सु....सु... सुनते हो कि नहीं!" वह धमकी देता हुआ सा गरजा। उसका चेहरा गुस्से से सँवरा उठा।

"और... और... तुम्हारी बीबी क्या कहेंगी तुम्हें? झगड़ा होगा।"

"करने दो झ...झ... झगड़ा उसे!"

मेरे मुँह से बोल न फूटा। दिमाग़ ज़वाब दे चला। नोट मेरी मुट्ठी में कसा रहा। निकोलाई जैसे आया था वैसे ही भद्दे ढंग से रेंगता हुआ लौट गया।

एक दो मिनट बाद एक तीखी आवाज़ कानों में पड़ी—जैसे कोई हुक्म दे रहा हो—"तोल्या, यहाँ आओ... तुम यह, तुम वह!..."

दुबारा दाश्का! हे भगवान, क्या मैंने कर दिया उसकी मर्जी के ख़िलाफ़?

"तोल्या!"

"हाँ, हाँ, आ रहा हूँ।"

"नीचे उतरकर आओ न, लाट साहब! शायद हुजूर चाहते हैं कि आप नीचे उतरकर न आयें, उल्टे मैं ऊपर हाजिर हो जाऊँ, क्यों? फौरन आओ नीचे, सुनाई पड़ा

कि नहीं?"

मैं एकदम कूद पड़ा। पैर मुलायम कंकरीट के गारे में धँस गये। जैसे-तैसे दाश्का के सामने पहुँचा तो वह मुझे तेज नज़रों से घूरने लगी, कोई चीज़ मेरे हाथ में जबरदस्ती थमाई और स्वर धीमे किये—"बुद्धू कहीं के, रख लो! लड़कियों ने मिलजुलकर जमा किये हैं। सौ रूबल हैं। तनख़्वाह मिलने तक काम चल जाना चाहिए। नहीं चलेगा तो हम लोग और जमा कर लेंगे।"

उसकी उजली आँखें अज़ीब ढंग से चमकने लगीं और दस-दस, तीन-तीन और एक-एक के चिपचिपहे नोट मेरी मुट्ठी में ठूँसने लगी। पर मुझे तो जैसे काठ मार गया। इस पर उसका चेहरा गुस्से से तमतमा उठा—"समझे न... समझे न... रोते, दूधपीते बच्चों की ज़रूरत यहाँ नहीं है। अरे, मर्दों, तुम!... तुम्हारे हथकण्डे एक नहीं चलेंगे, तुम यह, तुम वह, समझते हो न! 'मैं भूखा नहीं हूँ!' जी हाँ, सचमुच भला आप भूखे क्यों होंगे! ज़रा लाट साहब की बातें सुनिए!... जाओ, वहाँ जाओ, कुछ तुम्हारे लिए रख आये हैं हम लोग... वहाँ... खा लो। चलो, हटो, जल्दी करो... अरे, जल्दी करो न, नहीं तो छुट्टी का वक्त खत्म हो जायेगा। मेरी बात सुन ली? बहस की कोई गुंजाइश नहीं! चलो, जाओ यहाँ से!"

मेरे अचरज का ठिकाना न रहा, पर सदा की भाँति इस समय भी मैंने उसका आदेश माना, और उस खास जगह की ओर बढ़ा। लड़कियाँ सामने की दीवार पर बैठी हँसती और कहानियाँ कहती-सुनती रहीं कि उनमें से एक ने अख़बार निकाला, और ज़ोर-ज़ोर से पढ़ने लगी। किसी ने मेरी ओर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। निश्चित जगह मुझे एक बाल्टी में रखा मिला थोड़ा सा क्वास, एक खाली गिलास, और पनीर समेत दो रोल।

"नीलम के सागर में"—

जीवन की यह उत्ताल लहर मुझे किधर रेले जा रही है? मेरे पैर कहीं टिकेंगे भी या नहीं? क्या मैं जीवन भर मजदूर बना कंकरीट ही छिटकाता रहूँगा और वीक्तोर सप्लाई एजेण्ट बनकर गाँव में अपनी बँगलियाँ खड़ी कर लेगा? साइबेरिया नाम की इस जगह में मेरी तकदीर चमकेगी या रही-सही किस्मत भी फूट जायेगी? अभी तक तो कोई खास सुख सन्तोष यहाँ नज़र आया नहीं। मेरा मन डरता है कि हो न हो, बदकिस्मती ही हाथ आयेगी यहाँ...

बाँध लगभग पूरा हो चुका था। हम ऊपर के हिस्से पर आ बैठे थे। काम कोई था नहीं। दिन चढ़ता जा रहा था।

हमारी टीम इस समय तीसरी शिफ्ट करती थी, और काम हमारा आधी रात को शुरू होता था। पर यह तीसरी शिफ्ट क्या बला होती है, यह बहुत से लोग नहीं जानते। जो नहीं जानते, वे ठीक ही नहीं जानते और मैं अपने हृदय की पूरी ताकत से चाहता

हूँ कि वे कभी जानें भी नहीं। यानी सुबह के तीन बजते-बजते आँखें नींद से कडुवाने लगती हैं, हाथ-पैर मिले-जुले ऊनी-सूती कपड़े के बने मालूम होते हैं, पलकें अपने आप झपने लगती हैं और मन करने लगता है कि आदमी खड़े ही खड़े सो जाये। पता नहीं चलता कि हाथ से काम क्या सर रहा है, और सो भी क्यों? वैसे साइबेरियाई रातें ठण्डी होती है, और सुबह के समय पाला पड़ता है। ऐसे में काम के कारण बदन में गरमी बनी रहती है, पर शिफ्ट के खत्म होते-न-होते दाँत किटकिटाने लगते हैं।

आज सुबह हमने बाँध का बचा-बचाया काम निबटाने की सोची और लड़कियाँ ढाल हाथ से बराबर करने लगीं। यह बाँध पनबिजलीघरों की तस्वीरों के साथ हमेशा ही दिखलाया जाता है। तो, जी हाँ, यह ढाल लम्बी-चौड़ी, तिरछी दीवारों से होते हैं, जमे हुए झरनों से नज़र आते हैं और ऊपर से नीचे तक महज हाथों की मदद से बराबर किये जाते हैं। काम सीधा-सादा, हर आये दिन का है। दाश्का दीवार के पास अटके एक तख़्ते पर बैठ जाती है, गन्दले पानी की बाल्टी पास में रख लेती है, पानी के छींटे देती है, और कंकरीट पर छोटा सा पटरा इस तरह फिराती है, जैसे गाँव की कोई गृहिणी अपना स्टोव मिट्टी से लीपती है। इस काम के सिलसिले में नीचे नज़र जाते ही हड्डी-हड्डी काँप जाती है कि अगर पैर फिसले तो आदमी धड़धड़ाता सीधे चला जाये।

सो कंकरीट से सम्बन्धित कारखाना रेकार्ड कायम करने के फेर में रहा, इसीलिए शुरू में हमने पागलों की तरह काम किया। ढेर की ढेर ट्रकें, ख़ाली होने के लिए बराबर लदी खड़ी घरघराती रहीं। हम कमर-कमर तक कंकरीट के गारे में हिल रहे। न तो हमें कायदे से वाइब्रेटिंग के लिए समय मिला और न ढंग से कंकरीट बराबर करने के लिए। पर, इस तरह पूरे का पूरा बाँध देखते-देखते खड़ा हो गया। परन्तु पुराना रेकार्ड टूटे-टूटे कि कारखाने में कंकरीट का गारा तैयार करने वाला पुर्जा खुद ही टूट गया। नतीजा यह कि हमें हाथ पर हाथ रखकर बेकार बैठना और सर्दी में ठिठुरना पड़ा।

निकोलाई अपने 'मुर्गियों के दरबे' में जा लेटा तो एक दूसरे से सटी बैठी लड़कियाँ गाने लगीं—गीत की लय धीमी, अन्दाज़ में उदासी। स्वरों के ताने-बाने एक दूसरे में उलझते—कुछ स्वर ऊँचे हो जाते तो कुछ नीचे—

> नीलम के सागर में
> कोई जाता है जलयान...
> जाता है जलयान
> कि लहरें देतीं राह अजान!

गढ़ैया के सन्नाटे के कारण, गीत की स्वर-लहरी हवा की लहरियों की उँगलियाँ पकड़कर अवश्य ही पूरे के पूरे निर्माण-क्षेत्र में गूँज गयी होगी। फ्लडलाइटें साँय-साँय करने लगीं तो पतंगे उनके चारों ओर मँडराने लगे। मेरी बड़ी इच्छा हुई कि उनके

बावजूद किसी की गोद में सिर रखकर कहीं लेट रहूँ। मैंने पलकें बन्द कर लीं और कुछ नावें मेरी आँखों के आगे तैरने लगीं। फिर उजले मुकुट लगाये लहरें आईं और बाँध से टकरा-टकरा कर पानी की बौछार करने लगीं। यह रहा हमारा समुद्र, हमारा सागर! नावें—लाल पालोंवाली नावें आर-पार आने जाने लगीं। मेरा हृदय खुशी से उछलने-उछलने को हो गया!

वैसे तो इस खुशी का कोई विशेष कारण नहीं बतलाया जा सकता, पर इसपर भी इस उछाह के पीछे से झाँकी मात्र एक भावना कि क्या कहने हैं, साँस चलती है, हाथ-पैर स्वस्थ और मजबूत हैं, खून में सूरज की चिनगारियाँ हैं और आँखों के आगे उमड़ रहा यह समुद्र खुद मेरे इन हाथों ने सिरजा है!

आखें खुल गयीं। पतंगें फ्लड लाइटों के इर्द-गिर्द सरटि भरते रहे। लड़कियाँ एक दूसरे से और सटकर बैठी नज़र आईं। हाथ आस्तीनों के अन्दर छिपे दिखे। साँस दूधिया भाप में बदलती समझ पड़ी। कोई खोखली सी, धीमी-धीमी आवाज़ में कहानी कहता सुन पड़ा।

दास्तान ज़माने की (कलम मेरी)–

"बैकाल बूढ़ा था। उसके 336 बेटियाँ थीं। वह जितना ही भयानक था, उतना ही ताकतवर। सारी बेटियाँ उससे डरतीं, और उसके हुक्म पर अपना सारा पानी उसके पास ले आतीं।

सबसे बड़ी बेटी का नाम अंगारा था। बदन उसका नीलम का था। सुन्दरता में सबसे बढ़कर थी। साथ ही स्वाभिमानी भी थी, और बहादुर भी। दुनिया में इतनी हिम्मतवर लड़की कोई दूसरी न थी।

एक दिन समुद्री चिड़िया उससे बोलीं—'जानती हो, उत्तर में एक सूरमा रहता है। नाम है उसका येनिसेइ। जवान है और बदन और नाक-नक्शा तो जैसे साँचे में ढला है।

उसने तुम्हें सलाम भेजा है।'

उस दिन के बाद से अंगारा को फिर चैन कहाँ! हर रात को सुन्दर येनिसेई उसके सपनों में आता और दूर उत्तर के इलाके अपने साथ लाता। अंगारा अपने पिता से नफरत करती और उसके रोब-दाब पर चिढ़ती।

होते-होते अंगारा समुद्री चिड़ियों को येनिसेई के नाम सन्देश देने लगी कि येनिसेई मिन्नत करने लगा कि तुम खुद ही मेरे पास आ जाओ।

उधर बैकाल ने एकबएक एक दिन अपना फैसला सुनाया और कहा कि अंगारा की शादी इर्कूत से होगी।

इर्कूत सूरमाओं में सबसे अधिक गाँठ का पोढ़ा था, और बूढ़े बैकाल को तो जैसे

भा ही गया था। इर्कूत बहुत दूर रहता था—बहुत दूर, पहाड़ों के पार, पहाड़ियों और जंगलों के बीच। सो, उसने लम्बे सफर की तैयारी की और सज-बजकर चल पड़ा। कारवाँ रवाना हुआ राजसी ढंग से। मंजिल ठाठ-बाट से, धीरे-धीरे तय की गयी। राह में समय काफ़ी लगा। आख़िरकार बैकाल का मकान सिर्फ़ 40 मील दूर रह गया। इर्कूत ने रात बिताने के लिए एक ख़ास जगह डेरा डाला।

उस दिन अँधेरी रात के सिर पर तूफ़ान घहराता रहा। अंगारा येनिसेई के लिए कलपती, रोती और सिसकियाँ भरती अपने कमरे में बेचैनी से इधर-उधर चक्कर काटती रही। पर, उसकी फरियाद किसी ने नहीं सुनी।

अंगारा ने चट्टानों से सीना टकराया कि ख़ून की धार बह निकली।

प्यार ने मन साधा और तन में ताकत का जादू फूँका। अंगारा ने पिता का घर छोड़ा और ऊँचे से ऊँचे पहाड़ों की गर्दनें झुकाती और उन्हें ढहाती वहाँ से भाग खड़ी हुई।

पराक्रमी इर्कूत की नींद ढहती हुई चट्टानों ने तोड़ी। उसने आँखें खोलीं और अंगारा को रोकने के लिए दौड़ा। वह बैकाल के पास तेजी से मुड़ा और हड़बड़ाता हुआ आगे बढ़ा तो कितने ही पहाड़ चूर-चूर हो गये और कितने ही भरभराकर ज़मीन पर आ रहे। आज जहाँ इर्कूत्स्क स्थित है, ठीक वहीं उसे रूप की रानी अंगारा नज़र आई। पर, चिड़ियाँ खेत चुग गयीं, और हाथ आने के पहले ही अंगारा ने उत्तर का रास्ता काट लिया, और फिर अड़चनों-बाधाओं की कलाइयाँ मरोड़ती आगे ही आगे बढ़ती गयी।

बूढ़े बैकाल की नींद खुली तो वह झटके से उठकर पलँग पर बैठ गया। गुस्से के मारे आपे में न रहा, और एक लम्बा-चौड़ा पहाड़ खींचकर उसने बागी बेटी को मारा। पहाड़ अंगारा की शादीवाली फिरोजी नकाब पर पड़ा। पर, यहाँ पहाड़ों ने अंगारा की राह में पलकें बिछाई और उसे राह देने के लिए बीच से दो हो गये।

वह दिन है और आज का दिन है कि पिता का हुक्म मानने वाली 335 नदियाँ जो पानी बैकाल में लाती हैं, वह कुल का कुल एक अंगारा दूर बहा ले जाती है। यह उसका विद्रोह है। उदासी और दर्द का मारा इर्कूत अंगारा में अपने मन की पीर घोलता है। अंगारा के प्रवेश-द्वारों में आज भी वह पहाड़ जहाँ का तहाँ नज़र आता है, और कभी-कभी धारा जोश में आती है तो नावों की नावों को उठाकर पत्थर पर दे मारती है। जगह टेढ़ी है और लोग इसे 'शामान की चट्टान' के नाम से पुकारते हैं..."

मैं काँप गया और मेरे गले में जैसे कुछ अटक गया। पास के ब्लाक में गया, ठण्ड से ठिठुरी लकड़ी की धन्नी से पीठ टिकाकर खड़ा हो गया, और ऊषा के सौन्दर्य का सुख लेने लगा। मोसकालेंको के स्वरों की धीमी-धीमी गूँज यहाँ, इतनी दूर तक आती रही। उसके कण्ठ से उक्रइनी गीत फूटते रहे। वह है भी तो दनेप्र के किनारे की!

आसमान की आँखों में चमक, बिना किसी तरह के शोर-गुल के, घुलती गयी।

उजियाला छिटकता गया। पहले तो वह कुछ ठिठुरा और भूरा सा नज़र आया। फिर जहाँ-तहाँ बादलों में गुलाब खिले। इसके कुछ क्षणों बाद ही आग सी धधक उठी कि सारे का सारा आकाश लाल हो गया और दमकने लगा। मैंने नदी की ओर नज़र दौड़ाई तो वह शीशे सी झलाझल, साँप की तरह लहरें लेती लगी। मन बोला—"यह अंगारा है। उत्तर को झपटी चली जा रही है... नावें... नावों के लाल पाल... लाल पाल... कहाँ देखे हैं आख़िर मैंने यह लाल पाल?"

हम आख़िर क्यों जीते हैं?

कोई मेरे कानों में फुसफुसाया—"बच्चों, उठो... स्कूल जाने का समय हुआ... मुर्ग़े कुकड़ू-कूँ, कुकड़ू-कूँ कर रहे हैं... कैसी अच्छी फुहार पड़ रही है! उफ... कैसा मजा है!"

लगा कि लोग मेरे चेहरे पर बालू फेंक-फेंककर मार रहे हैं। मैंने जैसे-तैसे जबरन आँखें खोलीं। चेहरे ने धूप और साथ ही बरसाती छींटों की शिकायत की। मैं उछलकर खड़ा हो गया और आँखें चौंधियाने लगीं तो मैंने धन्नी का सहारा लेने की कोशिश की। इस पर तालियाँ बजने लगीं और हँसी के ठहाके गूँजने लगे। इस बीच धूप खूब तेज हो गयी और रात की सर्दी पर लगाकर उड़ गयी वाल्या और तोन्या होज-पाइप से बाँध धोती मिलीं। इसी समय वाल्या ने पानी की धार ऐन मेरे चेहरे पर चालू कर दी। लड़की क्या है, शैतान की आँत है!

"रोका... ए वाल्या! क्या कर रही हो?... अरे... अरे... रोको न!"

वह हँसते-हँसते निढाल होकर धरती पर ढह पड़ी—भला और क्या चाहिए! मेरा सारा ओवरआल ऊपर से नीचे तक तरबतर हो गया... अच्छा मजाक रहा!

वाल्या बोली—"ए काहिली के अवतारो, उठो... आठ बज रहे हैं... काम हो चुका, अब आराम कर सकते हो.... मैं अपने वोवका से कहूँगी—'आज तुम्हारी माँ सारी रात परी-देश की कहानियाँ सुनती रही...' जानती हो, लड़कियो, मेरे वोवका ने कल मुझसे क्या पूछा? पूछने लगा—'ममी, कम्युनिज़्म जल्दी आयेगा न?'"

"नहीं, वह यह सवाल नहीं कर सकता!"

"ईश्वर जानता है! वह सब कुछ समझता है!"

लड़कियों ने फावड़े धोये और जाने की तैयारी की। दाश्का ने होशियारी से मोमजामा गीली कंकरीट पर बिछाया। डर लगा कि कंकरीट कहीं चटख न जाये—अभी तो गरमी साधारण है, पर आशा है कि दिन में धूप काफ़ी तेज रहेगी।

मैंने कहा—"तोन्या, ज़रा होज की धार मेरी ओर तो करो।"

उसने होज-पाइप नीचा किया तो मैंने कमर तक कपड़े उतारे और धार के बीच हिल गया! पानी में ऐसी ताजगी का अनुभव हुआ कि आनन्द से साँस फूलने लगी।

छींटें इधर उधर उड़े। पानी मेरे शरीर से आ-आकर टकराता रहा, पर जी कि जैसे भरा ही नहीं। तोन्या के होंठों पर हल्की हल्की मुस्कान खेलती रही और वह धैर्य से इन्तज़ार करती रही।

"अच्छा लगा?"

"मजा आ गया! ऐसा लगता है जैसे कि नया जन्म हो गया हो। कमर-कमर तक नहाने के सुख का भला तुम्हें क्या अनुभव! बेचारी-बेचारी लड़कियों!"

"क्यों, बेचारी क्यों?"

"तोन्या!"

"क्यों, क्या बात है?"

"यह सच है... है न?"

वह विचारों में खो सी गयी और नीली आँखें मुझपर आ टिकीं। आवाज़ करता होज पाइप हाथों में कँपकँपाने लगा।

"हाँ!"

"तोन्या, कौन-सी चीज़ हमारी राह देख रही है, ज़रा बताओ तो!"

"भविष्य!"

"देखो, तोन्या, यही है, और शायद यही होना भी चाहिए, क्यों? शायद हम सब केवल भविष्य के तानेबाने हैं... और अगर भविष्य को उत्पादन की संज्ञा दे सके तो कहेंगे कि हम इस उत्पादन की लागत हैं... हम यह भविय गढ़ रहे हैं... कहो, ठीक है न?"

"मैं नहीं जानती... मुझे नहीं लगता कि बात ऐसी है।"

"अपने हाथों के लिए तुम्हारा मन दुखी नहीं रहता? देखने में भयानक लगते हैं।"

"रहता है मन दुखी। पर, तुम उनकी ओर मत देखो और बस!.. जाओ और ज़रा दाश्का की मदद कर दो। मोमजामे उसके लिए भारी पड़ रहे और साधे सध नहीं रहे हैं।"

मैं दाश्का के पास गया और मोमजामों के ऊपर रेंगते और बराबर करते हुए, उन्हें झटके दे-देकर खींचने लगा।

उफ, तोन्या, तुम्हें क्या पता कि ज़िन्दगी मुझे कितनी भारी पड़ रही और कैसे मेरे साधे नहीं सध रही!

वायलेट के फूल–

रूबल तनख़्वाह के दिन तक नहीं चले। बात यह हुई कि मेरी तरह मेरे लाज़वाब दोस्त लेओनीद की रकम भी चुक गयी, और वह मुझसे आकर उधार माँगने लगा। मैंने पास के रूबल ईमानदारी से आधे-आधे कर लिये। वह बोला–"खैर, तो चलो, म्याँ,

मछली मारी जाये। अपना तो यह है कि जब चट्टानों पर कदम आ ठहरता है यानी जब मामला खुश्क हो जाता है तो नदी की छोटी-बड़ी और चौरस सिरवाली मछली से काम चलाने लगते हैं।"

तो, एक दिन सुबह हम रवाना हुए और नदी के ऊपरी हिस्से की ओर, काफ़ी दूर तक चलते चले गये। पहाड़ी से झाँककर नीचे के पसारे पर नज़र दौड़ायी तो जैसे कि सारे के सारे शहर का नक्शा आँखों के आगे आ गया, और पूरे के पूरे निर्माण क्षेत्र की कल्पना सामने साकार हो गयी। आकाश-चुम्बी छहों क्रेन अपनी अपनी जगह दीख पड़े। मेरा क्रेन बायीं ओर एकदम सिरे पर चमका।

हम आगे ही आगे बढ़ते गये; और जितना ही आगे बढ़े जंगल उतना ही घना मिला, और पेड़ उतने हीलम्बे लगे। तरकारी-भाजी के खेत और क्यारियाँ पीछे रह गयीं। रास्ते गायब हो गये और हम पेड़ की सूखी, निचली डालों के बीच उग आयी झाड़ियों के बीच पैठे। डालें रह-रहकर मकरोनी* की तरह टूटने लगीं। धूल के बादल उमड़ने लगे। मकड़ी के जाले उड़-उड़कर हमारे चेहरे और बालों पर आ चिपकने लगे। नतीजा यह हुआ कि हम हाथों की आड़ करने को मज़बूर हो गये।

फूलों की बहार ऐसी कि आदमी की बुद्धि चकरा जाये। कुछ फूल गिलास की तरह बड़े, तो कुछ गुरियों की तरह नन्हें-नन्हें, लौ देते हुए—नारंगी, बैंगनी, लाल, नीले और गुलाबी-यानी, कुल मिलाकर ऐसे प्यारे-प्यारे कि असली मानने को मन ही न करे—ढालों पर फर्न के पौधों की घनी तहों पर तहें; चट्टानों के बीच शीतलता प्रदान करते, अपनी डण्ठलों पर लहराते, भुरभुरे, नाजुक, रंग बिरंगे तूलिप। और, हवा में हर ओर भरकी हुई दूब की महक की साँस लेने में जितनी ही आसानी हो, उतना ही मजा आये। जी चाहा कि घास पर पड़ रहूँ, धूप के धब्बों को अपनी बाँहों में भर लूँ, आँखें बन्द कर लूँ, और मक्खियों की भनभन सुनता और खटमलों के सरसराने की आहट लेता रहूँ।

चारों ओर जीवन उमड़ता लगा और इस जीवन में एक लयतान का अनुभव हुआ, जैसे कि किसी ने सब कुछ बड़ी बुद्धि से बुना हो, जैसे कि सब कुछ अजर-अमर हो, और जैसे कि सब कुछ सारे बँधनों से मुक्त हो।

'चिउ-वीट' कहीं पास ही कोई चीज़ सीटी की तरह कूकी की आवाज़ कान के पर्दे भेदती चली गयी। हमने मुड़कर देखा तो एक छोटी, धारीदार गिलहरी देवदार के तने से चिपटी नज़र आयी और उसकी चमकदार, माला के दानों की आँखें अपने ऊपर गड़ी मिलीं। आँखों में उत्सुकता उमड़ती रही।

"ओह, मेरी राज दुलारी, मेरी नन्हीं-मुन्नी बुधिया," लेओनीद ठिठक गया और खुद भी कूकने लगा। उसका चेहरा खुशी से ऐसे चमकने लगा जैसे कि किसी पुराने, प्यारे दोस्त से मुलाकात हो गयी हो—"क्या ठाठ हैं तुम्हारे, धारियोंवाली? कैसे चल रहा है

* सेवई की तरह सीधी, पतली, मैदे की बनी एक खास इटैलियन खाने की चीज़।

काम-काज? आओ, आओ, इधर आओ, हमसे छिपे की बात क्या है?"

धारीदार गिलहरी कीकी और तने के पीछे दौड़ गयी। हम खड़े इन्तज़ार करते रहे। पहले दो कान नज़र आये, फिर माथा और फिर चमकती हुई गुरियों सी दो आँखें—आँखों में वही उत्सुकता और उत्सुकता के साथ खिलवाड़। मुझे सहज ही कोने से झाँकते, आँख मिचौनी खेलते बच्चों का ध्यान हो आया।

लेओनीद का मन जैसे नाच उठा और वह बच्चे की तरह खिल गया। उसने दुलार से पेड़ों की पीठ थपथपायी, फूल चुने, गीतों की कड़ियाँ गुनगुनायीं और पुरानी यादों में खो गया—"वे जाड़े मैंने पिता के साथ तैगा में बिताये और हम वीराने में लट्ठों के बने केबिन में रहे। इस बीच हमने एक लाज़वाब शिकारी कुत्ता पाला। नाम रखा वाल्या। वाल्या को ग्लुखार* की महक एक मील दूर से मिल जाती।

"हम जंगल के बीच से गुजरते तो यह चिंघड़ चिड़िया पेड़ की किसी डाल पर कहीं घोड़े बेचकर सोती रहती। पर, वाल्या को महक मिल जाती। वह बौखला उठता, भूकता और पेड़ के आसपास उछलने कूदने लगता। दूसरी ओर यह चिड़िया जागती, अपने पर फुलाती, जमकर बैठती और कुत्ते को कनखी से देखती रहती। यानी नीचे फुदकते इस कुत्ते में उसे ऐसी दिलचस्पी होती कि उसे आसपास की सुध-बुध ही न रहती... अच्छा, सुनो, तुम जानते हो कि लार्च बबूल का पेड़ भरभराकर ज़मीन पर गिरता है तो कैसा लगता है? धमाका मीलों दूर तक सुनाई देता है और फिर बहुत देर तक आवाज़ गूँजती रहती है। यह समझो कि एक पेड़ की मौत पर सारा जंगल विलाप करता है।

लेओनीद की आँखें खुशी से चमकने लगीं और उसकी बातचीत का तार छिड़ा कि छिड़ता ही गया। वह एक पत्थर से उछलकर दूसरे के पास जा पहुँचता और चिड़ियों या गुबरैलों को सम्बोधित करने लगता, जैसे कि आख़िरकार उसने अपने पुराने दोस्तों के बीच आने का समय निकाल ही लिया हो, जैसे कि उसे एक-एक का ध्यान हो, और जैसे कि प्यार के दो बोलों पर उनमें से हर एक का अधिकार हो।

"तोल्या, कुछ दिन रुक जाओ... दो चार हफ्तों की बात है... फिर आयेंगे हम. .. तब देखना—यह बिलबेरी अभी कच्ची है, पर हमारे आने तक पक जायेगी, और हम हींक भर खायेंगे... फिर, रसभरियाँ होंगी... नीले बेर होंगे... तुम देखना क्या ठाठ रहेंगे... अपनी तनख़्वाह की कुल की कुल रकम हम बैंक में जमा कर देंगे। यही नहीं, अखरोट की भी खवाई की जायेगी। मुझे पता है, आसपास अव्वल दर्जे के अखरोट होते हैं।"

हमने मछली मारने की दस बंसियाँ तैयार कीं, और अंगारा के किनारे आये।

वैसे मैंने अंगारा को बहुत पास से देखा, पर नदी मेरे लिए कुछ अजनबी-अजनबी सी ही बनी रही। वह चलती गाड़ी या आसमान से धरती पर उतरते बाज की रफ़्तार

* देखने में मुर्ग़ी के क़द की एक जंगली चिड़िया।

से आगे ही आगे दौड़ती चली जाती। पर न तो कहीं किसी तरह की कोई आवाज़ सुन पड़ती, और न ही किसी लहर के सिर पर कहीं दूधिया फेन का कोई ताज दीखता। केवल सतह पर बुलबुले उमड़ते रहते। सन्नाटा ऐसा होता कि तल के कंकड़-पत्थर आगे की ओर घिसटते तो उनकी खड़खड़ाहट सुनाई पड़ती। उस पर बिल्लौरी शीशे की तरह झलाझल फीरोजी नीला पानी बराबर पास से गुजरता और झपटता चला जाता।

गुपचुप से तूफ़ान का यह करिश्मा देखकर मैं सहज ही समझ गया कि स्वाभिमानिनी अंगारा के हिम्मत से भाग खड़े होने की दास्तान क्यों और कैसे गढ़ी गयी होगी! सो, पर लगाकर उड़ती गहराई पर नज़र दौड़ाते ही मेरा सिर चक्कर खाने लगा। सारा कुछ सच से अधिक सपना लगा।

लेओनीद ने बंसियाँ साधीं और पत्थरों के नीचे दबा दीं। बोला—"क्यों, तैरने के बारे में क्या ख़्याल है?"

"बहुत डर मालूम होता है।"

"कोई बातनहीं। मैं तो येनिसेई नदीपार कर जाता था। दूरी बताऊँ कि कितनी होती होगी... यही समझो कि कोई पाँच किलोमीटर।"

मैंने दिल कड़ा किया और दौड़ते हुए नदी में कूद ही तो पड़ा। पहले पहिल ऐसा लगा जैसे कि किसी ने बदन छीलते पानी में झोंक दिया हो। यानी, ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की नीचे रह गयी। आँखें जैसे निकल निकल पड़ने को हो गयीं। मुँह से आवाज़ निकलना कठिन हो गया। धार तिनके की तरह बहा ले चली। मैंने बची-बचाई शक्ति जुटाई और हाथ-पैर मारते हुए जैसे-तैसे चिकने किनारे पर जा ही तो लगा। आख़िरकार यहाँ पहुँचने पर साँस में साँस आयी। लेओनीद अपनासीना पटपटाते और हँसते हुए कमर-कमर तक पानी में खड़ा रहा।

"पानी काटता है... है न? तुम्हारे हिसाब से धार बहुत तेज है क्यों!... ओह... क्या मजा है! वाह..."

उसने गोता लगाया और सील मछली की तरह नथुने फड़फड़ाये। यानी, इस तरह बर्फ़ की तरह ठण्डे पानी में नहाने में उसे बड़ा आनन्द आया। मैं अपने कपड़ों के पास लौटा और दुबारा मैंने पानी में हिलने की कोशिश की। मेरे पैर सुन्न पड़ गये, जैसे कि मैं बर्फ़ पर चल रहा होऊँ। यही नहीं, साथ ही मेरे बदन की हड्डी-हड्डी दर्द करने लगी, और यह तब जब सूरज आम तौर पर आग बरसाता रहा और किनारे के पत्थर सुलगते अंगारो से लगते रहे। मैं हड़बड़ाकर बाहर निकल आया।

"कोशिश करो... अभ्यास डालो इसका!" लेओनीद मेरी ओर देखकर चिल्लाया। इस बीच वह तैरते-तैरते काफ़ी दूर निकल गया था—"अभ्यास डालो, मेरे भाई... यह है असली साइबेरिया!"

इस पर मैं फिर पानी में पैठा, पर कोई दस सेकेंड बाद ही नफ़रत से बड़बड़ाता

हुआ किनारे की ओर बढ़ा। मेरे दाँत कटकटाने लगे। लेओनीद बहुत खुश-खुश पानी से बाहर आया। उसका बदन लाली से लौ देता रहा। अपने मन के उछाह के बीच से उसने मुझे प्रबोधना शुरू किया—"कोई बात नहीं, आदत पड़ जायेगी। जब मैंने पहिली बार येनिसेई पार की तो दो दिन तक स्टोववाली टाँड़ पर पड़ा रहा।"

मैंने अपने आप से कहा—"मैं येनिसेई पार कभी नहीं करूँगा... पर, मैं ऐसा छुई-मुई का फूल क्यों हूँ? आख़िर मेरा जन्म और लालन-पालन शहर में क्यों हुआ? लेकिन, इससे क्या, कभी तो मैं अपने को काफ़ी स्वस्थ और ताकतवर समझता था—सचमुच कितने इनाम जीते थे मैंने क्रॉस-कंट्री दौड़ों में।"

मुझे अपनी तबीयत सुस्त होती लगी, और जाने क्यों जी मिचलाने लगा। इधर मेरा जी अक्सर ही मिचलाने लगता था और देर-सबेर के खान-पान और थकावट के बाद इसमें अचरज की बात भी ऐसी कुछ न थी।

इस बीच दसियों बंसियों के तिरेन्दे पानी में डूब गये। डर हुआ कि कहीं भीगकर गल न गये हों। पर, लेओनीद ने अपनी जीभ चटकाई—"ठीक, चारे ज्यों के त्यों हैं।"

वह बंसियों के पास आया, और धीरे-धीरे दस मछलियाँ पानी के बाहर खींच लीं—मछलियों का रंग हल्का भूरा, सिर बड़े—सबसे छोटी उँगली के बराबर तो सबसे बड़ी हथेली के बराबर। मैं हक्का-बक्का रह गया।

"कुछ मछलियों को कँटियाँ निगलना पसन्द नहीं आता। वे पानी में इधर उधर फड़फड़ाने और निकल भागने की कोशिश करने लगती हैं," लेओनीद ने कंटियों में चारा फँसाते हुए कहा, "लेकिन, यह मछली बड़ी चलतापुर्जा होती है। इसीलिए तो इसका सिर इतना बड़ा होता है। जब कँटिया इसके गले में फँस जाती है तो यह समझ लेती है कि फँस गयी, और बेकार फड़फड़ाने के फेर में नहीं पड़ती... तुम जानते हो, हम क्या करेंगे? मैं बंसियाँ पानी में डाल दूँगा और तुम निकाल लेना। मछलियाँ कीड़ों के फेर में वहाँ कभी से जमा हो रही है।"

लेओनीद सीधे गया और बंसियाँ पानी में डाल आया। खुद अपनी आँखों पर विश्वास करना मेरे लिए कठिन हो गया। एक क्षण बाद मैंने बंसियाँ खींची तो हर बंसी में एक-एक मछली फँसी चली आयी। मैंने उन्हें कँटियों से अलग किया। भला इसका दुनिया में क्या ज़वाब! पहिली सौ की गिनती के बाद यह कल्पनातीत शिकार बिल्कुल मशीनी हो गया, और मछलियाँ गाजर-मूली की तरह इकट्ठा होने लगीं।

हमने जी भर मछली का शोरबा खाया और फिर गर्म पत्थरों पर लेटकर झपकी लेने लगे।

पहले आँख मेरी खुली। इस बीच मौसम ठण्डा हो चला। पुश्किन-संग्रहालय के हरकुलीस की तरह लम्बा-चौड़ा, कसे हुए बल्लोंवाला लेओनीद आराम से खर्राटे भरता रहा। सन्नाटा अब भी पहले जैसा ही रहा। नदी के तल में कंकड़-पत्थर उसी तरह गड़गड़ाते रहे, और अंगारा, ध्वनिहीन मृगस्वप्न की तरह अब भी तेज रफ़्तार से बहती रही।

इसी समय मेरी निगाह धुन्ध से नहाई दूरी के बीच खड़े छः क्रेनों पर पड़ी। बाईं ओर का आख़िरी क्रेन मेरा रहा। मैं यहाँ अटका रहा और इस अछूते वीराने के बीच सारा निर्माण स्थल सभ्यता के एक बिन्दु, सभ्यता के एक भू-खण्ड सा लगता रहा। मन बराबर असमंजस में पड़ा रहा कि पता नहीं यह गाड़ी मेरे चलाये चलेगी या न चलेगी!

मेरी तबीयत फिर गिरने लगी। मछली के शोरबे का ध्यान आया, और मुझे मतली आने लगी। शोरबे के ऊपर मछलियों के सिर ही सिर और सुफने ही सुफने उतराते रहे थे, और हमने सिर चपर-चपर कर खाये थे। सचमुच मुझे इतना खाना नहीं चाहिए था... ठीक है कि स्कूल की पढ़ाई के दिनों में मैंने खेलकूद में बड़े ईनाम जीते थे, पर आख़िर में साबित मैं क्या हुआ था—बेचारा, छुई-मुई सा ही न! दूसरी ओर लेओनीद को लीजिए। वह था मर्द। उसे बन्दूक मिल जाती और मिल जाती मछली के शिकार के लिए जंग लगी कंटिया तो देखते। साल, दो साल वह तैगा में बिता देता और उसे किसी दूसरी चीज़ का ख़्याल भी न आता।

लेओनीद किसी चीज़ से नहीं डरता। सारी दुनिया उसका घर है, और यह निर्माण स्थल उसके लिए खेल खिलौने जैसा, जब कि मैं...

सूरज डूबने लगा तो अंगारा में बैगनी, हरी और सोने के रंग छनने लगे। सारा वातावरण परी-देश का सा हो उठा। बड़ी मछलियाँ पानी में खिलवाड़ करती, और कभी यहाँ तो कभी वहाँ उछलती रहीं। शाम के बादलों ने पहाड़ियों पर अपने आग वाले पंख फैलाये। लेकिन, आसपास ज्यों-ज्यों सौन्दर्य निखरा, त्यों-त्यों मेरा मन डरा और जी घबड़ाया। मैं बोला—

"लेओनीद उठो, चलो, घर चलें!"

"क्यों, क्या बात है?"

"बात कुछ नहीं है। बस, चलो, घर चलें।"

"लेकिन, तुम्हारा चेहरा बहुत ही भयानक हो उठा है। क्या है, गड़बड़ी क्या है?"

"कोई बात नहीं... कै होगी मुझे, और बस।"

"हूँ :, तुमने शोरबा ज़्यादा खा लिया। रुको ज़रा सा। यह मछलियाँ थोड़ी सी और पकड़ लें तो चलें।"

"मुझे इन मछलियों की और ज़रूरत नहीं। फौरन चल दो अब तुम यहाँ से," मैं एकदम चिड़चिड़ा उठा और यह बात मैंने ऐसे लहजे में कहीं कि मुझे खुद अपने ऊपर शर्म आने लगी। लेओनीद अचरज से मेरी ओर देखने लगा।

हमने चरागाह पार की और हम पहाड़ियों की ओर बढ़े। यहाँ अनगिनत वायलेट जहाँ-तहाँ खिले नज़र आये। सहसा ही मेरा बदन सर्दी से गनगनाने लगा, और तबीयत खराब महसूस हुई। साथ ही पेट में ऐसे ज़ोर का दर्द उठा कि मैं दोहरा हो उठा।

"बात क्या है?" लेओनीद ने पूछा।

"आओ, कुछ वायलेट इकट्ठा कर लें..." मैंने उत्तर दिया।

"लड़कियों के लिए न?" लेओनीद को विचार बड़ा भाया और वह उमंग में आते हुए बोला—"क्या बात सूझी है तुम्हें!"

मेरी तबीयत की ओर से उसका ध्यान हट गया, और वह मुट्ठी भर-भरकर वायलेट जमा करने लगा। मेरी आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा, पर मैं जैसे-तैसे अपने को साधे रहा। हम काफ़ी धीरे-धीरे आगे बढ़े, और सूर्यास्त के बाद पहाड़ी की तलहटी में पहुँचे। यहाँ नये सिरे से ऐसा दर्द उठा कि फूल एक ओर को लोका मैं एक दूह पर ढह पड़ा।

लेओनीद डर गया और मेरे ऊपर झुकते हुए कुछ बुदबुदाने लगा तो मैं चिढ़कर चीख उठा—"तुम जाओ यहाँ से... मुझे छोड़ दो... मैं ज़रा आराम करूँगा... मैं कहता हूँ कि जाओ तुम यहाँ से!"

वह बात समझ गया और आगे बढ़कर ढाल पर चढ़ने लगा। कुछ देर तक तो साँवले आसमान की पृष्ठभूमि में उसका नक्शा नज़र आता रहा और उसके हाथ की बंसियाँ झलकती रहीं, परन्तु फिर सब कुछ आँखों से ओझल हो गया।

ज़रा देर बाद दर्द से थोड़ी राहत मिली तो ठण्डे पसीने से नहाया, मैं उठा और लड़खड़ाते हुए लेओनीद के रास्ते पर बढ़ा। वह घास पर बैठा मेरी राह देखता मिला। आकाशचुम्बी क्रेन के केबिन की तरह यहाँ से भी अंगारा के रुपहले रिबन के छोर नज़र आते रहे और अंधकार की चादर ओढ़े, पहाड़ियों से भरे तैगा के अनन्त विस्तार की झाँकी मिलती रही।

"लेओ...ओ...नींद!" मैं हाँफते हुए बोला—"मेरी सहायता करो, और कुछ रूबल उधार दिलवा दो। मैं मास्को वापस जाना चाहता हूँ। वहाँ पहुँचते ही रकम लौटा दूँगा, वचन देता हूँ।"

"आख़िर तुम्हें हुआ क्या?" लेओनीद का मुँह आश्चर्य से फैल गया—"साहबज़ादे, आख़िर बात क्या है? तुम्हें हुआ क्या?"

"कुछ रूबल दिलवा दो, लेओनीद, तुमसे विनती करता हूँ, प्रार्थना करता हूँ। मैं आज ही चला जाऊँगा, फौरन ही चला जाऊँगा। मुझसे इस तरह नहीं चल सकता बिल्कुल नहीं चल सकता। मैं घर वापस जाना चाहता हूँ।"

"देखो, देखो, यह सब मत सोचो... अपना मन शान्त करो। यह देखो, इन सारी मछलियों को देखो, यह सब तुम्हारे लिए हैं, समझे!"

"फेंक दो इन्हें तुम। इनकी तरफ़ देखने को मेरा मन नहीं करता।"

उसने मुझपर एक नज़र डाली, और जैसे हुक्म की तामील करते हुए, सारी मछलियाँ लोका दीं।

"लेओनीद, मुझे रूबल चाहिए। लेओनीद, कृपा कर मदद कर दो मेरी, लेओनीद। तीसरे दर्जे के टिकिट के लिए दो सौ रूबल चाहिए। और, तुम इन्तज़ाम नहीं करोगे

तो मैं पैदल ही चला जाऊँगा। मैं इस काम के लायक नहीं हूँ, यह ज़िन्दगी खाये जा रही है मुझे। भाड़ में जाये सब कुछ। सिर्फ़ दो सौ रूबल चाहिए मुझे।"

लेओनीद ने बड़े स्नेह पर अटपटे ढंग से मेरे गले में हाथ डाला—"पर, रूबल हैं नहीं न! रूबल हो नहीं सकते। किसी के पास नहीं हैं। माँगने से कोई फायदा नहीं। थोड़ा सब्र करो। कोशिश से अपनी हालत थोड़ी सम्हालो। उफ... मेरे भाई... थोड़ा सहो और अपनी तबीयत साधो। ठीक है कि जी नहीं लगता पर इस तरह हिम्मत नहीं हारो। शायद मुझ पर चीखने चिल्लाने या मुझे तमाचा मारने से तुम्हारा दिल कुछ हल्का हो जाये तो मार लो... मुझे तमाचा मार लो। ठीक है, कोई बात नहीं।"

उसकी समझ में न आया कि बिगड़े हुए बच्चे की इस ठुनक पर वह करे तो करे क्या और कहे तो कहे क्या। मेरे अप्रत्याशित उबाल पर जैसे परेशान हो उठा—"देखो, मेरी बात समझने की कोशिश करो... जाना अपने हाथ की बात है और इससे आसान और कुछ नहीं। तुम तनख्वाह के दिन टिकिट खरीद सकते और घर को एक-दो-तीन हो सकते हो। पर अगर, तुमने एक बार जी चुराना शुरू किया तो ज़िन्दगी भर जी चुराते रहोगे। अच्छा, अब लौटना चाहिए, सम्हालो ज़रा अपने को। इतना ज़्यादा शोरबा मुझे तुम्हें खाने नहीं देना चाहिए था। चलो, आओ! चलें... घर जाने का क्या है, छुट्टियाँ मिलेंगी तो हो आना घर। तब तक काफ़ी पैसा हो जायेगा। हम तुम मिलकर इसके लिए पैसा बचायेंगे, क्यों कैसी रही? जहाँ तक मेरा सवाल है, भला मुझे पैसे की क्या ज़रूरत! चलो, खुश हो जाओ... कोई मास्को ही तो एक ऐसी जगह है नहीं जहाँ आदमी रह बस सकता है... और जगहें भी तो हैं दुनिया में!"

मैंने उसकी बात पूरी तरह नहीं सुनी। जी ज़रा सम्हला तो उठा, मछलियाँ खोजीं, लेओनीद के हाथों में चुपचाप साधीं, आधी बंसियाँ अपने हाथ में ले लीं, और हम आगे बढ़ दिये।

लेओनीद ने आधे वायलेट मुझे दिये, और प्रीमोर्स्काया सड़क पर पहुँचने पर हम एक खास घर में दबे पैरों घुसे। और, दो गुच्छे चार नम्बर के कमरे के दरवाज़े पर रख दिये।

दर्द की रात–

उस रात मैं ब्लॉक में गया तो बेमन से और धीरे-धीरे। काम क्या करूँगा और कैसे करूँगा, इस बात की ओर ज़रा भी ध्यान ही नहीं गया। बस यह हुआ कि शिफ्ट खत्म हो किसी तरह!

कल्पना कीजिए—उलटी हुई मिट्टी की पहाड़ियाँ, लकड़ी की चैलियों और लट्ठों से गँजी, और इस अम्बार के बीच से उभरती लकड़ी की ऊँची, टेढ़ी-मेढ़ी दीवार, अन्दर का हिस्सा खोखला और इसे कंकरीट से भरने का काम। यह हमारा नया धन्धा था।

बाँध का निर्माण पूरा हो चुका था और अब एम्बैंकमेण्ट तैयार किया जा रहा था। प्रस्ताव था कि इसके एक ओर पेड़ लगाये जायें, तो दूसरी ओर केन्द्र के टरबाइनों से छूटी प्रचण्ड धार तेजी से उमड़े। वैसे दीवार ऐसी खोखली न थी। उसमें सलाखों का भराव था। चलने-फिरने की गुंजाइश बहुत थोड़ी थी और रोशनी अन्दर कम ही कम पहुँचती थी। लड़कियों के ओवरऑल जब-तब ही सलाखों में फँस जाते, और वाइब्रेटरों के तार अक्सर ही उलझ जाते थे।

निकोलाई ऊपर सिरे पर टब खोलने का काम कर रहा था तो मैं फिर से क्रेन के तल पर ट्रकें खाली करने का। यह जगह आकाशचुम्बी क्रेन की पहुँच के बाहर थी इसलिए यहाँ हम भाप से चलने वाले 'स्कोदा' के सहारे काम करते थे। अपने घिसे-पिटे कैटरपिलरों के बावजूद उसका मिट्टी के इन अम्बारों की गर्दनें झुकातें हुए यहाँ तक आ पहुँचना, मेरी समझ में न आता था। वह मशीन क्या थी, दोमंजिला घर समझिए—पूरी तरह कोयले से काला, स्टीम इंजन की तरह भक-भक कर भाप उगलता हुआ। अँधेरे में भी राखदान से बाहर फेंकी गयी राख के ढेर दूर से लौ देते और काजल से नहाये ऑपरेटर आसानी से देखे जा सकते। यह ऑपरेटर काफ़ी परेशान नज़र आते और रह-रहकर अपने केबिनों से झाँकते। पास ही कोई बुलडोजर चरमराता हुआ आगे बढ़ता आता और क्षण-क्षण पर क्रेन की चिमनी से चिनगारियों के बादल उमड़ते।

रात ठण्डी थी। मैंने ठिठुरन का अनुभव किया और लगा कि तबीयत फिर गिर रही है।

इसी समय किसी चीज़ की कमी खटकी और बहुत बुरी तरह खटकी। पर, यह चीज़ क्या है, यह समझ में न आया। इस पर भी अनुभव हुआ कि जो कुछ मुझे चाहिए, वह बहुत शानदार होगा, उसके मिलते ही मेरे मन का भयानक बोझ हट जायेगा, दिमाग़ हल्का हो उठेगा, जीना आसान हो जायेगा, और ज़िन्दगी में सुख सरस उठेगा। सवाल फिर भी बना रहा कि यह चीज़ आख़िर है क्या? कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह सब कुछ नहीं है, सिर्फ़ तबीयत खराब है अन्दर से?

पहिली ट्रक आयी नम्बर 00-07—ड्राइवर मेरा पुराना दोस्त उदासी से भरी आँखोंवाला। उसे देखकर मेरा जी बड़ा खुश हुआ और उसने पहिली बार मुझसे मुँह खोला। कहने लगा—"कुछ यों ही सी मुश्किल हुई यहाँ तक आने में..."

निर्माण-स्थलों पर काम करने वाले ड्राइवरों, मैं तुमसे एक बात कहूँ। तुम पहियों के निशानों के ऊपर से, और ऊँची खाली जगहों, पहाड़ियों और भयानक दलदलों के बीच से जिस मशक्कत से अपनी टूटी-फूटी, बुरी तरह दौड़ करने वाली ट्रकें यहाँ तक लाते हो, उसका भला क्या ज़वाब! पर तुम्हारी इन ओहारवाली ट्रकों को देखकर डर बड़ा लगता है। मैं कहता हूँ कि मास्को को जाने वाली सड़कों पर कोई नहीं चलने देगा इन्हें। इस पर भी बिना पूरी ओवरहालिंग के तुम इन्हें हज़ार-हज़ार किलोमीटर घसीट ले जाते हो, जब तक हो सकता है टायरों की मरहम पट्टी करते रहते हो, और

इससे भी बड़ी बात यह कि पेट्रोल ऊपर से बचा लेते हो।

सो, जहाँ मैं काम कर रहा था वहाँ तक तो पाँव-पाँव पहुँचना भी टेढ़ी ही खीर थी। पर इस पर भी 00-77 का ड्राइवर अपनी ट्रक ले ही तो आया। उस पर कमाल यह कि कंकरीट ज़रा नहीं उछली और कहने पर आया तो कहा सिर्फ़ इतना कि कुछ यों ही सी मुश्किल हुई यहाँ तक आने में!

दूसरी ट्रक लाया 'सोने के दाँतोंवाला ठग'। उसने आधी कंकरीट गिरा दी थी।

"हलो, यारो की मुलाकात फिर हुई।" हँसकर केबिन से झाँकते और हाथ हिलाते हुए बोला—"आज तुम्हारी पेंसिल के मिज़ाज कैसे हैं?"

"तुम्हें मेरी पेंसिल की क्या फिक्र?"

"आज की रात काम करना... बड़ा मरन है... ज़रा दो निशान और जोड़ देना.. जोड़ दोगे न? इसमें ऐसी कोई बेईमानी भी नहीं..."

और, सचमुच आज काम कायदे से न चल रहा था। निकोलाई कठिनाई का अनुभव कर रहा और टब को साधकर दीवार के अन्दर पहुँचा नहीं पा रहा था। क्रेन ऑपरेटर बार बार कसमें खा रहा और भारी भरकम टब के कारण डण्डे के टूट जाने से डर रहा था। क्रेन ज़ोर पड़ने के कारण चरमरा, झटके खा और झनझना रहा था। नीचे के लकड़ी के सकरे कटघरे में लड़कियाँ अपने चेहरे ढके, कोनों में दुबकी खड़ी परेशान थीं कि केबुल कहीं कंकरीट के नीचे न दब जायें।

अचानक ही आवाज़ हुई—पाड़... पड़ पड़ पड़... पाड़... धड़ाम। सारी कंकरीट बाहर आ रही। दूसरे ही क्षण ब्लॉक से चीख-पुकार सुनाई पड़ी—"निकोलाई, दोगले के बच्चे, तुमने यह आख़िर गिरायी कहाँ? आओ और फावड़ा-फावड़ा कर अब खुद उठाओ इसे।"

"सुनते हो, बन्द करो अपनी जबान," निकोलाई ने संध में मुँह डालते हुए कहा और बैठकर सिगरेट पीने लगा—

"तुम कौन हो बड़बड़ करने वाली? हरामजादी चुड़ैलो, तुम अपनी वाइब्रेटिंग की फिक्र करो।"

वह हाथ हिलाते और सलाखों का सहारा लेते हुए होशियारी से आगे बढ़ने लगा तो तारों से भरे आसमान के साये में ऐसा मालूम हुआ जैसे कि कोई अकेली, पागल मुर्गी अपना दरबा खोज रही हो।

अन्त में होते-होते ट्रकों का आना एकदम बन्द हो गया।

निकोलाई सीढ़ियों से नीचे उतरा। उसने मुट्ठी भर चैलियाँ, तारकोल की बाल्टी और पूरे का पूरा लट्ठा उठाया और आग तैयार की।

"म... मजा आ गया... आग से ज़रा हिसाब ठीक रहता है। हे... ए... लड़कियो।"

दाश्का सिर से पैर तक कंकरीट के मलबे से नहाई उछलकर ब्लॉक के बाहर आयी,

अलथी-पलथी मारकर आग के पास बैठी और बगलें गरमाते और कनखी से देखते हुए मुस्कराने लगी। इस समय वह इतनी भली और ममतामयी लगी कि कुछ देर पहले की निकोलाई पर बरसनेवाली कर्कशा से उसका ताल-मेल बैठालना कठिन हो गया।

निकोलाई बोला—"अनतोली, अब जाड़ा आयेगा। जाड़े में तो यहाँ ऐसी भयानक सर्दी पड़ती है कि बस! ब्लॉक में काम करने वाली इन चुड़ैलों को कुछ ज़्यादा नहीं खलता, पर साँचा-पुल पर काम करने वालों की तो दुगर्ति हो जाती है। बर्फ़ और हवा हड्डी-हड्डी छेद देती है। ऐसे में मैं तो, भाई, कुछ ऐलियाँ-चैलियाँ जमा करता हूँ और खाली टब में आग बना लेता हूँ। हर ओर होता है लोहा, इसलिए आग लगने-लगाने का ख़तरा नहीं रहता। फिर मैं अन्दर घुसकर बैठ रहता हूँ, और धुआँ निगलता चला जाता हूँ... हूँ...हूँ :... शानदार!"

"ज़रा फायरमैन का किस्सा तो सुनाओ," दाश्का ने निकोलाई को उकसाया।

"इसमें क्या! किसी ऐरमैन-फोरमैन जैसे आदमी को आता देखता हूँ तो आग बुझा देता हूँ और उस पर ऐसी बर्फ़ डाल देता हूँ कि किसी को सपने में भी गुमान नहीं हो पाता। फिर पूछने वाला पूछता है—'लेकिन, यहाँ धुआँ क्यों?' ज़वाब कि सिगरेट पी रहा था। पर, एक बार एक फायरमैन ने पकड़ ही तो लिया। बात यह हुई कि बर्फ़ बड़े ज़ोरों से गिर रही थी और वह मुझे नज़र आया नहीं। फिर तो बड़ा चीखा-चिल्लाया—'बेवक़ूफ़ हो तुम... ऐसी-तैसी तुम्हारी... तुम पूरे इलाके में आग लगाकर दम लोगे।'

"लेकिन, मुझे शरीर गरम रखने को तो कुछ न कुछ चाहिए ही... चाहिए कि नहीं?' मैंने पूछा। 'मैं तुम्हें शरीर गरम रखना सिखलाऊँगा!' वह बोला और भागकर विभागीय अध्यक्ष के पास जा पहुँचा। मैंने जल्दी-जल्दी आग बुझायी, राख उड़ा दी, ऐन जगह पर बर्फ़ डाली और पाट दी। इसके बाद मैं चढ़कर क्रेन के येफ़्रेमिच के दरबे में जा घुसा और ऊपर से सब कुछ देखने लगा। ज़रा देर बाद दोनों आये और कुछ समय तक इधर-उधर टहलते रहे। फिर, चीफ़ की आवाज़ मेरे कानों में आयी—'निकोलाई के बारे में यक़ीन नहीं होता। वह ऐसा आदमी नहीं। ऐसी गुस्ताखी उससे नहीं हो सकती।' इतना कहकर फायरमैन को साथ लेकर चीफ चला गया। बाद में दिन में मुलाकात हुई तो मुझसे बोला—'तुम्हारी आग-वाग से मुझे कुछ नहीं, पर ध्यान रखो और फायरमैनों से जान बचाये रहो।'

(जैसे कि इस बात का पता मुझे न हो...) गरमी की बात दूसरी होती है। आजकल दिन अच्छे हैं।"

मैंने कोयले का एक बड़ा बक्सा पास ही पड़ा देखा। उठाया, उसका मुँह आग की ओर किया, उस पर एक तख़्ता रखा और रेंगकर उसमें जा लेटा। लोहा बर्फ़ की तरह लगा, और आग अलग से ठण्डी पड़ने लगी। एक बार घड़घड़ाहट की सी आवाज़ से मेरी नींद टूटी और मैं उछलकर अभी-अभी आयी ट्रक की कंकरीट निबटाने के लिए

यचथास्थान जा पहुँचा पर वहाँ ट्रक-व्रक्र कुछ भी नज़र न आयी और घड़घड़ाहट क्रेन के ब्वॉयलर की निकली। अब, फिर लेट रहा, और मास्को के जाड़े के सपने देखने लगा। देखा कि बड़ी बर्फ़ गिरी है, और बर्फ़ साफ करने वाली मशीनों का कारवां का कारवाँ गोर्की मार्ग से गुजर रहा है। तापमान है—35 अंश। मैं स्कूली बैग लिये चला जा रहा हूँ—नारंगी खाता हूँ, और छिलके दूधिया बर्फ़ पर फेंक देता हूँ। नया वर्ष आ रहा है और हमारा क्लास 'अखरोट तोड़नेवाला' नामक बैले देखने की बात सोच रहा है...

इस बीच 'सोने के दाँतोंवाले ठग' ने मुझे जगा दिया। वह आधी ट्रक कंकरीट लाया। बोला—"यह भी कारखाने से जिस-तिस तरह 'दुह' लाया हूँ... वहाँ काम ठप पड़ गया है, और कुछ वक़्त तक अब कंकरीट वहाँ से बिल्कुल नहीं निकलेगी।"

मैं काँपने लगा। मेरे पैर शराबियों के पैरों की तरह आगे-पीछे होने लगे—सवाल है—क्या मेरी तबीयत खराब थी? यदि नहीं तो क्या यह नींद की खुमारी का असर था?

दूसरी ओर, वह लम्बा-चौड़ा, मोटा-तगड़ा आदमी घिघियाते हुए बोला—"अब देखो, जिगर, तुम्हें कुछ जोड़ना घटाना पड़ेगा। ज़्यादा नहीं, ऐसे ही कोई पाँच खेपें जोड़ देना, और बस। देखते हो, हालत क्या है? यह बात नहीं कि मैं काम नहीं करना चाहता, पर हालत दूसरी है। यह इतनी कंकरीट भी मैंने उन लोगों के गले से निकाल ली, समझो। कुछ जोड़ देना, यार, मेरे बाल-बच्चों के नाम पर जोड़ देना... लहड़े भर तो हैं... जब देखो तब रोटी के लिए हाय-हाय करते रहते हैं।"

मैंने पैड निकाला और तीन निशान अलग से लगा दिये, यानी तीन खेपें अलग से जोड़ दीं। इसी समय मुझे 00-77 के उदास ड्राइवर का ध्यान आया और दो निशान मैंने उसके हिसाब में भी और लगा दिये।

'ठग' खुशी से खिलकर चिल्लाया—"यह हुई कायदे की बात... आओ, अब इसी बात पर ऊपर क्रेन पर चलकर भरक लें ज़रा।" उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया।

हम जैसे-तैसे सीढ़ी पर चढ़े। ऊपर पहुँचकर क्रेन की दीवार में जड़ा दरवाज़ा खोला और खुली भट्ठी की गरम साँस से अपनी साँसों में गरमी भरने लगे। बैठ गये। खनक की तरह पक्के रंग का भट्ठी झोंकने वाला बहुत स्नेह से हँसा—

"खैर, तो तुम लोग आ गये, क्यों? जानते हो, दिन में कोई आदमी का बच्चा यहाँ झाँककर नहीं देता।"

'ठग', जोश में आते हुए बोला—'मैं तो इस जगह को स्वर्ग का नाम देता हूँ। म्यां, एक छबीली, जोबनदार लड़की हो और नसों में गरमी दौड़ाने की किसी चीज़ की एक बोतल, तो मैं तो अपनी सारी ज़िन्दगी यहाँ काट दूँ, और माथे पर बल न पड़ने दूँ। क्यों दोस्त, कुछ पानी-वानी भी है?"

भट्ठी झोंकने वाला प्रेशर-गाजों, सिलिण्डरों और अज़ीब अज़ीब सी मशीनों के अम्बार के पीछे के अंधकार में खो गया और ज़रा देर बाद एक बाल्टी पानी लिये लौटा। सतह पर जहाँ-तहाँ कोयले का चूरा नज़र आया। पानी हमने बड़े चाव से पिया।

भट्ठी झोंकने वाला बोला—"वहाँ टाँड़ पर ग्रिगोरी सो रहा है... जाओ, चाहे तो ज़रा छेड़छाड़ दो, पर देखो, जगाना नहीं।"

हम एक सीढ़ी पर चढ़े तो जैसे छत पर निकल आये। वहाँ नज़र आयी तख़्तों की बनी एक टाँड़ और उस पर देखा स्वेटरों, ओवरऑलों और टोपियों का ढेर। शूं-शूं की आवाज़ करता गरम पानी का पाइप कहीं पास ही दौड़ता मालूम हुआ, और सारा वातावरण भाप-नहान वाले हमाम का सा लगा। मेरा सारा बदन सुन्न पड़ गया और बड़ी मीठी मीठी सी सुस्ती आने लगी।

मैंने मास्को के कोम्सोमोलस्की स्क्वायर का सपना देखा। देखा कि मैं गाड़ी पकड़ने के लिए झपटा चला जा रहा हूँ... गरमी बहुत है और उमस भी... लगता है जैसे कि पूरे का पूरा मास्को उमड़ पड़ा है, और आसपास की जगहों के लिए गाड़ियाँ पकड़ रहा है... गाड़ियाँ ठसाठस भरी हुई हैं... आइक्रीम हाथों हाथ बिक रही है... हम नदी में मछली मारने जा रहे हैं... वही छोटी, चौरस, बड़े सिरोंवाली मछलियाँ। आपको क्या मालूम, लेओनीद और मैं यानी हम दोनों इस मामले में विश्व-रेकार्ड कायम कर देते हैं, और सो भी जंग लगी कँटियों के बल पर... लेकिन मेरी तबीयत खराब हो जाती है... भला क्यों? इन मछलियों को पकड़ने के बाद ही वापस पानी में छोड़ देना चाहिए... वे वहाँ जमा हो रही हैं... सो, जितनी जल्दी-जल्दी मैं उन्हें पकड़ता हूँ, उतनी ही जल्दी जल्दी पानी में छोड़ देता हूँ... न कहीं हवा साँस लेती हैं और न आसमान में एक बादल नज़र आता है... मैं एक घूँट पानी चाहता हूँ...

"पानी!..."

"साहबजादे, यह बिस्तरा तुम्हें कुछ सुख नहीं दे रहा। नीचे उतर आओ... एक ट्रक आ गयी है। जल्दी करो।"

इस ज़िन्दगी को भी क्या कहिए! लड़खड़ाता हुआ चल दिया। उस बीच दिन का उजाला फैलने लगा। ट्रक नम्बर 00-77 के ड्राइवर ने टब में कंकरीट उलटी। मैंने ट्रक की बगल में पहुँचने के लिए कदम बढ़ाये तो मलबे में भहरा पड़ा। फिर फावड़ा सम्हाला और कोशिश की तो फिर गिर पड़ा।

"उफ, कैसी मुश्किल है!... उठाओ... हो।"

क्रेन ने टब ऊपर उठाया। निकोलाई ऐसा घोड़ा बेचकर सोया कि तमाम चीख चिल्लाहट के बाद भी उसकी आँख न खुली और काफ़ी देर बाद अपने 'मुर्ग़ियों के दरबे' से बाहर निकला। फिर तो कंकरीट ऐसे धमाके के साथ गिरी और हो-हल्ले से इस तरह कान के पर्दे फटने लगे कि मेरे रोंगटे खड़े हो गये—हो न हो, कोई न कोई ज़रूर दब गया है इसके नीचे!

"निकोलाई! ऐ निकोलाई! यह हुआ क्या?"

निकोलाई नीचे देखता रहा, और उसके होंठ बिना आवाज़ किये थरथराते रहे।

"निकोलाई! सुनाई नहीं पड़ता क्या? लड़कियाँ तो नहीं दब गयीं"

"उससे भी बुरा हुआ," उसने थूकते हुए कहा "लड़कियों को किसी चीज़ से नुकसान नहीं पहुँचता... नीचे का तख़्ता टूट गया है... सारी की सारी हरामज़ादी कंकरीट बाहर निकली आ रही है... अपनी तो रोजी गयी!"

मैं लपककर ऊपर पहुँचा तो मैंने भयानक दृश्य देखा। दूसरी दीवार फट गयी थी, और कंकरीट बाहर उमड़ी चली आ रही थी। लड़कियाँ वाइब्रेटरों को साथ घसीटते और जान छोड़कर चीखते हुए बचाव के लिए ऊपर के सीखचों पर चढ़ रही थीं। किसी भी क्षण सारे का सारा ब्लॉक भरभराकर गिर सकता था और दियासलाई की डिबिया की तरह एक-एक हिस्सा अलग हो सकता था। कंकरीट इतने धीरे-धीरे और इतने आराम से बहती चली आ रही थी कि देखनेवालों का दिमाग़ चकरा रहा था। ब्लॉक की हमारी सारी मेहनत अकारथ हो गयी थी।

ऐसे में सबसे पहले दाश्का का सिर दीवार के ऊपर झलका, और वह आपे से बाहर होकर निकोलाई पर बरस पड़ी—"तू, लाल दोगला कहीं का! दीवार पर ही कंकरीट गिरानी थी तुझे? तुझे यह नहीं टीपा कि दीवार कमज़ोर है? तू..."

"नहीं, दाश्का, बेकार कुछ न कहो—सुनो," तोन्या निकोलाई की ओर से बोली, "इसमें इसकी कोई गलती नहीं।"

उसका चेहरा लाल सुर्ख और बाल बिखरे हुए थे, जैसे कि नीचे प्रलय हो गयी हो। इस पर हाँफते हुए वह एक वाइब्रेटर पूरा ज़ोर लगाकर घसीटने लगी तो मैं उसकी मदद को लपका। उसने नीली आँखें उठायीं, कृतज्ञ भाव से मेरी ओर देखा और बोली—"सच पूछो तो निकोलाई की जगह हमें तोल्या को रखना चाहिए था। वह काम करता है तो टब सीधे तागे की तरह नीचे चला आता है।"

मेरे दिल की धड़कन रुक गयी—पहली बार किसी ने मेरे काम की तारीफ की थी; और, तारीफ़ भी किसने की थी, तोन्या ने!

"सोने के सिवाय और अभी कुछ नहीं रहता तुम्हारे दिमाग़ में, निकोलाई।" दाश्का फुफकारी उसका बस चलता तो वह उसकी आँखें निकाल लेती।

निकोलाई के होश गायब हो गये। वह सब कुछ चुपचाप सुनता रहा और उसका चेहरा तुर्की मुर्गे की तरह काला पड़ता गया। लेकिन, जब दाश्का की जुबान नहीं ही रुकी, तो किसी बहुत सख्त बात पर उबल ही तो पड़ा—"मुँह बन्द करो, नहीं तो तुम्हें उठाकर फेंक दूँगा बाहर!"

"तू उठाकर बाहर फेंक देगा मुझे, क्यों?"

"बात खत्म भी करो, दाश्का! रहने दो उसे! अच्छा हो कि तुम जाओ और मोसकालेंको को बुला लाओ... इतनी चीख चिल्लाहट ठीक नहीं।"

पहिली बार मैंने देखा कि काम की किसी गड़बड़ी पर लोग इस तरह आपे से बाहर होते हैं, और ऐसे बौखलाते हैं कि पायें तो एक दूसरे की गर्दन दबा दें और गला घोट दें। मुझे लगा—आख़िर यह कोई किसी का व्यक्तिगत मामला तो है नहीं... इसमें इस तरह बौखलाने की आख़िर क्या बात? सचमुच आख़िर क्या बात?

हमारे विभाग के सुपरिटेण्डेण्ट और बढ़ई दौड़े आये। बढ़ई अपना फोरमैन अपने साथ लाये। अब वे लगे चीखने-चिल्लाने और निकोलाई से तरह-तरह के सवाल-ज़वाब करने। बहस-मुबाहिसे के बाद फैसला दिया गया कि सारी गलती बढ़इयों की है। उन्होंने तख़्तों के मामले में लापरवाही बरती और काम कायदे से नहीं किया।

इससे हम सब के दिमाग़ों का बोझ टला, पर मनों के तनाव ज्यों के त्यों बने रहे। दाश्का और निकोलाई की बोलचाल बन्द होगयी। तोन्या विचारो में डूबी सी एक लट्ठे पर जा बैठी। उसके माथे पर ऐसे बल पड़े रहे, उसका चेहरा ऐसा पीला और उदास बना रहा, और उसकी आँखों से कुछ ऐसी थकान और दर्द टपकता रहा कि मेरी उसके पास जाने की हिम्मत ही न पड़ी।

सुहानी सुबह–

लेकिन लगा कि बात अभी यहीं खत्म नहीं हुई। ठीक इसी समय दाशा परेशान सी दौड़ती हुई आयी और बोली—"सब लोग बड़े दफ़्तर में बुलाये गये हैं। वहाँ सारे ऊपर के लोग जमा हैं, और इन सब में भी खास हैं निर्माण-दल के पार्टी-संचालक।"

"अब मुसीबत आयी.. धो-धोकर मारे जायेंगे।"

निकोलाई तो लड़ाई के लिए कमर कसे तैयार लगा। सब से तीखी आवाज़ उसी की रही। चिल्लाते हुए बोला—"मैं... मैं बतला... मैं बतलाऊँगा उन्हें... देख..ले... ले... लेना... मुझे उनका कोई डर नहीं पड़ा! बोर्डिंग किसी काम का नहीं है, और ज़वाबदेही हमें करनी पड़ती है... बोलो, करनी पड़ती है कि नहीं? उन... उनका ख़ ..ख्या... ख़्याल है कि हमारे मुँह में जुबान ही नहीं?... तो, ठीक, वे भी याद रखेंगे कि हाँ, कोई आदमी मिला था! देखना तुम लोग! एक ज़माने तक याद रखेंगे मेरा नाम!"

"यह सब कुछ तुम उनसे कहना, निकोलाई!"

"सो तो कहूँगा ही! तुम्हारा ख़्याल है कि मैं डरता हूँ? नहीं, मैं डरने वाला नहीं... मैं दस साल से यह कंकरीट का काम कर रहा हूँ, और बड़े-बड़े और एक से एक लोग देखे हैं मैंने!"

हम बड़े दफ़्तर के लिए रवाना हुए। निकोलाई रास्ते भर इसी तरह बकता रहा, जैसे कि कोई बाँध उसके दिमाग़ में चटक गया हो।

बड़े दफ़्तर के सामने अच्छी खासी भीड़ थी। आठ बजे का समय था, और शिफ्टें

बदल रही थीं। आन्न मोसकालेंको का चेहरा लाल था और वे परेशान सी बरसाती में खड़ी थीं। मन ने कहा—"भाड़ में जाये ऐसी रात!..." सच मानिए कि काई मुझसे कहता भी तो मैं उस समय मोसकालेंको की जगह लेना पसन्द न करता।

पार्टी-संचालक निकलकर बरसाती में आये। लोगों ने सोचा—लो, अब यह बरसे! पर वे बोले—

"कम्युनिस्ट पार्टी की प्रान्तीय कमेटी ने समाजवादी होड़ाहोड़ी के परिणामों पर सोच-विचार किया है..."

"बात आख़िर क्या है?" हम एक दूसरे का मुँह ताकने लगे।

"प्रान्तीय कमेटी का चुनौती ध्वज फिर आन्ना मोसकालेंकों की टीम को प्रदान किया जाता है..."

मेरे कान के पर्दे फटने लगे—वातावरण तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा।

"अंगारा पर बाँध बनाने का बहुत कुछ श्रेय उनकी टीम, और उनकी टीम के काम को है... टीम ने अपना काम बहुत ही माँजा है... टीम शानदार है..."

"चुप रहो, निकोलाई," लड़कियाँ फुसफुसायीं, "उन्हें कुछ भी पता नहीं... वे कुछ भी नहीं जानते।"

"... विभाग के प्रशासन अधिकारियों ने कैसी बेहूदी हालत पैदा कर रखी है। टीम घण्टों बेकाम और बेकार रहती है। अभी-अभी, कुछ ही मिनटों पहले मालूम हुआ कि पूरी टीम मे सिर्फ़ एक टुकड़ी है जो कंकरीट बिछा रही है, बाकी टुकड़ियाँ कहीं सफाई के काम के लिए भेज दी गयी हैं। और, इस एक टुकड़ी की मेहनत भी बढ़इयों के बुरे काम के कारण अकारथ चली गयी है।"

लाल-ध्वज बाहर लाया गया, और फिर तालियाँ गूँज उठी। आन्ना मोसकालेंको का चेहरा स्कूली लड़कियों की तरह गुलाबी हो उठा। उसने ध्वज ले लिया और वही पुरानी, घिसी-पिटी बातें दोहराने लगी। इसके बाद कमियों की चर्चा की, और बहुत सी मँजी हुई शैली में विभागीय अध्यक्ष, बिजली मिस्त्रियों और बढ़इयों की बात चलाई।

भीड़ हँसी के ठहाके लगाती रही। पार्टी संचालक के माथे पर बल पड़े और वह अपने पैड पर काम की बातें नोट करने लगा। हमारी टीम लीडर हवा में ध्वज घुमाते हुए जोश में आयी, और बरसती चली गयी—

"'इवान मिकितिच, कृपा कर हमें कंकरीट दीजिए! लोग हाथ पर हाथ रखे बैठे हैं!...' उससे कहो तो वह गबाइदुलिन के पास चालू कर देता है कि तुम्हारी टीम को कंकरीट देने की जिम्मेदारी सिर्फ़ उस पर है। गबाइदुलिन के पास जाओ तो पता चलता है कि वे आलू के फेर में गये है। उनके सहायक से मिलो तो वह अलग हाथ हिलाता है—'नहीं, बाबा, मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं। आप कंकरीट रवाना करने वाले से बात क्यों नहीं कर लेतीं?' मैं इसे अत्याचार कहती हूँ। हम काम किसके लिए कर रहे हैं? आप लोग सब के सब बेरहम हैं। आपको किसी बात की फ़िक्र नहीं हैं टीम

बेकार रहती हो, रहे, आपकी बला से! जाने कहाँ-कहाँ से काहिल और आवारा आ जमा हुए हैं। भला इनके कानों पर जूँ रेंगेगी?"

"बात बिल्कुल ठीक है! मोसकालेंको ने बिल्कुल ठीक बात कही है!" भीड़ के बीच से आवाज़ें आयीं, "इनकी आँखें तो खुलें किसी तरह। नहीं खुलें तो बहुत हुआ, इन्हें मार ठोकर निकाल बाहर करना चाहिए।"

"मैं भी अपनी ओर से कुछ कहूँगा," निकोलाई पक्के इरादे के साथ आगे बढ़ा और सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर जाने के बदले बरसाती की हैंडरेलिंग के पास जा खड़ा हुआ। भीड़ के लोगों ने ठहाके की हँसी से उसका अभिवादन किया।

"मैं बतलाऊँगा उन्हें! तुम... तुम... तुम्हारा ख़्याल है कि मैं डरता हूँ किसी से। नहीं, मुझे किसी का डर नहीं पड़ा। मैं कंकरीट का काम पिछले दस सालों से कर रहा हूँ!"

"काम की बात करो!"

"काम की बा...बात यह है... वे लोग समझते हैं कि हमारी कोई आवाज़ नहीं!"

"यह 'वे लोग' कौन, निकोलाई?"

"हे, चुप कर... वहाँ खड़ा-खड़ा बड़बड़ा रहा है!"

बहुत देर तक तो यही समझ में न आया कि निकोलाई कहना क्या चाहता है। फिर भी यह बात साफ हो गयी कि यह आदमी वह है कि जिसके धैर्य का बाँध टूट चुका है और जो फालतू खेपों और कंकरीट की घिसी-पिटी कहानी अब बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह अन्त में बोला—"और, अगर कोई ऐसे रद्दी तख़्ते दुबारा दीवारों में लगायेगा तो मैं अपने हाथ से उसका तामलोट जैसा मुँह तोड़ डालूँगा!"

"चलो, बैठो, निकोलाई, यह हुआ तुम्हारे किये!"

"हे, चिल्लाता है वहाँ से! चुप कर! एक बार तेरे सारे किये-कराये पर पानी फिर जायेगा तो देखूँगा कि कौन-सा राग फूटेगा तेरे गले से!... पिछले दस सालों में ऐसा कभी नहीं..."

हँसी और तालियों की गड़गड़ाहट के बीच लोगों ने निकोलाई को नीचे घसीट लिया। वह बौखलाहट से हाथ चमकाता रहा कि लाख समझाइये, लेकिन एक समझ में न आये।

विभागीय अध्यक्ष ने दूसरी बातों के साथ-साथ हमें यह भी बतलाया कि जिन बढ़इयों ने दीवारों में ऐसे खराब तख़्ते लगाये हैं उन्हें बोनस नहीं मिलेगा और उनके नाम सम्मानित कामगारों की सूची से काट दिये जायेंगे।

कुछ देर को तो हम जैसे हीरो बन गये। लोग ब्लॉक में आ जमा हुए। इसी बीच फ़ोटोग्राफ़र पेतका ने जाने कहाँ से सारा साज सामान जुटा लिया। बोला—"तैयार!... मैं ध्वज के साथ टीम की ग्रुप-फ़ोटो ले रहा हूँ।" और, उसने कोई दो दर्जन बार खटका दबाया। वैसे यह तो सही है कि उनमें से एक भी फ़ोटो किसी ने आज तक नहीं देखा,

पर विभाग के विशेष फ़ोटोग्राफ़र ने हमारे फ़ोटो लिये, यह सच है और इस सच्चाई से इनकार भला कौन कर सकता हैं

निकोलाई का चेहरा उत्तेजना से तमतमाया और पसीने से नहाया रहा। वह स्वयं खुशी से खिला रहा कि भीड़ में उसके आसपास खड़े लोगों ने तो कम से कम उसकी बात की सच्चाई समझी ही।

"आओ, चलो, तैरा जाये," वह मेरी ओर देखकर बोला, "एक जगह ऐसी है जो मैंने अब तक किसी को नहीं दिखलाई, पर तुम्हें दिखला दूँगा। वहाँ पानी चाय की तरह गरम रहता है।"

"सचमुच?"

"जगह मैंने खुद खोजी है, आओ, चलो, घर आकर बदन अँगोछने की ज़रूरत न पड़ेगी। पर, इसके बाद तुम कपड़े की एक आलमारी घर लाने में मेरी मदद करोगे।"

मैं उसके पीछे-पीछे चल दिया। वह बोला—"मैं अच्छा बोला न?"

"क्या कहने हैं, निकोलाई!" मैंने उसे चढ़ाया।

पत्नी ने निकोलाई को झाड़ा!

उनके कमरे के वातावरण में एक तरह की ताजगी और उमंग थी। वैसे चीज़ें इधर-उधर पड़ी थीं। पर, कोई किसी नये घर में आता है तो ऐसा तो होता ही है। इससे मन की खुशी में कोई अन्तर नहीं पड़ता। जगह साफ और खाली थी, पर पलँग और इस्तरे-बिस्तरे एक कोने में जमा हो चुके थे, पलँग का ढाँचा दीवार से टिका खड़ा था, और खिड़की के एक दासे पर पर्दा पड़ा हुआ था।

हम कपड़े की आलमारी लिये-दिये पहुँचे तो निकोलाई की पत्नी हमारे चारों ओर दौड़ने-धूपने लगीं। वे जवान और देखने में शान्त मालूम हुईं। भौहें काली नज़र आयीं।

"अरे, तुम लोग यह खुद क्यों लाद लाये? तुम कहते तो ड्राइवर इसे यहाँ पहुँचा देता। मैं सोचती हूँ कि तुम्हारे पैर कट रहे होंगे।"

"उन चौपटचन्दों से ज़बान डालने कौन जायेगा? पानी पचता है उनके पेट में!" माथे से पसीने की बूँदें पोंछते हुए निकोलाई ने कहा।

"अच्छा, अच्छा, अब उसे यहीं छोड़ दो और जाओ हाथ धो लो। मैं थोड़े-बहुत नाश्ते का इन्तजाम करती हूँ। और, लाल बाबा, तुम कहाँ मटगश्ती करते रहे अब तक?"

"इस बात से तुम्हें क्या लेना-देना," निकोलाई ने ज़रा सख्ती से कहा। उसकी पत्नी की हल्की भूरी आँखें खूबसूरत और झलाझल थीं। उनमें गहराई ऐसी थी कि जब उन्होंने पलकें ऊपर कर मुझपर निगाह डाली तो मुझे लगा कि वे मुझसे कोई बड़ी, अच्छी और महत्वपूर्ण बात कहने जा रही हैं। यही नहीं, मेरा जी चाहा कि मैं भी उनसे कुछ ऐसा ही कहूँ। बोलीं—"तुम्हारा नाम तोल्या है न? मैं सभी कुछ जानती हूँ तुम्हारे

बारे में। निकोलाई ने अक्सर तुम्हारा जिक्र किया है और उनकी राय तुम्हारे बारे में बहुत अच्छी है। तुम मुझे केवल 'गान्ना' के नाम से पुकार सकते हो... माफ करना कि तमाम अंगड़-खंगड़ यहाँ इस तरह नज़र आ रहा है। मैं भी शिफ्ट खत्म कर अभी-अभी घर आयी हूँ, और घर है कि वहाँ तमाम काम ही काम पड़ा है।"

"गान्ना, तो आप काम करती हैं?"

"हाँ, मैं मिस्त्री हूँ... बैठो न! जब मेहमान को आराम नहीं मिलता तो मुझे खुद बड़ी परेशानी होती है।"

"लेकिन मुझे भूख नहीं है। मैं तो घर जा रहा हूँ।"

"एक हाथ जमाऊँ क्या?" मेरा कालर पकड़कर घसीटते हुए निकोलाई बोला, "मैं कहता हूँ कि अपना भला चाहो तो बैठ जाओ।"

"निकोलाई, निकोलाई! कोई घर आये मेहमान के साथ ऐसा व्यवहार करता है! तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है क्या? हे भगवान। भला कब साध पाऊँगी तुम्हें मैं?"

जवाद देने की चिन्ता किये बिना निकोलाई पास रखी कुर्सी पर ढह पड़ा—"खाने-वाने को लाओ कुछ।"

"आपके यहाँ कुर्सियाँ अद्भुत हैं," मैंने ज़रा सकुचाते हुए कहा।

"यह निकोलाई ने खुद बनायी है। मुड़ जाती है। किताबों का स्टैण्ड भी मुड़ जाता है। हम कभी एक जगह तो जमकर रहते नहीं। हमारे पैरों में तो सदा ही चक्कर बना रहता है। इसी लिए सारा सामान मुसाफिरी है।"

"लेकिन, आप लोगों के पैरों में चक्कर क्यों बना रहता है।?"

"सारे निर्माताओं का भाग्य ऐसा ही होंता है। एक जगह का काम खत्म होते ही हम दूसरी जगह के लिए चल खड़े होते हैं। पहली जगह कुछ करने को नही रह जाता। यानी, हम खानाबदोशों की सी ज़िन्दगी बिताते हैं... डेरा रहता है... आज यहाँ लगा तो कल वहाँ।"

उनकी इस बात से जितनी उदासी टपकी, उतनी ही थकान। फिर भी मुस्कराते हुए बोलीं—"यहाँ का काम भी जल्दी ही पूरा हो जायेगा। ऐसा ही होता है हमेशा। हम अक्सर बैरकों में ही रहते हैं और जब तक कहीं फ्लैट मिलने-मिलने की बात होती है तब तक हमारे कही ं और जाने का सवाल आ जाता है। यहाँ भी कोई दूसरा आ जायेगा।"

"आप यहाँ बनी क्यों नहीं रहती?" मैंने हमदर्दी से पूछा।

"अरे, नहीं, यह हो नहीं सकता। इस लाल-शैतान की आँत को बाँधकर कौन रखेगा?"

"ए, क्या बकती चली जा रही हो?" निकोलाई चिढ़ा।

"बेकार गरजो नहीं, समझे कि नहीं। तोल्या के सामने शर्म-संकोच की क्या ज़रूरत?" पत्नी ने उत्तर दिया।

"अच्छा, बकवास बन्द करो। जो खाना हो सो खाओ और मेरी जान छोड़ो।"

पत्नी मुझसे बोली—"निकोलाई ने नयी जगह कभी की खोज ली है। मेरे सरकार को गरमी में छुट्टी मिली तो सारे दुरुस्त दिल-दिमाग़ के लोग तो आरामगाहों में गये, मगर आपको ब्रात्स्क पनबिजलीघर निर्माण-स्थल पर जाने की सूझी। बोले—'वहाँ कुछ देखना-भालना है।' देखते हो... ऐसे हैं यह देवता।"

मैं तुरन्त ही निकोलाई की ओर मुड़ा—"निकोलाई, तुम ब्रात्स्क गये हो? तुमने तो कभी भी चर्चा नहीं की। क्या है वहाँ?"

"है क्या? नदी में चट्टाने हैं... ऐसी-ऐसी। धारा ऐसी तेज है कि बस। फाटक हैं। नगर अभी बसाया जा रहा है। कं...कंकरीट का काम वहाँ भी काफ़ी है। वहाँ चलो तो दीवारों के तख़्तों की तोड़-फोड़ ज़रा और रहे।"

और, मच्छरों की बात तो बतलाओ।"

"म...म...मच्छरों की क्या बात... मच्छर बदस्तूर काटते हैं। उनका आदी होना पड़ेगा... वैसे उनसे कहीं बदतर चीज़ों के आदी हो चुके हैं हम।"

गन्ना बोलीं—"तुम खाते क्यों नहीं, तोल्या? खाओ... मैं तो जानती हूँ कि हास्टल में रहने के मानी क्या होते हैं... कहाँ घर और कहाँ हॉस्टल! घर में तो चिन्ता-फिक्र के लिए माँ हैं, पर यहाँ कौन है? कम से कम हमारे यहाँ थोड़ा सा घर का बना शोरबा तो है... खा लो।"

"हाँ, खाओ और, देखो, जब जी चाहे बेतकल्लुफी से यहाँ चले आया करो," निकोलाई बोला, "यानी, यह कि जिस वक़्त भी खाने-पीने का जी चाहा, अपने यहाँ चले आये... गन्ना कुछ न कुछ खाने को तुम्हें हमेशा दे देगी... लड़की बुरी नहीं है।"

"इस पूरे साल में एक मीठी बात मुँह से यही निकली है!" गन्ना ने उदासी से मुस्कराते हुए कहा, "कहाँ पड़ी मिल गयी तुम्हें यह मिठास?.. बोलो! बोलो न!"

"अरे बाबा, जान छोड़ो न मेरी!"

निकोलाई मुँह बनाने लगा। पर, पत्नी ने इसकी कोई चिन्ता न की, और उसके दोनों कान पकड़ कर ऐंठने लगी प्यार से। मैं तश्तरी पर झुक गया।

"तोल्या, अपने कान गरम न करवाने हों तो, प्यारे, ज़िन्दगी भर शादी-वादी के फेर में न पड़ना... यह हालत हो जाती है।"

निकोलाई का चेहरा लाल हो उठा और नथुने फूल गये। उसने कनखी से देखा और कुछ बेहूदी गाली बकने-बकने को हुआ, पर होंठ खोले नहीं।

विटामिन 'सी'—

मैं अकेले कमरे में चारपाई पर पड़ा रहा, पूरे का पूरा बदन झुलसता रहा और तबियत खराब रही कि आँख लग गयी। मैंने सपने में देखे सेब—ठण्डे, रसभरे,

खटमिट्ठे, ओस की बूंदों से तर। इन जायकेदार सेबों के लिए मेरा मन कलप उठा, और आँख खुल गयी।

आख़िरकार अपनी बीमारी का कारण मेरी समझ में आ गया और मालूम हो गया कि मुझे क्या चाहिए। मुझे चाहिए था सेब—एक हो, एक न हो तो आधा ही हो, और आधा भी न हो तो एक टुकड़ा ही हो। टीन में बन्द पातगोभी के शोरबे और हेरिंग मछलियों के सिर से जैसे मुझे नफरत हो गयी कि देखूँ तो आँखों में दर्द होने लगे।

सवाल आया सेब खरीदने का। सो, सुबह बाजार गया, पर वहाँ सेब न मिलने थे, और न मिले। लेकिन, न जाने क्यों मैं थक इतना गया कि इर्कूत्स्क जाने के लिए अपने को तैयार न कर पाया। घर लौट आया।

अगर मेरे पास दो हज़ार रूबल होते तो मास्को उड़ जाता और सेब ले आता। ईमानदारी की बात है कि ज़रूर उड़ जाता और ज़रूर ले आता। और किसी चीज़ की जैसे इच्छा ही न होती। यानी, अगर मेरी जेब में दो सौ रूबल भी होते तो दो सप्ताह की अवैतनिक छुट्टी ले लेता, गाड़ी से ही मास्को चला जाता, और, जैसे भी होता, सेब ज़रूर ले आता...

बहुत कोशिश कर जैकेट तक हाथ पहुँचाया और जेबें उलटीं। रेजगारी गिनी तो उस अभागे बदनसीब तीन रूबल के नोट को लेकर कुल बत्तीस रूबल बने।

इसी समय फर्राश ओक्त्याब्रीना अन्दर आयी और छोटे चूहे की तरह चुपचाप फर्श धोने लगी। इस सिलसिले में उसने झुककर गीले कपड़े से तख़्ते रगड़ना शरू किये तो मेरी निगाह उसके दुबले-पतले बाजुओं और हमेशा पानी में डूबे रहने के कारण लाल रहनेवाले हाथों पर पड़ी। फर्श पर भरे पानी की तलैयों में उसने अपने नंगे, बड़े और गंदे पैर डाले तो चारों ओर छींटे उड़े।

मैं बोला—"ओकत्याब्रीना, दरवाज़े पर एक चटाई डाल दो। हम अपने पैर, याद से, रगड़कर पोंछ लिया करेंगे।"

वह कृतज्ञ भाव से मुस्करायी तो मैंने महसूस किया कि सचमुच हम कितने बड़े सुअर हैं।

"तुम्हारी उम्र कितनी है, ओकत्याब्रीना?"

"बाईस।"

"सचमुच?... कोई मुझसे पूछे तो मैं तो 19 से एक दिन ऊपर न बताऊँ।"

"उन्नीस!" वह ज़रा लजाते हुए हँसी और उसकी आवाज़ में उदासी घुल उठी—"मेरे तीन बच्चे हैं। मैं तो जाने कब की बूढ़ी हो चुकी हूँ।"

"कौन कहता है," मैंने उसे धीरज बँधाया, "अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है। और, यह तो और भी अच्छी बात है कि देखने से तुम्हारी असलियत का अनुमान नहीं होता और उम्र इतनी कम मालूम होती है। सिर्फ़ एक बात यह है कि तुम्हारे बदन में ताकत उतनी नहीं है। इतने-इतने कमरों के फ़र्श धोना खलता नहीं तुम्हें? तुम रोज़-रोज़ का

यह झंझट खत्म करो, हम खुद सब कुछ साफ-सुथरा रखने की कोशिश करेंगे।"

"ठीक है... ऐसी क्या बात है!"

"तुम बहुत दिनों से हो यहाँ?"

"छः महीने हुए... हम कुरील द्वीप जा रहे थे पर यहीं अटक रहे।"

"रहनेवाली कहाँ की हो?"

"कूर्स्क प्रदेश की।"

"वहाँ से चली क्यों आयी?"

"वहाँ की ज़िन्दगी में कोई रस नहीं है।"

"और, यहाँ?"

"यहाँ ठीक है।"

"लेकिन, तुम सीधे कुरील क्यों नहीं चली गयी?"

"हमने सोचा कि चलो, दो साल साइबेरिया में काम कर लें, उसके बाद कुरील चलेंगे। दुनिया ज़रा देखनी चाहिए न। काफ़ी मजा रहता है।"

"मजा?"

"हाँ!"

"और, सेब खाने का मन तुम्हारा नहीं होता?"

"होता है।"

औरत बिना किसी तरह की आवाज़ किये गायब हो गयी, और मैं फिर अपने विचारों में खो गया। मन पहले से अधिक कलपने लगा—थोड़े बहुत सेब तो मिलने ही चाहिए—पर, मिलें तो मिलें कहाँ से, कैसे मिले?

सेबों में विटामिन होते हैं। अगर मेरी याद धोखा नहीं देती तो विटामिन 'सी' ही होता है। तो, अगर मैं थोड़ा-सा विटामिन 'सी' खा लूँ तो शायद सेब का यह भूत मेरा पीछा छोड़ दे?

मैंने कपड़ा पहनना शुरू किया। कमरे में किसी और के न होने के कारण कराहने और जी भर कोसने की पूरी आज़ादी रही। इससे जहाँ मन थोड़ा हल्का हुआ, वहीं बहला भी। केमिस्ट की दुकान दूर थी। राह में मैं शराबियों की तरह लड़खड़ाते हुए, डगमग कदमों से चलता रहा। ज़्यादा समझ में न आया कि आख़िर कर क्या रहा हूँ!

सूरज आग बरसा रहा था। गरमी हद्द की पड़ रही थी। लेकिन, क्या दुकान, क्या कैण्टीन और क्या बाज़ार, न कहीं सेब नज़र आते थे, न नाशपातियाँ, न चेरी और न स्ट्राबेरी। मिलती थी सिर्फ़ डिब्बों में बन्द सिरके वाली पातगोभी। मैंने सोचा—"यह है साइबेरिया। पर, सवाल है कि यह तमाम चीज़ें यहाँ आख़िर आयेंगी कब?"

ख़ैर, तो केमिस्ट की दुकान पर पहुँचा और विटामिन की गोलियाँ खरीदीं तो डिब्बी पर 'मार्च 1952' लिखा देखा। अपने आप से पूछने लगा—"कही बहुत पुरानी तो नहीं है यह?.." गोलियाँ थीं पीली, छोटी-छोटी ऊपर से मीठी, पर अन्दर खट्टी। डिब्बी पर

छपा हुआ था—हर दिन एक या दो गोलियाँ खाइए। पर, मैं एक साँस में ही कोई बारह गोलियाँ खा गया, और इसके बाद फिर थोड़ी-सी और। खटास से शरीर गनगना उठा और मुँह के अन्दर भी थोड़ी तकलीफ़ का अनुभव हुआ।

यह था विटामिन 'सी'। यही तो सेबों में होता है। सेबों में भी ऐसी ही खटास होती है, और उनसे भी मुँह के अन्दर कुछ ऐसा ही सा लगता है। पर, दुनिया में अंगूर जैसी चीज़ भी तो होती है—तर कि जो खाये उसका जी उछल पड़े और देखे तो पीले बीज ऊपर से झलकें।

सचमुच के सेब—

विटामिन वाली डिब्बी खिड़की के दासे पर रखी रही, पर काफ़ी सारी गोलियाँ खा लेने के कारण जैसे उनसे जी भर गया। अब सचमुच के सेब खाने को मन करने लगा।

इस बीच तीन रूबलवाला नोट मैंने जोड़ लिया था। अब मेरे पास कुल मिलाकर 29 रूबल रह गये थे।

मैंने कपड़े पहनते हुए सोचा कि आख़िर को मैं बीमार हो ही गया। कान में जाने क्या सन-सन करने लगा। विचार बिखर गये। लगा कि जैसे सेब गरमी के दिनों में घर पर खाया करता था, वैसे अगर कहीं यहाँ मिल जायें तो शायद मुझमें नये सिरे से ताजगी आ जाये और मैं देखते-देखते चंगा हो जाऊँ।

मैंने अच्छे होते ही, 'आतोबुसियादा' नाम से एक लेख लिखकर समाचारपत्र में छपवाने का निश्चय किया—"हे, माता मरियम! इर्कूत्स्क का सफर बस से तय करनेवाला हर आदमी जैसे गुस्से से उबलता रहता है..." हमारे बस के अड्डे पर अक्सर ही जैसे लड़ाई टण्टे होते उसके मुकाबले ट्राय* की लड़ाई भी भला क्या रही होगी। मैं वहाँ खड़े-खड़े रोने-रोने को हो गया। भीड़ चीरकर बस तक पहुँचने की सकत मुझमें न रही। लेकिन, इस पर भी सेब खरीदने के लिए इर्कूत्स्क तो मुझे जाना ही था।

अगर इर्कूत्स्क के यातायात का व्यवस्थापक किसी तरह मेरे हाथ लग जाता तो बाबा आदम के ज़माने की ट्रामों और घण्टे-घण्टे पर छूटनेवाली बसों का ज़वाब मैं उससे तलब करता, उसकी गर्दन थामकर मुस्कराते हुए इसमें बैठाल देता और कहता—"भाई मेरे, तुम खुद इनमें एक दिन-रात सफर करो... ज़रा देखो तो।" यही नहीं, उसके साथ ही दिमाग़ की रगें सीधी करने के लिए बस में ठूँस देता उन्हें जो भरी गरमी में साइबेरिया को बिना सेबों के छोड़ देते हैं, कामगारों के कपड़ों की धुलाई के लिए लांड्री का इन्तज़ाम नहीं करते, और पेशगी तनख़्वाह नहीं देते!

आख़िरकार दोपहर के बाद जैसे-तैसे इर्कूत्स्क पहुँचा। टिकट के दो रूबल लगे तो

*यूनान के महाकवि होमर के 'इलियड' में वर्णित नगर।

जेब में 27 बाकी बचे।

मैंने दुकानों और काफ़ी हाउसों और कैण्टीनों और रेस्तराओं के चक्कर पर चक्कर लगाये, पर सेब कहीं नज़र नहीं आये। एक गिलास सोडा पिया तो पेट में तूफ़ान-सा उठ खड़ा हुआ। गरमी से तचता हुआ बदन पसीने-पसीने हो गया। मैं विस्मय से सोचने लगा—"क्या यह सारा तूमार सिर्फ़ सेबों के लिए है? अगर नहीं, तो कहीं मुझे टाइफाइड तो नहीं हो गया? जो भी हो, सेब तो खोजकर ही रहना है!

मन में निश्चय रहा कि दूसरी दुकान वहाँ नुक्कड़ पर होगी। वहाँ तो सेब होंगे ही, और सेब न होंगे तो कोई न कोई दूसरा फल ज़रूर होगा। कहना न होगा कि यही निश्चय पैरों की शक्ति बनता और उन्हें आगे बढ़ाता रहा। मैं दौड़ा और एक कोने से दूसरे कोने तक छान मारा, पर कहीं कोई फल न दिखा। बस, एक छोर से दूसरे छोर तक चुनी दिखलाई पड़ी शीशे के अमृतबानों और टीन के डिब्बों की क़तारें पर क़तारें।

रह-रहकर ख़्याल आया कि मास्को की एक-एक सड़क के एक-एक कोने में इस समय सन्तरे, तरबूज, अंगूर और सेब बिक रहे होंगे। सेब सूखी घास में लिपटे बक्सों में बन्द होंगे। उनसे मीठी-मीठी महक आ रही होगी। दाँतों के नीचे पहुँचने पर कुच्च-कुच्च की आवाज़ करते होंगे... कहीं मेरा दिमाग़ तो ख़राब नहीं हो रहा है? यह चीज़ तो मेरी सनक बनती जा रही है। सचमुच मास्को कितनी दूर है!

शहर का बड़ा बाज़ार आशा की अन्तिम किरण लगा। मुझे लगा कि सेब तो वहाँ भी क्या ही होंगे! इस पर भी गया मैं वहाँ भी।

हे भगवान! चीज़ों का अम्बार लगा देखा। मछलियाँ ऐसी कि मास्को में भी शायद ही मिले। फिर तरह-तरह के गोश्त, अखरोट, सिरके के खीरे, सिरके की पातगोभी, पीपे के पीपे शहद, और बोरे के बोरे आटा। उस पर शोरगुल, दौड़धूप, बेचनेवालों की चीखें और माल की तारीफें।

"तोल्या! हे, तोल्या... आ!"

कोई मुझे बुला रहा है? मुड़ा तो अचरज में पड़ गया। हम सफर मक्खीचूस ग्रिगोरी, मछली की क़तार में, तराजुओं के पीछे खड़ा दिखा। उसने मोमजामे का पेशबन्द बाँध रखा था और उसके लिसलिसे हाथ में एक लम्बी-चौड़ी मछली थी।

मैंने कहा—"हलो, ग्रीश्का, तुम यहाँ क्या कर रहे हो?"

"अरे, यह न पूछो... लम्बी कहानी है... कहानी ऐसी है कि फिल्म तैयार हो जाये। देखते हो, यह क्या हो रहा है? लोग ठीक ही कहते हैं कि आदमी साइबेरिया में खोता नहीं।"

"लेकिन, ग्रीश्का, तुम तो ब्रात्स्क जा रहे थे। उसका क्या हुआ?"

"गोली मारो ब्रात्स्क को! लोग हमें एक बियाबान जंगल में ले आये और बीच में लाकर छोड़ दिया। जंगल ऐसा बीहड़ कि बाँस खड़ा न हो। बोले—'चलो, चालू हो

जाओ। जंगल साफ कर डालो।' खैर, ता हमने इधर-उधर नज़र दौड़ाई और कुछ पुराने काम करनेवाले लोगों से बातचीत की। वे बोले—'हम भेड़ियों की तरह रहते हैं... एक टका बचाये नहीं बचता... कमाई सिर्फ़ मुँह से पेट भर को होती है। हमें तो अब यह भी याद नहीं कि आलू कैसे होते हैं! छः महीने से शकल नहीं देखी।' वे मच्छरदानी के अन्दर बन्द होकर काम करते हैं, और इस पर भी कभी-कभी उनके मुँह ऐसे सूज जाते हैं कि बस! तो, भाई, मैंने एक ट्रक किराये पर की और इर्कूत्स्क के इस निर्माण-स्थल में चला आया। घर कुछ नहीं लिखा। कुछ लिखने की बात भी समझ में न आयी। सुना कि ओलखोन के मछुए दोनों हाथों से रकम बटोरते हैं। बैकाल गया, कुछ दिनों तक उन लोगों के साथ रहा और सब कुछ देखा-समझा। मालूम हुआ कि ऐसी कोई बात है नहीं। सब कुछ तकदीर का खेल है। कोई हज़ारों कमा लेता है, और किसी को फूटी कौड़ी नसीब नहीं होती। इसलिए, ओलखोन से सालमन यहाँ लाकर बेचने का मनमाना पेशा मैंने अपना लिया। वहाँ मछुए पूरी की पूरी मछली एक रूबल में दे देते हैं और यहाँ एक किलो* के खड़े होते हैं बारह रूबल। यह समझो कि मैंने अब तक दो हज़ार सीधे कर लिये हैं। वैसे, यह है कि मिलिशिया के यह सिपाही बड़ी मुश्किल करते हैं। यहाँ तक ले आना आसान नहीं होता... हाँ, तो यह मछली लेना चाहते हो तुम? तुम्हें आधी कीमत पर दे दूँगा। देखो तो, कैसी मोटी है, हत्यारी!"

उसने पूँछ के सहारे एक बड़ी मछली उठाई, पर मेरी तबियत तो उसे देखते ही मिचलाने लगी।

"अच्छा, और दिमीत्री स्त्रेपेतोव, वस्योक और बुगाई वगैरह के क्या हाल-चाल हैं?"

अरे, वे वहीं काम कर रहे हैं... बेवक़ूफ़ हैं। उससे अच्छा कहीं कुछ उनकी समझ में ही नहीं आता... वह भी कोई काम है! पर, वे महज हँस देते हैं और कहते हैं—'हमारे लिये यही काफ़ी है।' ल्योश्का की तो एक बार जान नहीं निकाली और बाकी सारी दुर्गति कर डाली उन्होंने।"

"किसलिए?"

"वही ताश मुसीबत की जड़ बना। मैं तो पहली निगाह में ही आदमी भाँप गया था। पर वे उसके साथ खेलने बैठ गये, और बैठ गये तो अपने प्यारे ल्योश्का ने उन्हें दुहकर रख दिया—पूरे डेढ़ हज़ार जीता और रकम लेकर उड़ दिया। पर, जंगल में आदमी जायेगा तो आख़िर जायेगा कहाँ! लेकिन वे भी उसकी जान भला कहाँ छोड़ते! उन्होंने उसे जा पकड़ा। वह बोला—'मैं तो मज़ाक कर रहा था!' इस पर उन्होंने उसकी जी भर मरम्मत की। वह रोने-पीटने लगा और उसने अपने ताश के पत्ते टुकड़े-टुकड़े कर डाले... अब ज़रा अपनी सुनाओ... क्या रंग-ढंग हैं? इर्कूत्स्क में कोई काम-वाम मिल गया तुम्हें?"

"मैं निर्माण-स्थल पर कंकरीट बिछाने का काम करता हूँ।"

---

* लगभग एक सेर।

"मैं तो जानता था! लेकिन, तुम हो आदमी के तामलोट, समझे! मैंने तो एक नज़र डाली, एक बार नाक बजाई और सारा मामला समझ लिया कि बाबा, यह काम अपने राम के लिए नहीं! म्याँ, छोड़ो यह अपना कूड़ा काम... आ जाओ मेरे साथ... तुम्हें साझीदार बना लूँगा... मुझे भी एक मददगार की ज़रूरत है... साथ काम करने में खतरा भी कोई न रहेगा। हम दोनों मिलजुल आठ हज़ार की रकम सीधी कर लेंगे और इसके बाद अपने-अपने घर वापस! चाहोगे तो कुछ मछलियाँ मास्को लेते चलेंगे। वहाँ तो बीस रूबल किलो बिकेगी... अव्वल दर्जे की मछली होती है!"

मैंने हाँफते हुए पूरे बाज़ार का चक्कर लगाया और इसके बाद ठिठककर सोचने लगा कि आख़िर मैं जा कहाँ रहा हूँ?

ठीक इसी समय ऐन अपनी सीध में मैंने सेब देखे।

मेरी आँखों के आगे की हर चीज़ इस तरह चकमक करती रही कि मैंने सोचा—"कहीं शलजमों को तो मैं सेब नहीं समझ रहा?" पर, नहीं, पाल के नीचे काउण्टर पर एक छोटा बक्सा रखा हुआ था, और उसमें छोटे-छोटे, हरे-हरे, अधकचरे सेब भरे हुए थे। सेब ऐसे थे जैसे वसन्त के दिनों में हवा झकझोरकर ज़मीन पर गिरा देती है। एक लम्बे क़द और काकेशियन नाक नक्शेवाला सुन्दर सा आदमी तराजू के पीछे खड़ा था और ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था—"सचमुच के काकेशियाई सेब! मीठे और रसभरे!"

बेचनेवाले ने एक किलो सेब की कीमत तीस रूबल बतलाई। मैंने आधा किलो खरीदा, और एक सेब मुँह में रखा। दाँतों से कुचला तो खटास का खास मजा आया। यही तो होता है सेब का ज़ायका! जानते हैं आप कि कैसा होता है?

जब मैं अपने होश में आया और सामान्य हुआ तो मैंने अपने को एक दुकान के पास तख़्तों के ढेर पर बैठा पाया। बड़ा ताज्जुब हुआ कि मिलिशिया के किसी सिपाही ने पियक्कड़ समझकर अब तक मेरा चालान क्यों नहीं कर दिया?

बस के अड्डे की ओर बढ़ा तो फिर 'आतोबुसियादा' की कहानी आँखों के आगे साकार हो गयी। यानी, कोई चार या पाँच घण्टों के बाद ही घर पहुँच सका। फिर, घर पहुँचा तो बची-बचाई सकत बरसाती की सीढ़ियाँ पार करने में खप गयीं।

ज़रा सोचिए कि एक मुनाफाखोर यह सेब काकेशस से यहाँ ले आया, और उसे कुछ भी नहीं लगा, पर कमर्शियल स्कूल के इन दीक्षितों के दिमाग़ में न आया कि वे उक्रइन या मध्य एशिया से सेब यहाँ ले आते! क्या मज़ाक है!

बस, यही एक अन्तिम विचार था जो स्पष्ट रूप से उस दिन सामने आ सका। फिर रात में एम्बुलेंस कार आयी और मुझे अस्पताल ले गयी।

चिट्ठी का मसविदा–

"प्यारी प्यारी मेरी माँ, तुम भला मुझे पत्र क्यों नहीं लिखतीं? मुझे तुम्हारे बारे में कोई समाचार नहीं मिलते। तुम्हारी आँखें कैसी हैं? मुझे केवल तुम्हारा पहला पत्र मिला था। उससे मैंने जाना कि मेरे विषय में सचमुच तुम कितनी चिन्तित हो!

"तुम चिन्ता न करो। ईश्वर के लिए तुम कुछ भी सोच-फ़िक्र न करो। काश कि तुम जानतीं कि यह जगह कितनी अच्छी है, और भाग्य ने किस तरह यहाँ मेरा साथ दिया है। हास्टल के साथी लाजवाब हैं, और हमारी टीम निर्माण-स्थल में सबसे अच्छी मानी जाती है।

"मैंने तो कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि साइबेरिया में इतना दूध होता है। मैं पेट भर-भरकर दूध पीता हूँ–हर समय दूध ही दूध पीता रहता हूँ।

"मुझे अपना काम पसन्द है–काम काफ़ी दिलचस्प है। यहाँ आने के लिए मेरे मन में ज़रा भी दुख या पछतावा नहीं है। तुम मेरे कपड़ों के लिए परेशान न हो। मैंने तुम्हें बतलाया कि मेरा सूट ठीकठाक है और तनख़्वाह मिलते ही मैं एक कोट के लिए रूबल अलग निकालकर रख दूँगा। फिर, तुम जानती हो कि जाड़ा तो अभी काफ़ी दूर है।

"यहाँ के जीवन में बड़ा आनन्द है।" पास ही एक क्लब है। वहाँ अक्सर फिल्में दिखलाई जाती और नाच होते हैं। फिर, यह कि किसी चीज़ की दरकार होती है तो आदमी बस में बैठता है और इर्कूत्स्क चला जाता है। वहाँ बाजार में सब कुछ मिलता है–चाहे तो अण्डे, चाहे सालमन और चाहे फूल-फल!

"और मच्छरों के बारे में तुम्हें वे कहानियाँ किसने सुनाई? मैं इतने समय से यहाँ हूँ पर मैंने तो आज तक एक मच्छर नहीं देखा। मच्छर तो केवल तैगा में होते हैं। पर, जहाँ हम हैं यहाँ की जलवायु और यहाँ के दृश्य तो बिल्कुल वैसे हैं जैसे मास्को के आसपास के। ज़रा-सा भी अन्तर नहीं है। सिर्फ़ इतना है कि चारों ओर अलंघ्य पहाड़ हैं, और इतने फूल हैं, इतने फूल हैं कि बस!

"माँ, एक कृपा करोगी? देखो, साशा से मुलाकात हो जाये न, तो उससे मेरा बहुत-बहुत स्नेह कहना और कहना कि मैं उसे पत्र तो लिखना चाहता हूँ पर उसका नया पता मेरे पास नहीं है। सो भेज दे।

"बस, और क्या?"

"देखो, अपना ध्यान रखना, और मेरी चिन्ता न करना। और हाँ, किसी से उधार लेकर रूबल मेरे पास भेजने की तो बात ही न सोचना। तुम्हें पता है कि कंकरीट-मास्टर कितना कमाता है? यानी यह समझो कि कोई पन्द्रह सौ तक। मैं भला क्या करूँगा इतने रूबलों का? मैं तो चाहता हूँ कि थोड़े से रूबल बचाऊँ और तुम्हारे पास भेज

दूँ। तुम्हारा जाड़े का कोट काफ़ी पुराना है—बहुत फट-फटा गया है।

अनगिनत चुम्मियाँ—

तुम्हारा बेटा,

तोल्या—"

"पुनश्चः मैं तुम्हें यह लिखना भूल गया कि इधर दो दिन मेरी तबियत ज़रा ठीक नहीं रही। तुमने कहा कि मैं अपने स्वास्थ्य के बारे में तुमसे कभी कुछ न छिपाऊँ, इसीलिए मैंने तुम्हें इसकी सूचना दे दी। वैसे कोई फिक्र की बात नहीं। हवा-पानी के फेरबदल का थोड़ा-बहुत असर तो शरीर पर पड़ता ही है।

"कृपया वीक्तोर से कहना कि मुझे बेकार पत्र न लिखे। मैं ज़वाब देता नहीं, और वह बराबर लिखता रहता है।"

हिस्सा चौथा

वार्ड नम्बर पाँच–

"तू गलीज कहीं का, कौन पूछता है तुझे! मैं तुझसे ज़रा भी बात करना नहीं चाहता! हटा ले जा अपना पलँग यहाँ से! तुझे तो पागलों के वार्ड में जाना चाहिए। वहाँ तेरे दिमाग़ का इलाज कायदे से होगा। मैं कहता हूँ कि तू यहाँ से चला जा, और अगर तू नहीं जायेगा तो मैं चला जाऊँगा।"

"मीश्का, तुम पागल हो गये हो क्या?"

"हाँ, मैं पागल हो गया हूँ, क्योंकि तेरे साथ रहकर कोई सरेख रह नहीं सकता। सोचने की बात है... यह दुधमुँहे बच्चे, अक्ल के कच्चे, नाक छिनकने का शऊर नहीं, किसी काम के लायक नहीं, आते हैं और किकियाना शुरू कर देते हैं। तुम्हें मालूम होना चाहिए यह सब यहाँ पसन्द नहीं किया जाता... मेरा बस चलता तो तुम्हारी खाल उधेड़ डालता... एक दर्जन पेटियाँ तोड़ डालता तुम्हारी पिछाड़ी पर!"

"इसका कारण है... शायद तुमने ज़िन्दगी में कभी कुछ बेहतर देखा नहीं!"

"देखा, देखा क्यों नहीं! मैं छः साल तुम्हारे उस मास्को में रह चुका हूँ..... कुछ नहीं तो एक दर्जन जोड़ी जूते तो घिस ही गये होंगे स्त्रोमीनका की पटरी पर। नौ बजने में पन्द्रह मिनट पर क्लास में पहुँचने के लिए हर दिन सुबह दौड़ते हुए ओखोत्नी र्‍याद की सड़क पार करता था। बच्चे हो तुम, मैं मास्को को तुमसे कहीं अच्छी तरह जानता हूँ। और, साइबेरिया को भी कुछ कम नहीं जानता! तुम चाहते हो कि सब कुछ पका-पकाया, तैयार मिल जाये तुम्हें! तुम चाहते हो कि इर्कूत्स्क को याकूत्स्क से जोड़ने वाली लाइन ज़मीन के नीचे बनी-बनाई, और कुजमीखा में बोल्शोई थियेटर खुला-खुलाया मिल जाये! पर, तुम्हें पता है कि यह सारी जगहें जंगल है! बियाबान जंगल! अलास्का! ऐंटार्कटिक! तुम रेलवे की पटरी से सौ मील इधर निकल आओ और फिर देखो। तुम्हें अपने को कुक, मेगालान या परज्हेवाल्स्की समझना और बनाना पड़ेगा! आज तक साइबेरिया को न किसी ने हाथ लगाया, न इसकी खोज की, और न इसका अध्ययन किया। यह तो एक ऐसा ग्रह है जो अब तक बिल्कुल अछूता है, और जख़ीरे यहाँ ऐसे हैं कि सारी दुनिया का मुँह भर दें। तुम्हें पता है कि इस समय हम कोयले के जख़ीरे के ऊपर बैठे हैं? हाँ, हाँ, मैं ठीक कह रहा हूँ, तुम्हारे पलँग के नीचे कोयला

है! कुजमीखा में तो लोग कोयले की मदद से घर गरम रखते हैं। पहाड़ी से ज़रा नीचे उतर जाओ और किसी खड्ड में फावड़ा गड़ाकर देखो। कोयला ही निकलता चला आयेगा। जाओ और जाकर एक निगाह तो डालो। तुम इस जगह के लिए रवाना हुए थे तो तुमने एक बार भी सोचा था कि तुम कहाँ जा रहे हो? तुमसे उम्मीद की गयी थी कि तुम कुछ खोज का काम करोगे—घुटने-घुटने तक तो क्या, गर्दन-गर्दन तक दलदल में धँसकर कोई न कोई सड़क बिछाओगे! और, तुम, तुम हो कि यहाँ पड़े लम्बी-लम्बी साँसें ले रहे हो कि साइबेरिया किसी काम का नहीं है, साइबेरिया की ज़मीन के नीचे गाड़ी नहीं चलती! निकल जाओ तुम यहाँ से, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूँगा!"

"क्या यह नहीं हो सकता कि आदमी नयी खोज करे, पर ज़रा आदमी की तरह जिये?"

" 'आदमी की तरह से तुम्हारा क्या मतलब? शायद तुम्हारा मतलब है कि रहने के लिये एक शानदार बँगलिया हो, उसमें आधुनिक सुख-सुविधा की पूरी व्यवस्था हो, और तुम 'जिम्' मोटर पर सवार ही सवार अपना सारा काम निबटा लिया करो। पर, आख़िर यह 'जिम' मोटरें कौन तैयार करेगा? क्या था चालीस साल पहले का पुराना रूस? पुराना रूस था गरीबी से टूटा हुआ, तार-तार और जंगली! तो, जुमा-जुमा आठ ही रोज तो हुए हैं, यानी अभी चालीस ही साल तो हुए हैं रूस को ताजी हवा में पहिली साँस लिये। यानी, निर्माण का जो भी थोड़ा-बहुत काम शुरू हुआ है, इन चालीस सालों में ही तो हुआ है। इतनी बड़ी सल्तनत से हमें वसीयत में मिले खाली पेट, नंगे बदन, जहालत और एक या दो मोटरें, सो भी अमरीकी 'फ़ोर्ड', यानी विदेश में बनी। हमने नंगे हाथों आग उगलती बन्दूकों से लोहा लिया, हम अंधकार में भटकते फिरे, हमने कितने सही-गलत काम किये, हम भूखे रहे, पर हमने चमत्कार कर दिखाया। आख़िरकार हमने दुनिया को फ़ासिस्टों से बचा ही लिया। तब से अब तक हम बराबर निर्माण ही निर्माण करते रहे हैं, जैसे भी हुआ है, आगे ही आगे बढ़ते रहे हैं, और विकास ही विकास करते रहे हैं। और, तुम्हारा ख़्याल है कि इधर-उधर चक्कर लगाने के लिए इस समय तक तुम्हारे पास 'ज़िम' होनी चाहिए! तुम सोचते हो कि जितना काम होना था, सारा कुछ हो चुका? नहीं, मेरे दोस्त, नहीं, बिल्कुल नहीं। चीज़ें तो अब शुरू हो रहीं हैं.... हाँ, श्रीगणेश अब हो रहा है! ऐसे में तुम उम्मीद करते हो कि तुम यहाँ आयोगे तो तुम्हें सब कुछ सजा-सजाया मिलेगा—फ़्लैट, फ़्लैट में गैस और टेलीफोन, पाक-साफ़ चिजिक, और हर दुकान में अनन्नास! तुम कैसे समझते हो कि अरबात की 'फ़्रूक्ती' यानी फल की दुकान में 16 रूबल किलो बिकने वाले थोड़े-बहुत अनन्नास लेने और खाने को मेरा जी नहीं करता? लेकिन, इसके लिए हमें यहाँ पहले एक दूसरा मास्को बसाना पड़ेगा। बदकिस्मती से धरती कोई एक बड़ी राजधानी नहीं है। पूरबी साइबेरिया के सबसे बड़े शहर इर्कूत्स्क में केवल एक ट्राम-लाइन है, और

यहाँ के लोगों ने अब तक ट्रालीबस की शक्ल नहीं देखी। तुम समझते हो, इसका मतलब क्या है? इसक मतलब यह है कि हमारे चारों ओर के जंगल अब तक अछूते हैं, धरती अब तक अछूती है। अभी तुम्हारे और हमारे लिए सुख, चैन और आराम की बात उठाने का समय नहीं...... नहीं, अभी बहुत देर है वह घड़ी आने में। जो असली इंसान की तरह सम्मान से जीना चाहते हैं और हर मामले में दूसरों का मुँह ताकना नहीं चाहते, वे अछूती ज़मीन तोड़ रहे हैं और फ़िजूल की सड़ायंध फैलाने के बजाय ठोस काम कर रहे हैं।"

"मैं यह सब समझता हूँ, मीशा! तुम्हें याद नहीं, मैंने एक बार तुमसे सहमत होते हुए कहा था कि रूसियों ने जितनी मुसीबतें सही हैं, अगर उनकी आधी भी अमरीकियों को सहनी... पड़तीं तो इसका एक सौवाँ हिस्सा भी उनके किये न होता..."

"खास बात तो यह है कि कौन काम किस ढंग से किया जाता है, किस रफ़्तार से किया जाता है! ज़रा यही सोचो न कि सिर्फ़ पिछली लड़ाई में हमें कितना नुकसान उठाना पड़ा और कितने संकटों का सामना करना पड़ा! फिर यह कि हम तो इधर अपनी जानें कुरबान करते और दिलों का खून बहाते रहे, और वे रक़में भुनाते और अपनी जेबें गरम करते रहे। तुम्हारे पिता लड़ाई में मारे गये..... मारे गये न? आख़िर किसलिए उन्होंने अपनी जान दी? मेरा ख़्याल है कि उसी चीज़ के लिए, जिसके लिए ज़रूरत पड़ने पर तुम और हम भी अपनी जानों की बाजी लगा सकते हैं।"

"मीशा, इसमें कुछ भी ऐसा नहीं तो मैं नहीं समझता.... मैं यह बात खूब अच्छी तरह समझता हूँ कि हमारे देश ने इतने कम समय में जिस तरह चमत्कार कर दिखाया है, वह आम तौर पर कल्पना में भी नहीं आ सकता। पर, साइबेरिया कोई अनखोजा ग्रह है, यह विचार ज़रा मुझे नया-नया सा लगता है। लेकिन, कोई बात नहीं, मैं उसकी खोज के लिए राजी हूँ......"

" 'राजी हूँ!' जैसे कि कोई तुम्हारी मिन्नतें कर रहा है,.... तुमसे याचना कर रहा है! यह तो तुम्हें करना ही चाहिए! बात समझ में आती है? कोई तुमसे कहता नहीं! करना चाहो करो, न करना चाहो तो भाड़ में जाओ! जाओ, आराम की ज़िन्दगी बिताओ! यहाँ हाथ मैले हो जायेंगे! तुम चले जाओगे तो एक गुबार सा रह जायेगा और बस! ऐसे कितने ही लोग होते हैं जो चले जाते हैं तो कुछ भी बाकी नहीं रह जाता। लेकिन, इसके उल्टे, अगर तुम आदमी हो तो तुम आराम की ज़िन्दगी के पीछे न दौड़ो। बड़ी और महान खोजें करो—खोजें! सुनते हो? अगर आदमी हो तो आदमी की तरह जिओ और काम करो!"

"मैं तुमसे सहमत हूँ। मुझे ज़रूर यही करना चाहिए! इसी के लिए तो मैं यहाँ आया हूँ! पर, जब यह सुअरपन मेरे सामने आता है और मेरी निगाह दूसरों के सहारे जीने वाले लोगों के इस मेले पर पड़ती है तो....."

"तो, तुम हार मान जाते हो और माँ की गुहार करने लगते हो?"

"नहीं, लेकिन मेरी हिम्मत टूट जाती है।"

"तो, तुम खुद भी इस मेले में शामिल क्यों नहीं हो जाते? खुद भी दूसरों के सहारे जीना शुरू क्यों नहीं कर देते? बड़ा शानदार हल है इस उलझन का.... क्या राय है? ज़वाब क्यों नहीं देते?"

"ऐसी-तैसी में जाओ!"

"गाली-गलौज..... ख़्याल यह भी अच्छा है। तो, आओ, अगल-बगल बैठ जायें और बलबलायें! शायद इससे दुनिया से इन हरामखोरों का कोढ़ कट जाये! ज़रा अपनी बात तो बताओ कि भला, खुद तुमने क्या किया है इस कोढ़ की सफ़ाई के लिए? तुम, बस, बैठे नाक छिनकते रहते हो, है न? डर लगता है? तुमने कभी उनकी आँख पर एक भरपूर हाथ ज़माने की कोशिश की है? यहाँ आकर क्या शानदार काम सीखा तुमने? झूठमूठ खेपों की गिनती बढ़ाना? बड़ा शानदार काम है, मेरे भाई! बड़ी तरक्की करोगे! नहीं, साहबजादे, यह नहीं चलेगा! दोनों हाथ लड्डू नहीं हो सकते! ख़रगोश के साथ दौड़ लगाओगे और शिकारी कुत्तों के साथ शिकार करोगे तो न दौड़ सधेगी और न शिकार हाथ लगेगा..... न तीतर में रहोगे और न बटेर में। पिछले चालीस वर्षो से बराबर सिरे दो रहे हैं—अगर तुम हमारे साथ नहीं हो तो तुम हमारे खिलाफ़ हो! संघर्ष के इस दौर में यह थकान आख़िर आयी कहाँ से? मुझे तो ताज्जुब होता है तुमपर। तुम्हारे क़िस्म के लोग हर आदमी के अपना उल्लू सीधा करने और हरामखोरों के ईमानदार लोगों से बेहतर ढंग से जीने का रोना भर रोते रहते हैं, और खड़े होते हो तो लड़खड़ाते हो, और बस! तुम्हें डर किस चीज़ का है? ज़रा लोगों पर तो एक निगाह डालो, जनता की इस शक्ति को तो देखो! इतिहास में कभी किसी ने सुना था इस ताक़त का नाम। बच्चों की तरह ठुनकने और दूसरों के आड़े आने के बजाय ज़रा बदन लचाओ, मेहनत करो, हाथों में घट्टे डालो! कुछ काम करो, सिर्फ़ गाल ही न बजाते रहो! उफ़, तुम्हारे जैसे लोगों से कैसी नफ़रत होती है मुझे!"

"तुम आदमी ऐसे सीधे हो, जैसे तख़्ता। तुम्हें तो तरह-तरह के गम्भीर अवसरों के लिए भाषण लिखने चाहिए—बड़े कामयाब रहोगे। आख़िरकार चीजों के अन्दर पैठने और विरोधी भावनाओं रखने का अधिकार तो हर एक को है!"

"नहीं, लेकिन तुम्हें नहीं है! तुम सिर के ऊपर कम्बल डालो, अपना चेहरा ढक लो और अपनी विरोधी भावनाओं की नुमाइश करो, पर उसका धुआँ बाहर न आने दो। तुम्हारे कारण मैं चूर-चूर हो जाता हूँ... सुन रहे हो, थक जाता हूँ मैं!"

उसने ताक़त से अपने बाजू पर हाथ रखा और जल्दी से वार्ड से बाहर निकल गया। रह गया मैं—मन खराब, और तन ऐसा जैसे किसी ने जान निकाल ली हो। मेरे विचारों की दुनिया में फिर तूफ़ान आ गया। हवा के कारण खिड़की खड़ाक से बोली और उसपर फैली मच्छरदानी दूसरी ओर को उभर आयी। अचानक ही गलियारे में लोगों

के दौड़ने और घबड़ाहट से चीखने-चिल्लाने की आवाज़ें कानों में पड़ीं। नर्स की चीख सुनी—"बड़ी डाक्टर कहाँ हैं! वार्ड नम्बर पाँच का ओलखोन्स्की बरसाती में बेहोश हो गया है! स्ट्रेचर!"

मैं वार्ड से झपटा और सीढ़ियाँ पार कर नीचे आया। देखा कि कंकरीट की सीढ़ियाँ खून से तरबतर हैं और अरदली औरतें मीशा को स्ट्रेचर पर लाद रही हैं।

उसका चेहरा मुर्दे की तरह पीला था। उसे होश न था। उसने अपने घाव पर बँधी पट्टी चीर डाली थी और सीढ़ियों पर खून के थक्के के थक्के चू रहे थे।

सो, सीढ़ियों के रास्ते और गलियारे में खून पड़ा रहा कि लोग उसे महरम-पट्टी के कमरे में ले आये। डॉक्टर चारों ओर भाग-दौड़ करने लगे। उसे कैंफ़र की सुई लगायी गयी और ऑक्सीजन के लिए चिल्लाते भी मैंने लोगों को सुना।

मेरा सारा शरीर पत्ती की तरह काँपने लगा... मीशा लाकर बिस्तर पर लिटा दिया गया। उसका चेहरा अब भी पीला था, और उसे होश अब तक न आया था।

गलियारे में पड़ा खून धोया जाने लगा।

दुनिया में शान्ति कहीं नहीं!

दुनिया में शान्ति कहीं नही—यहाँ तक कि इस अस्पताल में भी नहीं! लोग मेरी ज़िन्दगी में धँस आते हैं और ऐसी-ऐसी बातें कहते हैं कि मेरा मन मथ उठता है। यही नहीं, वे जिद से मुझे आगे ठेलते और मुझसे तरह-तरह की माँगें करते हैं। यह लोग तरह-तरह के होते हैं, एक दूसरे से बिल्कुल अलग। यह मेरे अन्तर के चारों ओर जमा हो जाते हैं और मेरी रातों की नींद हराम कर देते हैं।

अस्पताल मरीजों से भरा हुआ है। कहीं तिल रखने को जगह नहीं है। अचानक ही निर्माण-स्थल की ज़िन्दगी का एक दूसरा पहलू मेरी आँखों के आगे आ गया है। मैं देखता हूँ कि यहाँ बड़ी दुर्घटनाएँ होती हैं और कितने ही लोग बीमार पड़ते हैं। ऐम्बुलेंस की गाड़ी दौड़ती और दुर्घटनाओं के शिकार हुए लोगों को अस्पताल लाती ही रहती है।

मैं सर्जिकल विभाग में हूँ, क्योंकि जब मैं यहाँ लाया गया था तो पेट की बीमारियों के विभाग में कोई खाली जगह न थी।

अभी उस दिन निर्माण-स्थल के पाँचवे विभाग से एक कंकरीट बिछानेवाला यहाँ लाया गया। वह मेरी ही तरह ट्रकों की कंकरीट उलटने का काम कर रहा था कि एक बार टब के पास ही बना रह गया और ट्रक पिछड़ी तो वह बीच में दब गया। नतीजा यह कि उसकी दो पसलियाँ पिचनी हो गयीं। होने को तो यह हालत मेरी भी हो सकती थी!

एक ट्रक साँचा-पुल से इस तरह उछली कि चूर-चूर हो गयी। ड्राइवर ने तो, समय रहते, जैसे-तैसे, कूदकर जान बचा ली, पर उसके पास बैठा फ़ोरमैन चपेट में आ गया। अस्पताल लाया गया तो नाम भर को साँस दिखी। आख़िरकार ऑपरेशन की मेज पर दम निकल गया।

एक दिन रात को एक लड़की लायी गयी। उसकी पीठ में चाकू लगा था। मेरे कमरे के दरवाज़े के पास गलियारे में उसके लिए चारपाई डाल दी गयी थी। वार्डों में जगह न थी। बात यह हुई थी कि उसका प्रेमी लड़का चढ़ाकर उसके यहाँ आया था, उससे झगड़ता रहा था, उसपर जाने किस चीज़ का इलजाम लगाता रहा था, और अन्त में चाकू पर उतर आया था। पर, लड़के का नशा उतरा तो वह दूसरे दिन सुबह तड़के ही भागा-भागा अस्पताल आया—चेहरा पीला, बुरी तरह डरा और बौखलाया हुआ। वह लड़की के लिए दूध की एक बोतल साथ लाया और दोनों एक दूसरे का हाथ हाथ में लिये पलँग पर बैठे आँसू बहाते रहे।

इन डाक्टरों, मिलिशिया के लोगों और जजों की बात सोचते ही मैं आश्चर्य में पड़ जाता हूँ। इन लोगों की निगाह ज़िन्दगी के जोड़ों यानी दर्दो-बीमारियों, दुर्घटनाओं और जुर्मो पर ही अक्सर पड़ती है। मुझे लगता है कि जितने उदास या जिस तरह ज़िन्दगी से टूटे हुए यह लोग होते हैं, उतना दुनिया में और कोई नहीं। लेकिन, इतना होने पर भी डॉक्टरों की ही मिसाल लें। वे हमेशा निश्चिन्त, मगन और ख़ुशी से खिले रहते हैं। इस अस्पताल में सभी डॉक्टर स्त्रियाँ हैं। हमारे वार्ड की बड़ी डाक्टर पोलीना फ़्रान्त्सेवना न तो बनती है, और न ख़ुशी का दिखावा करती है। दूसरी ओर, वह यह बात ईमानदारी से मानती है कि हम सब के सब काहिल और छुई-मुई के फूल हैं...

"यह खूब रहा! मैं सोचती हूँ कि दूसरा काम तुम अब यह करोगे कि माँ के लिए ढरके बहाना शुरू कर दोगे! यह सुई की पिचकारी है, कोई हौआ तो है नहीं! और, आख़िर तुम लोगों का इरादा क्या है? इसी तरह ठुनकते रहना चाहते हो या चाहते हो कि ज़रा कोशिश करो, और ठीक हो जाओ! चलो, तुम सब के सब चलो और यह मक्खियाँ तो यहाँ से भगाओ... कैसा कीचड़ कर रखा है! तुम आदमी हो कि सुअर कि इसमें लोट लगाते रहते हो! मुझे यह सब ज़रा भी पसन्द नहीं... अपने पलँगों के सिरहाने की मेजें तक साफ़ नहीं कर सकते! बात यह है कि तुम्हें तो आदत घर की पड़ी है, जहाँ तुम्हारी पत्नियाँ तुम्हारी गुलामी खुद करती रहती हैं... लेकिन, मैं तुम्हारी यह आदत छुड़ाकर रहूँगी... उठो, काहिल की आँतों, उठाओ अपना-अपना तौलिया!"

"मैं दायें हाथ से उठा नहीं सकता।

"तो, बायें हाथ से उठाओ... दोमिनो की गुट्टियाँ खूब उठाते बनती हैं—देखती हूँ न कि कैसे ज़ोर से उठा-उठाकर पटकते हो कि मेज टूटती भर नहीं, बाकी उसकी सारी दुर्गति हो जाती है... तुम काम से जी चुराते हो, और बने हुए मरीज हो। मेरा बस चले तो मैं तुम सब को एक बोरे में भरकर नदी में फेंक आऊँ!"

"ज़रा सा रुक जाइए, डॉक्टर पोलीना, ज़रा सा! आपको इतनी तकलीफ़ करने की ज़रूरत न पड़ेगी। अगर आपका इलाज इसी तरह चलता रहा तो हम खुद मौत के मुँह में चले जायेंगे!"

"अच्छा, यह तामलोट जैसा मुँह लिये तुम मौत के मुँह में चले जाओगे! ज़रा अपनी दोहरी ठुड्डी तो देखो! चलो, गपशप बहुत हुई, अब उठाओ वह तौलिया!"

वैसे तो हमें यह पूरा पता था कि मक्खियाँ उड़ाने का काम नर्स का है, और मक्खियाँ भी वहाँ एक दर्जन से ज़्यादा न थीं, पर इसपर भी हम एक घण्टे तक भद्दी सी क़तार बनाकर दौड़ते, कुर्सियों पर चढ़ते और तौलिया फटकार-फटकार कर वहाँ से मक्खियाँ भगाते रहे। होते-होते वहाँ एक भी मक्खी बाकी न रह गयी। यानी, अच्छी-खासी कसरत हो गयी!...

पर, मीशा के साथ हुई दुर्घटना के बाद मैंने आज पहिली बार पोलीना फ़्रान्त्सेवना को परेशान और लगभग आशंकित देखा। चिन्तित और चेहरा उतरा हुआ। न मुस्कराती, न हँसी-मजाक करती, बल्कि हर पाँच मिनट पर आती और उसकी नब्ज देखती।

इसके बाद ही ऊँचे से साँचे के काँच के लम्बे से सिलिण्डर में खून भरकर लाया गया। यह सिलिण्डर देखने में सोडा-वाटर के फव्वारों के शर्बत के शीशों जैसा लगा। इस बीच मीशा को होश आ गया। पोलीना फ़्रान्त्सेवना ने उसकी कोहनी के पास के एक हिस्से में स्पिरिट मली और सुई कुच्च से चुभो दी। मेरी हड्डी काँप गयी। खून बूँद-बूँदकर धीरे-धीरे मीशा के शरीर में पहुँचता रहा। हम सब यह सारी कार्रवाई सन्न खींचे देखते रहे...

"कैसी तबीयत है अब?"

"ठीक है।"

फिर भी हम साँस रोके बैठ रहे।

"दर्द तो नहीं होता, मीशा?"

"ज़रा भी नहीं... मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं होता... पर, इस तरह बहुत समय तक पड़ा रहना पड़ेगा क्या?"

"जब तक लेटे रह सकोगे, तक तक ऐसे ही लेटे रहोगे।"

पोलीना फ़्रान्त्सेवना बाहर चली गयी।

मीशा मुस्कराते हुए सिलिण्डर के खून की मात्रा का घटना देखता रहा। इससे काँच पर पीले निशान पड़ते रहे...

'है न यह अज़ीब सी बात, किसी दूसरे का खून है यह! किसी ने कहीं इसे दान के रूप में दिया और अब इस समय यह मेरी नसों में बह रहा है... मैं जानना चाहूँगा कि यह दाता है कौन? मान लो, वह निकले कोई खूबसूरत लड़की, तो? इस क्षण के बाद से उससे मेरा खून का रिश्ता होगा। होगी न मजे की बात? तोल्या, देखते हो,

और तो और, लोग अपना खून तक दूसरों को दे देते हैं। समझते हो?"

हाँ बात मेरी समझ में आ चली थी।

इसके एक सप्ताह पहले की एक घटना याद हो आयी। मीशा काम से लौटते समय दलदल के दूसरे सिरे का मैदान पार कर रहा था कि किसी के चिल्लाने की आवाज़ उसके कान में पड़ी। किसी ने पुकारा—"मदद! जाओ नहीं... इस तरह जाओ नहीं... मदद!"

मीशा के आगे-आगे लपकते एक कामगार ने अपने कदम और तेज किये और दौड़ने लगा। "कायर!" मीशा ने इस कामगार को ज़ोर से आवाज़ें दीं। इसके बाद जिधर से मदद की गुहार आयी थी, उस ओर बढ़ा। उसने देखा कि तीन शराबी एक औरत को पकड़े हुए हैं और उनका इरादा या तो उसे लूटने का है या उसके साथ बदफ़ेली करने का। वह तुरन्त ही उनपर टूट पड़ा और वे धरती पर लौटने लगे। औरत ने लपककर अपनी कँडिया उठायी और सिसकते हुए निकल भागी। शराबियों ने अपने को सम्हाला, खड़े हुए और मीशा के पीछे झपटे। परन्तु, मीशा ने इस तरह जमकर उनका सामना किया और ऐसी मुँह की दी कि अन्त में गालियाँ देते वे पीछे लौट पड़े और अँधेरे में गायब हो गये। अब और केवल अब मीशा को अपने दाहिने बाजू में लगे चाकू के घाव से खून बहने का होश आया। वह अस्पताल आ पहुँचा।

मैंने पूछा—"वह औरत कौन थी? और, वे शराबी कौन थे?"

ज़वाब मिला—"भला मैं कहाँ से जानूँ! मैं समझता हूँ कि कोई सीधी-साधी भली औरत थी। सोचती थी कि खाली मैदान अकेले पार कर लेगी। बेवक़ूफ़ कहीं की!... लेकिन, कोई किसी आदमी पर हमला करे तो आप खड़े-खड़े देखते तो नहीं रह सकते न!"

मीशा कौम का बुरयात था। उसका जन्म बैकाल में स्थित ओलखोन द्वीप में हुआ था, इसीलिए उसका नाम ओलखोन्स्की था। अस्पताल में पहले दिन सुबह जब मैं सोकर उठा और मैंने उसकी शक्ल देखी तो मुझे लगा कि यह रूसी बोलेगा तो वैसी ही टूटी-फूटी बोलेगा जैसे कुछ चीनी बोलते हैं। पर नहीं, वह मुस्कराया और बिना किसी स्वराघात के बोला—"अब पहले से अच्छे हो? एक आदमी और सभ्यता का शिकार हुआ।"

यह बात सहज रूप से मेरे गले के नीचे न उतरी कि ऐसी कमान सी आँखों, मंगोलों सी गाल की हड्डियों, ताँबे के रंग की खाल और एशियाई लोगों के से नाटे-मोटे शरीर का आदमी मास्को में प्रयोग में आनेवाली शुद्ध रूसी बोले, और कम्पानेल्ला और रूसो जैसे लेखकों का बात-बात में हवाला देकर हर बार बहस में मुझे हरा दे! मैंने तो इन लेखकों की कृतियाँ अब तक आँखों से भी न देखी थीं। वैसे हम दिन बहसें करते, रात बहसें करते! और, समय बीतता जाता कि पता ही न चलता। पर, इस बीच मैं धीरे-धीरे स्वस्थ होता जाता। वैसे मुझे इस बात का अनुभव प्रकट रूप में न होता।

मेरे प्यारे-प्यारे दोस्त और साथी–

हमारे वार्ड की खिड़की से अंगारा और आरपार बना पीपे का पुल बिल्कुल साफ़ नज़र आता और बड़ा प्यारा लगता। हम खड़े घण्टों यह दृश्य देखते रहते। नगर के सिरे पर बसे हमारे इस अस्पताल की ओर से प्रायः न कभी कोई आदमी गुजरता और न कभी कोई ट्रक। यहाँ का सन्नाटा तो केवल तब भंग होता जब किसी पर मुसीबत टूटती और एम्बुलेंस की मोटर घरघराती हुई जाती या आती। जगह दुनिया के दूसरे किनारे पर समझिए। हाँ, दूर के निर्माण-स्थल से तरह-तरह की आवाज़ें ज़रूर आती, पर इससे कुछ नहीं, हम जैसे किसी बियाबान रेगिस्तान में बसते।

एक दिन मीशा बोला–"मुझसे यहाँ अब और नहीं रहा जायेगा। किसी भी क्षण बड़े बाँध का काम शुरू हो सकता है। यहाँ तो मैं पागल हो जाऊँगा। इस बेहूदे लिबास में क़ैदी बना बैठा रहता हूँ। यह कपड़े तो जैसे किसी शैतान की ईजाद हैं और हर वक्त आदमी को याद दिलाते रहते हैं कि, म्याँ, तुम इंसान नहीं हो, मरीज हो, मरीज, और कुछ नहीं!"

मीशा पेशे से इंजीनियर था और अपने विभाग के कोमसोमोल दल का नेता। वह स्वस्थ और ठीक होता तो बाँध के काम की शुरुआत के वक़्त उसकी तैनाती पुल पर होती। उसने होंठ काटे और ज़ोर से गरजा। इंजीनियर-दोस्त उसे देखने बराबर आते और खास-खास निर्माणों की प्रगति के बारे में सभी कुछ बतलाते रहे थे। उनके हिसाब से उस समय बाँधों के खोले जाने में इने-गिने दिनों की ही देरी थी।

मीशा बोला–"पोलीना, मुझे जाने दीजिए, मैं कसम खाकर कहता हूँ कि मैं हर तरह की सावधानी बरतूँगा।"

डॉक्टर ने टके सा ज़वाब दे दिया–"बिल्कुल बेकार की बात है.... दो हफ़्ते से एक दिन पहले जाना चाहोगे तो यहाँ से नहीं जाने पाओगे..... इसके पहले जाने की बात तो सपने में भी न सोचना..... वैसे अगर तुम परेशान न करोगे तो शायद दो के बजाय डेढ़ हफ़्ते में ही छोड़ दूँगी तुम्हें मैं!"

"पोलीना, डाक्टर, मेरी प्यारी-प्यारी डाक्टर, मैं मर जाऊँगा।"

"ज़रा कोशिश कर देखो!"

"मैं गले में फाँसी लगाकर लटक जाऊँगा।"

"मैं तुम्हें नीचे उतार लूँगी और फिर जिला लूँगी।"

"तुम सब की सब चुड़ैलें हो! हत्यारिनें हो!"

"जितना चाहे कोसो, पानी पी-पीकर कोसो।"

"इः!"

मैं भी ज़रा घबराहट से ही अपने विश्लेषणों के नतीज़ों का इन्तज़ार कर रहा था। दूसरे दिन एक्स-रे की बात थी और फिर यह कि अगर सब कुछ ठीक-ठाक निकला

तो अस्पताल से मुक्ति पा जाऊँगा।

मीशा ने डाह से साँस भरी, और जहर बुझी निगाह मुझपर डाली। पोलीना फ़्रान्त्सेवना उसके ऑर्डर की ढेर की ढेर किताबें ले आयी—यच. जी. वेल्स, जैक लण्डन और कोनन डोयल की कृतियाँ और रोमां रोलां का 'जाँ क्रिस्ताफ'। मीशा ने बेमन से किताबों के पन्ने पलटे। उसका मन तो कहीं और ही था—दूर!

"यह कूक सी क्या सुनाई पड़ी? कोई इंजन था? कहाँ से आया?" और, मीशा फिर खिड़की की ओर बढ़ा। एक पुराना इंजन लोहे की पटरियों से भरी ट्रक खींचता और चीज़ों पर धुएँ का सचमुच का बादल बिछाता दिखा।

लोग हमारे निर्माण-स्थल को बैकाल से जोड़नेवाली पूर्वी-साइबेरियाई रेलवे की शाखा की बची-खुची चीज़ों को वहाँ से हटा रहे थे। यह वही जगह थी जहाँ मास्को-पेकिंग एक्स्प्रेस हवा से बातें करती मेरी बगल से गुजरी थी और जहाँ अब स्लीपरों के अम्बार भर बाकी रह गये थे। पहाड़ों को काटकर आरपार एक नयी लाइन बिछा दी गयी थी। अंगारा गुमसुम और बैकाल तक वीरान थी। न कहीं कोई रोशनी नज़र आती और न कहीं कोई आवाज़ सुनाई पड़ती। समुद्र जन्म लेने वाला था। आशा थी कि इर्कूत्स्क बाँध के बन जाने से खुद बैकाल की सतह एक मीटर ऊँची उठ जायेगी, झील और चौड़ी हो जायेगी। और किनारे के मकान कहीं और बना दिये जायेंगे।

...एक दिन मैं अस्पताल में वार्ड में अकेला था। सभी 'चलने-फिरने लायक' लोग खाना खाने चले गये थे। मैं अकेले पड़े-पड़े बहुत उदासी और अकेलापन महसूस कर रहा था और छत पर निगाह गड़ाये हुए था। सचमुच बड़ा बुरा होता है कि आपको यह लगने लगे कि आप बहुत बेसहारे हैं और दुनिया में किसी को आपकी ज़रूरत नहीं हैं!

सहसा ही दरवाज़ा खुला और सफ़ेद चोगा-सा पहने एक औरत अन्दर आयी। मुझे किसी के आने की आशा तो थी नहीं, इसलिए मैंने मुड़कर देखा तक नहीं। औरत पास आयी तो मुझे लगा कि यह तो अन्ना मोसकालोंको हैं। अपने ढीले-ढाले चोगे में वे और भी छोटी और खोई-खोई सी मालूम हुई, और आकर ज़रा सावधानी से बैठ गयीं। बोली—

"लेओनीद आज सुबह भागा-भागा आया और कहने लगा कि लोग तुम्हें अस्पताल ले गये। क्या हुआ तुम्हें?"

"मुझे कुछ पता नही..... बेवक़ूफ़ी की बात है!"

"कोई बात नहीं, तोल्या, तुम जल्दी ही अच्छे हो जाओगे। हमारे यहाँ डाक्टर अच्छे हैं। वाल्या आजकल तुम्हारी जगह ट्रकों से कंकरीट उलीचने का काम कर रही है, लेकिन काम में वह सफ़ाई नहीं है। हमें तुम्हारी कमी खलती है!"

"जी हाँ, आपने कहा और मैंने मान लिया!"

"लेकिन, हम तो मानते हैं। यह है कि तुम्हारा दिल थोड़ा और खुलना चाहिए। तुम हमारे यहाँ के फैले हुए मुँह तो जानते हो! अगर तुम उनके हाथ खेल गये तो वे तुम्हें पापोश बनाकर छोड़ देंगे!... यह थोड़ी सी कुछ चीज़ है तुम्हारे लिए... मेज पर रख दूँ?"

"अरे, यह तकलीफ़ क्यों की आपने?"

"चीज़ है तो पेट पड़े गुन ही करेगी... तुम्हें फिर से स्वस्थ और मजबूत बनना है... और, यह कि इस तरह परेशान न हो... अभी तो बड़े उतार-चढ़ाव देखने पड़ेंगे... सारी ज़िन्दगी पड़ी है, और ज़िन्दगी फूलों की सेज होगी, ऐसा भी नहीं है... आदमी को ज़रा पोढ़ा होना चाहिए। लड़कियाँ तुम्हें देखने के लिए आने की सोच रही हैं... थोड़े बहुत रूबलों की ज़रूरत तो तुम्हें नहीं? खाना-वाना तो कायदे का मिलता है यहाँ?"

"खाना... खाना अच्छा मिलता है।"

"दस रूबल पास में बने रहेंगे तो काटेंगे तो है नहीं! इन्हें भी मेज की दरराज में रखे देती हूँ। नर्स से कहना, थोड़े से अण्डे ला देगी तुम्हें!"

"लेकिन, रूबल क्यों, सभी कुछ तो है मेरे पास! कृपया रूबल रहने दीजिए!"

तुम चुपचाप, शान्ति से लेटे रहो और तन्दुरुस्त हो जाओ। यक़ीन करो, जो कुछ होगा, अच्छा ही होगा... देख लेना!"

उनके होंठों पर हल्की, स्नेहभरी मुस्कान दौड़ गयी। पर, चेहरे की झुर्रियों के कारण वे बूढ़ी सी लगीं और फिर उनकी आँखों से उदासी झाँकने लगी, जैसे कि कुछ ऐसा हो जो अनकहा रह गया हो। परन्तु, वे उठीं और धीरे से उठकर बाहर चली गयीं। मैं अकेला रह गया और आश्चर्य से उनके बारे में सोचता रहा।

...दूसरे दिन सुबह ज़रा सी ताजी हवा खाने के लिए मैं रेंगकर बाहर आया। सूरज की किरनें दूब की हरी पत्तियों से छेड़छाड़ करती रहीं। कुछ मरीज बेंचों पर एक किनारे बैठे 'प्रीफ़्रेस' खेलते रहे तो कुछ दोमिनो की गुट्टियाँ ज़ोर-ज़ोर से मेज पर पटकते रहे।

"आपको कोई बुला रहा है," मेरी बगल से गुजरते हुए नर्स ने कहा।

मैंने नर्स की बात पर विश्वास न करते हुए मुड़कर देखा—मालूम हुआ कि फिर कोई औरत मुझे देखने आयी है—इस बार तोन्या निकली।

उसने अपना भड़कीला, गुलाबी ड्रेस पहन रखा था, और बालों की कसी हुई चोटियाँ सिर के चारों ओर लिपटी हुई थीं। देखने में वह कुछ घबड़ाई और झटकी हुई लगी, पर, वैसे उसके गालों पर गुलाबी छिटकी रही, और चेहरे से ताजगी टपकती रही।

हमने हाथ मिलाये और मुँह सिये जहाँ के तहाँ खड़े रहे। उसने एक बण्डल सा मेरे हाथ में थमाया। मेरा जी चाहा कि मैं तत्क्षण मर जाऊँ! मैंने चूहे की खाल के रंग का, एक प्योंदेदार चोगा और स्लीपर पहन रखे थे। चोगे के नीचे से पैजामा बराबर झलक रहा था। ऐसी हालत में उसकी बगल में खड़ा मैं अवश्य ही बहुत बेवक़ूफ़ और

बेसहारा लग रहा होऊँगा! इस बीच अहाते के लोगों का ध्यान हमारी ओर आकृष्ट हो गया था, और 'प्रीफ़्रेंस' के खिलाड़ी अपना खेल रोक हमारी ओर घूरने लगे थे। मन ने कहा—"भाड़ में जायें सब के सब!"

"हम कहीं बैठ जायें न!"

"मैं... मैं... मैं..."

"धन्यवाद, तोन्या!"

इसी समय दो नर्सें हमारे पास से गुजरी और जब तक वे काफ़ी दूर चली नहीं गयीं, हम चुप्पी साधे रहे।

"तुम्हारी तबीयत पहले से कुछ अच्छी है न?"

"देख रही हो, अब तो मैं इधर-उधर थोड़ा-बहुत चल-फिर लेता हूँ।"

"बहुत अच्छा है। तमारा और ओल्या ने तुम्हें स्नेह भेजा है।"

"धन्यवाद!"

"मैं कुछ किताबें ले आयी हूँ तुम्हारे लिए। 'लाल पाल' भी है। और, यह रही थोड़ी सी चेरी..... इस साल की पहिली चेरी है यह!"

"क्यों, आखिर ऐसा क्यों है कि आदमी ठीक-ठाक रहता है तो कोई उसकी बात नहीं पूछता, कुछ नहीं देता, किताब तक नहीं देता, पर, उसके बीमार पड़ते ही लोग उसी को चीज़ों से भर देते हैं? ऐसा लगता है कि आदमी को ज़्यादा से ज़्यादा बीमार पड़ना चाहिए।"

"बेकार बकवास न करो।"

"तोन्या....."

"कहो, क्या बात है?"

"तुमने..... तुमने एम्बेंकमेण्ट खत्म कर दिया?"

"हाँ, जल्दी ही नदी पर बाँध बँध जायेगा। लोगों के मन जोश और उमंग से उमड़े आ रहे हैं। कोई आपे में नहीं है। काश कि तुम खुद देखते!....."

उस दिन दोपहर के बाद तो डेलीगेशन का डेलीगेशन मुझे देखने आ गया : फ़ोटोग्राफर पेतका, गाल्या के साथ कुबिशकिन, लेओनीद, और 'जुर्मो के विभाग से सम्बन्धित' हमारा पुराना दोस्त... सान्या। लेओनीद ने ठीक ही सोचा था—लड़का आख़िरकार आया! वैसे तो वह अकुशल कामगार की हैसियत से काम कर रहा था, सो भी लेओनीद के साथ नहीं। पर, इसपर भी लेओनीद ने उसकी बड़ी सहायता की थी, और उसके पास इस बीच कुछ कपड़े तो हो ही गये थे, हड्डियों पर थोड़ा-बहुत मांस भी चढ़ आया था। इसलिए उस समय का कँगला, इस समय खुशहाली की जीती-जागती तस्वीर सा नज़र आने लगा था।

जख़ार जख़ारिच ने मेरे लिए पाँच पैकेट 'काजबेक' सिगरेट और थोड़े से चाकलेट भेजे थे। अपने जीवन में इतनी अच्छी चीज़ें एक साथ मैंने अपने पास कभी न जानी

थीं। बाद में तो मेरी मिठाइयाँ और बिस्कुट वार्ड के हर आदमी ने खाये थे।

'डेलीगेशन' ने मेरी पीठ ठोंक-ठोंक और हँसी के ठहाके लगा-लगा मेरा जी ख़ुश करने की भरसक कोशिश की। मेरी आँखें सहज ही भर आयीं।

मुझे विश्वास ही न हुआ कि इतना सारा कुछ मेरे लिए किया जा रहा है। साथ ही मुझे थोड़ी शर्म भी आयी। कहना न होगा कि अस्पताल में आने के बाद मुझे लोगों की आधि-व्याधि, दुख-मुसीबत का तो अनुभव हुआ ही, मैंने कुछ ऐसा भी सोचा-समझा-सीखा जो पहले कभी मेरी समझ में ही न आया था।

शाम होते-होते सबसे बड़े महत्त्व कीखबर हमारे कानों में पड़ी। सारे अस्पताल में उथल-पुथल मच गयी। डाक्टरों को तो जैसे घेर ही लिया गया। पोलीना फ़्रान्त्सेवना ने कमरे के अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर लिया, और चीखते-चिल्लाते, दरवाज़ा खटखटाते, मिन्नतें करते भीड़ की भीड़ मरीजों से मिलने से इनकार कर दिया।

सरकारी तौर पर ऐलान कर दिया गया था कि बाँध का काम परसों शुरू होगा, और, इसकी याद हमें दिलायी थी मीशा ओलखोन्स्की ने। उसके दोस्त चोरी से सूट और जूते ले आये थे, और वह कपड़े बदल, अस्पताल के कपड़े अस्पताल में छोड़, बाड़ पार कर वहाँ से उड़ दिया था।

राजहंस, खटमल और कुछ दूसरी चीज़ें–

खतरे की घण्टी बजाओ... खतरे की घण्टी! हमारे घर में जैसे कुछ हो गया है, पर क्या हो गया है, यह मेरी समझ में नही आता। क़मरा कुछ दूसरा ही नज़र आ रहा है, हवा कुछ दूसरी ही हो गयी है, और यहाँ के लोग कि जैसे सारे के सारे बदल गये हैं।

यह सब शायद इसलिए कि कुबिशकिन ने शादी कर ली है। और उसका पलँग यहाँ से निकल गया है। हाँ, वह और गाल्या विवाह के बँधन में बँध गये हैं, पहिली बस्ती में उन्हें कमरा मिल गया है, और उन्होंने वैवाहिक जीवन के अटपटे रास्ते पर कदम बढ़ाने शुरू कर दिये हैं। पर, लगता है कि बात्त सिर्फ़ इतनी ही नहीं है!

ज़खार ज़खारिच बन-सँवर रहा, और अभी-अभी बनाई सफ़ा-चट दाढ़ी, मूँछ और चेहरे पर यूडीक्लोन रह-रहकर मल रहा है। बाँध का काम शुरू होने पर सारे ड्राइवर अंगारा के किनारे बड़े तम्बुओं में रहेंगे। कैम्प की पूरी व्यवस्था कर दी गयी है, और यहाँ हर चीज़ है—क्या कैण्टीन, क्या तात्कालिक मरहम पट्टी का ठिकाना, और क्या बाक़ी कुछ!

सफ़ेद बुर्राक क़मीज़ और चमचमाते, चरमराते जूते पहले लकदक जख़ार जख़ारिच अपनी उम्र से दस साल कम मालूम होता है। वह, शीशे से सामान की अलमारी तक, कमरे में इधर-उधर चक्कर लगाता है, और कुछ गुनगुनाता है। मैं उसका गाना पहिली

बार सुनता हूँ... आवाज़ भारी है, स्वर बीच-बीच में टूटते हैं, और सारे लहजे में एक तरह की सुस्ती या ढीलापन है। गाना कुछ इस तरह है—

अरे, हमारे इंजन प्यारे,
तेज-तेज हो चाल
साँस न लो, उड़ दो कम्यून को,
क्योंकि यही है बस, अपना पथ,
अपना यही कमाल!

"डैड, जँचते हो," उसे टाई बाँधते हुए देखकर पेतका कहता है, "लेकिन, यह बतलाओ कि यह सज-धन क्यों? किसी पार्टी-वार्टी में जा रहे हो क्या?"

"तुम हो सिरफिरे, बेवक़ूफ़!" जख़ार जख़ारिच हँसते हुए उत्तर देता है, "तुम्हारे माँ-बाप मिले तो उनसे मैं दो-दो बातें करूँ।"

"किस चीज़ के बारे में?"

"सचमुच ऐसा क्या है जिसके बारे में बातें करूँगा! ज़रा अपना पलँग तो देखो! सारा बिस्तर कैसा उलटा-सीधा पड़ा है। यहाँ से वहाँ तक मोज़े बिखरे पड़े हैं, और आप हैं कि अपने को हास्य का अवतार माने बैठे हैं! बैठे-बैठे यह आप खीसें क्या बा रहे हैं? जो अपनी चीज़ें कायदे से नहीं रख सकता, वह भी कोई आदमी होता है!"

"जो कुछ जैसा है मुझे पसन्द है।"

"सुना, तुम जानते नहीं, आदमी दाढ़ी बनाकर आये और मैं उसे एक नज़र देख लूँ तो उसकी पूरी हुलिया बता दूँ तुम्हें, यह बतला दूँ कि उसकी कीमत क्या है।"

"अच्छा तो, मेरी कीमत क्या है?"

"एक छिदहा टका नहीं।"

"क्या कहने हैं। डैड, मेरी बात मानो और, प्यारे, शादी कर डालो। ईमान से कहता हूँ। एक बढ़िया जवान औरत खोज लो जो तुम्हारे कलफ़दार कॉलरों पर हर रोज जमाकर लोहा कर दिया करे... हर दिन... एक दिन खाली न जाये।"

"अपने कॉलरो की चिन्ता मैं आप कर सकता हूँ।"

"अरे, डैड, शादीशुदा आदमी के ठाठ ही कुछ और होते हैं। मैं सचमुच कहता हूँ कि तुम शादी आख़िर क्यों नहीं कर लेते? पारी अब तुम्हारी है। ज़रा अपने ऊपर एक नज़र तो डालो—दुनिया की कोई भी औरत मरकर रह जायेगी! बोलो, है कुछ इरादा?"

"पेतका, तुम्हें एक बात बतलाऊँ कि अगर ऐसी कोई बात मन में आ जाये और ठान ठन जाये तो तुम तो क्या ठहरो मेरे मुकाबले।"

"तो, फिर कुछ कर क्यों नहीं डालते? कुबिशकिन ने रास्ता दिखला ही दिया है... बढ़ाओ, तुम क़दम बढ़ाओ... तोल्या और मैं यानी हम दोनों भी तुम्हारे पीछे-पीछे आते हैं।"

"हूँ:, नहीं पेतका!"

"इस 'नहीं' से तुम्हारा क्य मतलब? तुम्हारा ख़्याल है कि मैं यह नहीं जानता कि यह सारा पैसा तुम बहा कहाँ आते हो? तुम्हारी उस कपड़े धोने वाली औरत का पूरा क़िस्सा जानता हूँ मैं। अच्छी-खासी है। पति-वति कोई है नहीं। चार बच्चे हैं। तो क्या हुआ, हुआ करें। बुढ़ापे में उनके कारण तुम्हारा मन लगा रहेगा।"

"पेतका, बकवास बन्द करो।"

"कहो, डैड, पकड़ गये न...... यह हो तुम!"

"किस बात में पकड़ गये?"

"कोई बात नहीं, डैड, झेंपने की कोई बात नहीं.... जोड़ी मिलवाने का जिम्मा मेरा रहा। बोलो, राजी हो? और, फिर मैं खुद भी शादी कर लूँगा.... शानदार जश्न रहेगा!"

"बच्चे, बेकार बकवास नहीं करते! अभी तुम्हें अक़्ल ही क्या जो तुम शादी करोगे। अभी तो छड़ी तुम्हारे नाम को रो रही है।"

"ठीक, बिल्कुल ठीक! तो, अपन इन्तज़ार करेंगे, ज़िन्दगी के सारे मनमाने मजे लूटेंगे और बुढ़ापे में शादी करेंगे।"

"हाँ, यह तुम कर सकते हो! किसी ने ठीक ही कहा है कि ईश्वर अगर किसी को बुद्धि नहीं देता तो उसमें और लँगड़े-लूले, अंधे-बहरे में क्या फ़र्क़ है!"

"लेकिन, डैड, यह बतलाओ कि यह सब झूठी बकवास है न? भला कौन महज एक औरत के साथ पूरी ज़िन्दगी बिता सकता है? भला कौन ऐसा होगा जो हमेशा एक औरत के प्रति ईमानदार रहेगा और दूसरी के पीछे कभी नहीं भागेगा? अगर ऐसा हो तो ज़िन्दगी में रस ही क्या रहे! क्यों, क्या राय है?"

"मैं नहीं जानता। यह तो आदमी-आदमी पर निर्भर करता है। लोग, तुम जानते हो कि, तरह-तरह के होते हैं। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं तो यह समझता हूँ कि प्यार तो वह प्यार है जिसमें सच्चाई हो। हो सकता है कि ऐसा प्यार किसी के जीवन में सिर्फ़ एक ही बार आये, पर यह है कि जब ऐसा प्यार आता है तो पूर की पूरी ज़िन्दगी जगमगा उठती है... एक बार की बात है कि हम बराबिंस्क के स्तेपी में शिकार करने गये और हमारे एक साथी ने एक राजहंस को गोली मार दी। क्या हुआ कि अचानक ही उसकी माता प्रियतमा जाने कहाँ से फट पड़ी। फिर तोवह सिर के ऊपर-ऊपर इस तरह मँडराने, तलझने, कलपने और क्रन्दन करने लगी कि बस! हमने उसपर भी कई बार गोली चलाई, पर हर बार वार खाली गया, और वह कि वहाँ से टस से मस न हुई। होते-होते रात हो गयी। इस बीच उसका साथी उठाया, पकाया और हजम कर लिया गया। पर, वह अँधेरे में शैतान की तरह चक्कर लगाती और विलाप करती रही। हम सुबह सोकर उठे तो वह कहीं नज़र न आयी। हमने सोचा कि वह शायद कही चली गयी। पर नहीं, वह फिर आयी ऊपर ही ऊपर उड़ती गयी और अन्त में पर समेटकर इस तरह पत्थर की तरह नीचे गिरी कि सारे पंख हवा में

इधर-उधर उड़ने लगे... देखते हो, साहबज़ादे, अपने मन के राजा के बिना वह चिड़िया जी नहीं सकी। हमपर इस चीज़ का ऐसा असर पड़ा कि उसके नर को गोली मारने वाले साथी को हम बुरा-भला कहने लगे। हमारे कजाख-गाइड ने बतलाया कि राजहंस जीवन में केवल एक बार मन का मीत चुनते हैं और अगर दो में से एक मार डाला जाता या अपने आप मर जाता है तो उसका जोड़ा आसमान में ऊपर उड़ जाता है और वहाँ से गिरकर अपनी जान दे देता है। देखा है तुमने, राजहंस अकेले कभी नहीं होते... वह दिन है और आज का दिन है कि शिकार का सारा मजा ही जाता रहा। बुरा हो उस चिड़िया का!"

"समझा! यानी तुम्हारा मतलब यह है कि अगर मेरी बीबी मर जाये तो मैं किसी घण्टाघर से गिरकर जान दे दूँ?"

"बेवक़ूफ़ हो। मेरा यह मतलब नहीं। मैं तुम्हें यह समझाना चाहता हूँ कि अभी तक तुम्हें प्यार की तमीज नहीं। तुम तो सिर्फ़ मोहब्बत का खेल रचाते हो। आज एक लड़की के पीछे दोड़ते हो और अजर-अमर प्यार की कसमें खाते हो, तो कल कोई दूसरी चुन लेते हो। इसे सच्चा प्रेम नहीं कहते। कुछ लोग अपनी पूरी ज़िन्दगी की ज़िन्दगी यही गोरखधन्धा करते रहते हैं। अन्त में वे हाफा पीटना शुरू कर देते है कि प्यार तो दुनिया में है ही नहीं, परिवार एक बँधी-बँधाई कल्पना है और ऐसे में चाहिए यह कि आदमी जब चाहे प्यार करे और जब चाहे प्यार तोड़ दे। लेकिन सच्चे प्रेम का अनुभव इन लोगों को ज़िन्दगी भर नहीं हो पाता, पेतका!"

"यह क्या हुआ?"

"यह मैं तुम्हें क्यों बतलाऊँ! सयाने होगे तो इसका मतलब खुद ही समझ लोगे। लेकिन एक बात हमेशा याद रखना कि सच्चे लोग ही सच्ची मोहब्बत कर सकते हैं... कहाँ है मेरा पर्स?"

मैं उन दोनों की बातें सुनता और सहज ही भर उठता हूँ, जैसे कि कोई बड़ा राज खुल गया हो मेरी आँखों के आगे। पेतका बातें तो बेवक़ूफ़ों की तरह करता रहता है, पर हिल वह भी जाता है।

"डैड, अच्छा यह बतलाओ कि अगर तुम्हारी जवानी तुन्हें एक बार फिर मिल जाये तो क्या करो तुम?"

"जवानी?"

"हाँ!"

"कैसे बता सकता हूँ तुम्हें कि फिर से जवानी मिल जाये तो क्या करूँगा... लेकिन ख़्याल है कि शायद वहीं करूँगा जो जवानी के दिनों में किया था।"

"तुम्हरा मतलब है कि हथियारबन्द गाड़ी में बैठकर लड़ते फिरोगे, या ऐसे ही दूसरे काम करते फिरोगे?'"

"और क्या?"

"लेकिन मेरा मतलब उससे नहीं। मैं तो वह पूछता है कि आख़िर क्या करो तुम अगर तुम्हें रहे-रहे एकदम तोल्या की या मेरी जगह मिल जाये और तुम जवान हो उठो। यों तो तुम बूढ़े हो, तुमने लम्बी ज़िन्दगी बिताई है और कितना कुछ देखा है! कुछ हमें ऐसी बातें बतलाओं जो तुमने जीकर सीखी हों, ताकि हमें अपने मन के सवालों के ज़वाब नये सिरे से न खोजने पड़े। मिसाल के लिए कि आख़िर हमारे जीने का उद्देश्य क्या है और हमें जीना किस तरह चाहिए? तुम मर जाओगे तो तुम्हारी सारी जानकारी तुम्हारे साथ कब्र में दफ़न हो जायेगी। लेकिन तुम सारे के सारे बुजुर्ग ऐसे ही होते हो! कभी कुछ बतला कर नहीं देते। इस मामले में भी कंजूसी ही बरतते रहते हो। अरे, अपने अनुभवों का एक हिस्सा हमें भी दे दो!"

"क्यों, भला इसमें कंजूसी की क्या बात? पेतका, अगर मैं जवान होता तो अपने दिल के मामले में ज़रा और सावधानी बरतता। जवानी के दिनों में मैंने इसकी चिन्ता नहीं की और अब इस वक़्त यह मुझे अक्सर ही परेशान करता है। लेकिन तुम जवान लोग, तुम यह बात थोड़े ही समझ सकते हो!"

"नहीं, डैड, ऐसी बात नहीं है..... हम बात समझेंगे और अपने दिलों के मामले में सावधानी बरतेंगे। और बतलाओ! बचाकर कुछ मत ले जाओ।"

"तुम भी अजब मजाकिया लड़के हो, पेतका। भला बचाकर ले जाने को मेरे पास क्या रखा है?"

"मेरा मतलब ज़िन्दगी की समझदारी से है। अच्छा, मान लो, इस समय तुम मेरी जगह होते तो क्या करते?"

"इस वक़्त!"

"हाँ, इस वक़्त!"

"इर्कूत्स्क पनबिजलीघर के निर्माण में हिस्सा लेता, मैं सोचता हूँ।"

"सच?"

"बिल्कुल सच!"

"तो, हम भी ठीक ही कर रहे, और सही रास्ते पर ही बढ़े जा रहे हैं?'

"तुम जो कर रहे हो, वह ठीक कर रहे हो, इसमें भला सन्देह किसे हो सकता है?... सुनो, ज़रा लोहे का प्लग लगा देना। मैं टाई में इस्त्री कर लूँ। इस तरह मुझसे नही पहिनी जायेगी... पेतका, अगर सुनना ही चाहते हो तो सुनो—मेरा कहना यह है कि आदमी की ज़िन्दगी में भराव होना चाहिए... और उससे सम्बन्धित हर चीज़ बड़ी होनी चाहिए... प्यार हो तो बड़ा हो, सिर्फ़ मटरगश्ती और बकवास नहीं... दोस्ती हो तो मजबूत हो... खुशी हो तो आन्तरिक और अपने आप में पूर्ण हो—हँसी-खुशी के दस-पाँच छिछले लमहे भर नहीं... और, दर्द हो तो उसमें सागर की गहराई हो! और, ऐसी ज़िन्दगी उन भाग्यवानों को मिलती है जो छोटी चीज़ों के पीछे नहीं दौड़ते, यानी जो सिर्फ़ अपने लिए नहीं जीते। वैसे है यह गुत्थी और यह तो तुम्हें अपने आप ही

सुलझानी होगी... तुम्हें चिन्ता करनी होगी कि अगर तुम्हारी ज़िन्दगी लम्बी हो तो अन्त में तुम्हें यह लग सके कि तुम्हारे उद्देश्य महान रहे और तुम कुछ ऐसा करने जैसा कर सके जिसके लिए लोग तुम्हारा आभार मानेंगे और तुम्हें याद रखेंगे... जहाँ तक दूसरों के सहारे जीनेवाले इन सड़े-गले लोगों का सवाल है, इन्हें तो खटमल की तरह मसलकर फेंक देना चाहिए। वे अपनी पूरी ज़िन्दगी दीवार की संध में बिता देते हैं। कम्बख़्त, न खुद रोशनी से आँखे सींखते हैं, और न दूसरों को रोशनी पाने देते है। उनके आड़े आ जाते हैं। तुम्हीं सोचो, भला खटमल की ज़िन्दगी बिताने में क्या मजा? यह भी क्या हुआ कि आप जीते चले जायें और बस जीते चले जायें! न कुछ जानें, न कुछ समझें। अपनी भावनाओं में जहर घोलें, दूसरों की भावनाएँ विषाक्त करें और ज़िन्दगी भर क्रै में पड़े कुलबुलाते रहें!"

"उफ़, डैड, बातों को कैसे शब्दों में बाँधते हो तुम!"

"कोई बात नहीं, मैं तो और भी तेज ढंग से यही बातें कर सकता हूँ। यकीन करो कि जब मैं देखता हूँ कि लोग कैसे-कैसे काठ के उल्लू होते हैं तो कभी-कभी मेरे दिल में दर्द होने लगता है—जैसे कि दुनिया की सारी खुशी रूबलों में हो, तरह-तरह के व्यंजनों से तने हुए पेटों में हो, ठाठदार कपड़ों में हो और छः कमरों के फ़्लैट में हो! यह सब कुछ नहीं है... बिल्कुल कुछ नहीं है... यह तो खास बात से अलग की बात है। आनन्द और खुशी तो सचमुच यहाँ है... आनन्द और खुशी के मानी होते हैं एक तूफ़ान, एक कशमकश... यह होता है दिल में दमकता एक सूरज... यह सूरज जीवन में तुम्हारे पथ पर भी प्रकाश बिखेरता है, और दूसरों के पथ पर भी, और तुम्हारे मर जाने के बाद भी अजर-अमर रहता है। यह दुनिया में चारों ओर चककर लगाता है. .. लोगों को जगाता है, उन्हें आवाज़ देता है और चमकाता है! ओह, पेतका, ज़िन्दगी के मानी पूछने से क्या फ़ायदा! यह तो आदमी को अनुभव करना चाहिए... आदमी के पास आदमी का दिल-दिमाग़ होना चाहिए, पलँग के खटमल का नहीं। आदमी को ज़िन्दगी से प्यार होना चाहिए। सुअर की तरह उसमें लोट नहीं लगानी चाहिए। यह बात है! तुम्हारी बातों से मेरा दिमाग़ ख़राब हो गया और तुम हो कि मजा ले रहे होगे! तुम्हें सब कुछ तमाशा लग रहा होगा। खैर, तो आज के लिए इतना काफ़ी है!..... मुझे लगता है कि कोई न कोई चीज़ मैं भूल ज़रूर गया हूँ... कोई बात नहीं, याद आयेगी तो आकर ले जाऊँगा। अच्छा, मैं चला, स्वास्थ्य का ध्यान रखना, छोकड़ो!"

"हम तुमसे मिलने आयेंगे, डैड! देखना, सर्दी मत खा जाना। रातें बड़ी ठण्डी होती है। तुम मेरा कम्बल क्यों न लेते जाओ, डैड!"

"तुम्हारे कम्बल के बिना काम चला लेगा—तुम्हारा 'डैड' पुराना फ़ौजी है। उसे बर्फ़ को बिछौना बनाना पड़ा है, बरसात के पानी को ओढ़ना पड़ा है और हवा को तकिया समझकर सिरहाने रखना पड़ा है। इस तकिये को मुलायम बनाने के लिए कभी-कभी जहाँ-तहाँ से हिलाना और झटकारना भी पड़ा है—ऐसे दिन गुजरे हैं,

बदमाशो!... लेकिन, ज़रूर आना, मुलाक़ात करने ज़रूर आना!"

यह कहकर जखार जखारिच खड़ाक से दरवाज़ा मारता है, और पैर पटकता हुआ गलियारे की ओर बढ़ता है। अँधेरे के बीच से उसके पैरों की खटखट और भारी आवाज़ के स्वर बहुत देर तक हमारे कानों में पड़ते रहते हैं—

क्योंकि यही है, बस, अपना पथ,
अपना यही कमाल...
जल्दी पूरी होगी मंजिल,
बहुत तेज है चाल!

बूढ़ा आज गाने की मस्ती में मालूम होता है। इसी समय अचानक ही सिर से पैर तक कीचड़ से नहाया, हाँफता हुआ लेओनीद जैसे कमरे में फट पड़ता है।

"तुम यहाँ भला क्या बैठे हुए हो इस तरह, कौआ हाँको? लोग पानी के बहाव की आड़ ढहाने जा रहे हैं!"

पानी हरहराया!

सुबह नमी और ठिठुरन रही। कोहरे के खुरदुरे, दूधिया टुकड़े अंगारा पर झूलते रहे। हवा में बर्फ़ की सी महक रही। यह महक वायु के पंखों पर सवार होकर दूर के पहाड़ों से यहाँ तक आती रही। मेरे दाँत सर्दी के साथ-साथ जोश के कारण भी कटकटाने लगे। खुदाई की पायोंवाली दो मशीनें एक-दूसरे के आमने-सामने खड़ी रहीं। उनके डण्डे पतले सेतु के ऊपर पसरे रहे, और सेतु अंगारा को हमारी गढ़ैया से अलगाता रहा।

एक्सक्वेटर, सन्नाटा तोड़ते हुए, सेतु की ज़मीन खोदने लगे। मशीनें अपनी घड़घड़ाहट से कानों के पर्दे चीरने लगीं, और मशीनों के खुदाई करने वाले हिस्से पूरी ताक़त से अपने दाँते मजे में पिटी मिट्टी में गड़ाने लगे। इससे धरती जैसे हिल-हिल उठने लगी। कैमरामैनों के दृश्य के फ़ोटो लेते ही फ़्लडलाइटें उमड़ पड़ीं।

पूरी भीड़ ने सुख और सन्तोष की साँस ली—बीच से पानी की बूँदें टप-टपकर चूने लगीं। ज़मीन में फिर दाँतें गड़े और थक्के के थक्के मिट्टी के साथ फेन भरा साँवला सोता सा गढ़ैया में उमड़ चला। अब सब कुछ अपनी ही गति पर निर्भर जान, ऑपरेटरों ने एक्सक्वेटरों की रफ़्तार बढ़ाई तो डण्डे हवा में शूँ-शूँ की आवाज़ कर इधर से उधर लहराने लगे। सोता धीरे-धीरे बड़ा ही बड़ा होता गया। होते-होते बाँध पानी से नहा-नहा उठने लगा। और, फिर तो एक और, केवल एक क्षण और, और, बीच से बहुत तेज और मोटी धार फूट निकली!

दृश्य अपने आप में जितना ही विराट लगा, उतना ही रोमाँचकारी। पानी ज़ोर की

हर्र-हर्र आवाज़ करता हुआ गढ़ैया में भरता गया। एक्सक्वेटरों ने अपनी स्की जल्दी-जल्दी हटायी और वे खुद भी झरने से पीछे हट गये। किनारे खड़ी भीड़ खुशी से चिल्लाने और पानी में पत्थर फेंकने लगी।

पानी की सतह पल-पल बढ़ती गयी और आस-पास का सब कुछ हमेशा-हमेशा के लिए जलमग्न हो गया—क्या वे सड़कें जिनपर चलकर हम हड़बड़ाते हुए हर रोज काम पर जाते थे, और जिनपर ड्राइवरों ने जाने कितनी बार अपनी ट्रकों के स्प्रिंग तोड़े थे; क्या वे टीले जिनपर शिफ़्ट के शुरू होने के पहले हम जमा होते थे; क्या बूफेत यानी नाश्ता करने की वह जगह जो हाथी जैसी पच्चीस टनवाली 'माज' ट्रकों से हर समय घिरी रहती थी, और, क्या वह दफ़्तर जिसकी बरसाती में खड़े होकर हमने चुनौतीवाला ध्वज प्राप्त किया था। और, जहाँ निकोलाई ने भाषण दिया था!

मन ने कहा—"यह सारी जगहें हमें कितनी प्रिय हो गयी थी, पर अब इन्हें कभी कोई न देख पायेगा। हाँ, अगर पचास-सौ साल बाद किसी ने बाँध की नींव देखनी-समझनी चाही और पानी में गोता लगाया तो उसकी बात अलग होगी!"

पेतका हाँफता, कराहता और बराबर अपने कमरे का खटका दबाता रहा।

"लड़को, मैं अपना फावड़ा वहाँ नीचे छोड़ आया हूँ!" कोई खुशी से खिलते हुए चिल्लाया।

पर, नीचे वहाँ तो साँवले पानी की भँवरें उमड़ और उबल रही थीं। इस साँवले पानी में खपच्चियाँ, कूड़ा-कचरा, तख़्ते और कुन्दे जहाँ-तहाँ उतरा रहे थे। हमारे कंकरीट के सेतु और बन्धियाँ पानी के नीचे डूब गयी थीं।

इस तरह दूसरा बड़ा बाँध खुल गया। अब पानी दो तरफ़ से बहकर गढ़ैया में आने लगा, और गढ़ैया ऊपर तक लबालब प्याले की तरह लगने लगी। हम साँचा-पुल पर आ खड़े हुए। इस बीच नीचे की खाई भर गयी तो भूरे फेन के धक्कों से भरपूर गन्दला पानी हमारे पैरों के पास हहराने लगा। हमें लगा कि अंगारा चक्कर काटने के बजाय अब अपने आप सीधे-सीधे बहने लगेगी और उसका पानी स्टेशन के खुले हुए पेटों से होकर गुजरने लगेगा।

पर, नदी इस बात पर राजी न लगी। खाई भर गयी तो पानी धीरे-धीरे स्थिर हो गया और अंगारा अपने पुराने ढंग से बहती रही।

यानी, लड़ाई का सबसे बड़ा मोर्चा तो अभी फ़तह करने को रह ही गया था। यानी, अभी तो नदी की धार मोड़नी थी। इसके लिए पीपे के पुल से बड़े-बड़े पत्थर और कंकरीट के घन उसमें पाटने थे और ख़्याल था कि इनके वहाँ पड़ते-पड़ते नदी की धार का उस तरह आगे बढ़ना रुक जायेगा।

मेरी तो बीमारी की छुट्टी का अभी एक दिन बाकी था। फिर भी मैं काम पर जा पहुँचा। भला बतलाइए कि जिस समय मेरी टीम नदी के किनारे के एक विशिष्ट स्थान पर कंकरीट के घन ढाल रही हो, उस समय भला मैं हाथ पर हाथ रखे बैठा कैसे रहता!

मोर्चा ठना—

पहले तो ऐसा लगा जैसे कि कोई साज-समारोह हो। पीपे का पुल झण्डों और प्लैकाडों से सजाया गया। शाम गरम और सुहानी लगी। अच्छे से अच्छे फ्रॉक पहिने लड़कियों, बड़े-बूढ़ों और परिवारों की भीड़ों की भीड़ें बड़े उछाह से अंगारा के किनारे जमा होने लगीं। नदी के आसपास वातावरण में उत्सुकता लहरें लेने लगी, जैसे कि आगम का अनुमान पहले से हो गया हो। कंकरीट के घनों और पत्थरों की बगल मे सैकड़ों ट्रकों की क़तारें लग गयीं। भाप से चलनेवाली 'स्कोदा'-मशीनें भकभकाने और तेजी से भभके छोड़ने लगीं।

कुछ ड्राइवर अपनी मशीनें गरम करने लगे तो कुछ हँसते और अपने दस्ताने पटपटाते हुए टोलियों में जमा होने लगे। इसी समय शोरगुल, बातचीत और हँसी के ठहाकों के ऊपर उभरती हुई आवाज़ लाउड-स्पीकरों से गूँजी—"कामरेड पोपोव, प्रधान कार्यालय में आपकी ज़रूरत है... कृपया आयें।"

कैमरामेन पुल के पास के अपने मचान पर व्यस्त हो उठे। पुल की ओर का रास्ता हर एक के लिए बन्द कर दिया गया तो पानी की भयानक हरहराहट की पृष्ठभूमि में वह बिल्कुल सुनसान हो उठा और साँय-साँय करने लगा। पाट आश्चर्यजनक ढंग से घट गया। लगने लगा कि पत्थर इस किनारे से फेंका जाये तो उस किनारे जा गिरे। यानी, अंगारा एम्बैंकमेण्टों के बीच इस तरह कस दी गयी थी कि फूट-पड़ने, फूट-पड़ने को हो रही थी। गहरा हरा पानी, जकड़े हुए, चिकने घेरे की शक्ल में, पीपों के नीचे से उभर रहा और एक्सप्रेस-गाड़ी की रफ़्तार से बह रहा था। पर, छः या सात मीटर दूर जाने के बाद उसकी परत चटक जाती, चूर-चूर हो जाती, और हर ओर फेन और झाग ही झाग हो जाता। कहना न होगा कि ऐसी तेज और ताकतवर धारवाली नदी पर बाँध बनाने की कोशिश इसके पहले कभी किसी ने न की थी।

ऐसे में कार्रवाई सात बजे शुरू हुई—बिल्कुल साधारण ढंग से, एक्सक्वेटर झनझनाया और बड़ी सावधानी के साथ उसने पत्थरों का पहिला बोझ पहिली ओहारवाली ट्रक में खाली किया। ट्रक पुल की ओर दौड़ चली। दूसरी ट्रकें, एग्ज़्वाहस्टों के धुएँ के बादलों के बीच क़तार बनाकर एक्सक्वेटर की सीध में आ गयीं। अब वे बोझ से लदतीं, घड़घड़ातीं, खड़खड़ातीं, पुल की तरफ़ उड़-चलतीं, चारों ओर लहरातीं, किनारे पर पहुँचकर पीछे हटतीं, और पत्थर पानी में उलट देतीं।

किनारे जमा लोगों के मनों में तरह-तरह की भावनाएँ उठने लगीं। चीखें सुनाई पड़ीं।

"देखो तो, धार पत्थरों को किस तरह झटककर दूर फेंक देती है! कोई चारा नहीं! पत्थर तल तक तो पहुँचते ही नहीं!"

"देखते-देखते पत्थर बहकर एक मील दूर निकल गये हैं।"

और तो और, धार ने पत्थर की बड़ी-बड़ी सिलों को भी कुछ देर तक सतह पर घसीटा और तब कहीं जाकर वे आँखों से ओझल हुई। कंकरियाँ तो ऐसे किनारे-किनारे उतराई, जैसे कि महज बालू हो। इस तरह अंगारा क्रोध से दाँत पीसती रही।

तो, गरजती हुई 'माज' ट्रकें एक-एक कर किनारे जातीं और पत्थरों के अम्बार पानी में उलट आती। एग्ज़्हास्टों के धुएँ के निलछरे-भूरे बादल जहाँ-तहाँ हवा की लहरों पर लहराते और फड़फड़ाते झण्डों के अलावा कहीं कुछ भी नज़र न आता। पत्थरों के घड़घड़ाने, चूर-चूर होने, और नदी के हहराने से ऐसा तूफ़ान बरपा होता कि कानों के पर्दे फटने लगते, और लाउड-स्पीकरों से जो कुछ कहा जाता उसके एकाध शब्द ही सुनाई पड़ सकते—

"होशियारी से काम करो! रफ़्तार धीमी न होने पाये! सब कुछ तुम्हारी मेहनत पर ही निर्भर है..."

अफ़वाह कानों में पड़ी कि निर्माण के चीफ़ के अनुसार, ड्राइवरों को, बिना आराम किये, अगली शाम तक काम करना पड़ेगा... यानी, चौबीस घण्टे तक तो यह सिलसिला चलेगा ही, अगर और ज़्यादा नहीं तो!... किसी की समझ में न आया कि अंगारा के मन में आख़िर है क्या, और आख़िरकार वह रूप क्या लायेगी!

"जख़ारिच!" पेतका और मैं एक साथ चिल्ला पड़े।

अपनी ट्रक पर पत्थर लादे बूढ़े ने केबिन से झाँककर देखा; हाथ हिलाया और धुएँ और धूल के बादल में खो गया।

हम उससे 'छेड़छाड़' करने के लिए एक्सक्वेटर के पास जा पहुँचे। पेतका ने कोई पाँच या छः बार उसका फ़ोटो लिया और बूढ़ा ज़रा परेशानी से मुस्कराते हुए सब कुछ सहता गया। लेकिन, अन्त में, हमें वहाँ से भगाने के लिए उसने अजब तरह का चेहरा बनाया।

"मैं केबिन में तुम्हारे साथ बैठ जाऊँ, जख़ारिच?"

"नहीं... किसी को ले जाने का हुक्म नहीं है... ख़तरे का मामला है, छोकड़ो!"

इस बीच पुल के पास अपार भीड़ उमड़ पड़ी तो ड्यूटी पर तैनात लोग गला फाड़-फाड़कर आग्रह-और मिन्नत करने और क्रोध बरसाने लगे—"रास्ता साफ़ कीजिए!... पुल से दूर हटिए न!"

ट्रकों की अनन्त बाढ़ सी आ गयी और वे आग उगलते टैंकों की तरह, हवा की तेजी से, हमारी बगल से ऐसे गुजरती रहीं कि एक क्षण को भी तार टूटने को न आया। पत्थरों पर पत्थरों के ढेर पानी में उलटे जाते रहे, पर अंगारा उन्हें उतनी ही आसानी से, बिना किसी तरह की कोशिश के, बहा ले जाती रही। बस, एक छपाका होता, कुछ पीले-पीले बुलबुले उठते, थोड़ा सा फेन जमा होता, और फिर झलाझल धार, हहराते हुए उमड़ चलती। सारा कुछ देखने से सिर चक्कर खाने लगता।

मैंने किसी किताब में कहीं पढ़ा था। वहाँ अंगारा के पानी का रंग निलछरा-हरा

बतलाया गया था। सचमुच इसे यही संज्ञा देनी भी चाहिए। यह निर्मल जल ऐसा मालूम होता है जैसे बिल्लौरी शीशा साथ ही दमकता है किसी बेशकीमती नग की तरह। शायद इस दमक का आधार इसके अन्तर्जगत का अपना कोई न कोई जीवन है... उस शाम कैमरामैनों ने रंगों की इस क्रीड़ा को पकड़ में लाने की बड़ी कोशिश की, और इस प्रयत्न में सैकड़ों गज फिल्म बरबाद कर डाली। पर, नतीजा कुछ न निकला। यानी, उनका मन न मानता और रहे-रहे वे हवा में उड़ते फेनवाली तेज धार के फ़ोटो पर फ़ोटो लेने शुरू कर देते... पेतका ने तो मेरे सामने अपनी भूल मानी और बोला—"वैसे तो मैं अच्छी तरह जानता था कि नतीजा कुछ न निकलेगा, और आदमी की आँखों के सिवाय इन शानदार रंगों को किसी और तरह गिरफ़्त में लाना मुमकिन नहीं; फिर भी, इस पानी के पीछे अपनी आधी फिल्म मैने भी पानी कर डाली।"

और, इस तरह जादू में बँधे से हम सब के सब खड़े रहे...

पुल सैकड़ों ट्राकों के बोझ से रह-रहकर कराह उठता। वह दबता, लहरता। यहाँ झटके से नीचे की ओर झुकता तो वहाँ ऊपर की ओर उभर उठता। पीपे कहीं पानी में धंसने लगते तो कहीं ऊपर उतराने लगते। दूसरी ओर, ट्रकें हिचकोले खाती दौड़ती चली जातीं। धुएँ का बादल आसमान में लटका रहता।

ऐसे में रहे-रहे अचानक ही अँधेरा हो गया और सैकड़ों फ़्लडलाइटें जला दी गयीं तो सारा दृश्य बहुत कुछ ऐसा लगने लगा जैसे कि रात के समय किसी फिल्म की शूटिंग की जा रही हो। हर तरफ़ एक आम शोर-गुल, एक आम दौड़धूप का वातावरण बन गया। ट्रकें पूरी रफ़्तार से अँधेरे के बीच से उभर कर रोशनी से जगमग करते पुल पर आती रहीं। लाउड-स्पीकर रह-रहकर कुछ कहते रहे, जो सुनने में कविता सा लगता रहा।

इस बीच मेरे शरीर की सारी सकत ज़वाब दे गयी, और दौड़ना, खड़े रहना, या सहज आँखों से ही कुछ भी देखना मेरे लिए असम्भव हो गया।

एक घण्टा गुज़रा, एक घण्टा और गुज़रा, फिर एक घण्टा और गुज़रा—यानी इस तरह तीन घण्टे गुजर गये। मैं बोला—"साथी डिस्पैचर, कृपया मुझे किसी ट्रक में बैठाल दीजिए... मैं पत्र-संवाददाता हूँ... मेरे लिए ज़रूरी है कि मैं पुल पर जाऊँ और सब कुछ पास से देखू!"

डिस्पैचर ने मुझे सिर से पैर तक सन्देहभरी दृष्टि से देखा। पर, मेरे सीने की जेब से बाहर झाँकते फ़ाउण्टेनपेन ने जैसे मेरी बात पर मुहर मार दी।

"बैठ जाइए... दो बार में जाइए—सब कुछ देख लीजिए..."

"जख़ारिच, मैं चल रहा हूँ तुम्हारे साथ!" मैंने कहा।

दूसरे ही क्षण 'माज' झटके से स्टार्ट हुई, और मेरे कुछ समझने-बूझने के पहले ही पुल पर हिचकोले खाने और रह-रहकर उछलने लगी। मेरा कलेजा मुँह को आ गया। गाड़ी बगल से गुजरी तो एक लड़की ने झण्डा लहराकर कुछ संकेत दिया और जख़ारिच ने उसकी हर हरकत का स्कूली लड़के की तरह पालन किया। पुल, तूफ़ान में फँसे

जहाज़ की तरह, नीचे-ऊपर होने लगा। दूसरी ओर, हर धचके के साथ मेरा दिल बैठने लगा और मुझे अपनी तबीयत ज़रा-ज़रा ढीली लगने लगी। अन्त में हमारी ट्रक के पत्थर पानी में उलटे, फेन उड़ा, और एक गन्दी सी झिल्ली ने सारी जगह घेर ली। पर, दूसरे ही क्षण पानी फिर शीशे की तरह निर्मल हो उठा और अपनी गति से बहने लगा।

"धार ने पत्थरों का बहा ले जाना बन्द कर दिया है क्या?"

"अरे, नहीं, पत्थर बराबर बहे जा रहे हैं..... कितने ही तो अब तक इर्कूत्स्क भी पहुँच गये होंगे!"

"तो, इस तरह फायदा क्या होगा, जख़ारिच?"

"कोई बात नहीं। हम तब तक भिड़े रहेंगे जब तक जीत दो में से एक-न-एक की न हो जायेगी.... इसके मानी यह है कि या तो हम इस धार को घोट जायेंगे, या यह हमें चट कर जायेगी।"

"यह तो ठीक है, लेकिन......"

"खैर...... लेकिन, तुम क्या सोचते हो कि यह बच्चों का खिलवाड़ है कोई?"

"तो, तुम लोग चौबीस घण्टे बराबर काम करोगे?"

"जो अपने आप करना चाहेंगे वे ज़रूर करेंगे..... शायद चौबीस घण्टे से भी ज़्यादा करेंगे।"

"और, आराम कब करेंगे?"

"कैसा आराम?....."

मैं पहली बार जख़ारिच के साथ ऐसी ट्रक में सवार हुआ था। और, जान हर एक को प्यारी होती है, सो मैंने दरवाज़े का हैंडिल पूरी ताकत से जकड़ रखा था। पर, इस पर भी सिर छत से टकराते-टकराते बची। फिर, धचके ऐसे लगे कि मुझे अपनी आंतें उलटती मालूम होने लगीं। इसके साथ ही इंजन की घड़घड़ाहट से कान फटने लगे तो पेट्रोल की बदबू ने गला पकड़ लिया। रोशनीदार डायलों की सुइयाँ मेरी आँखों के आगे नाचने लगीं। जख़ार जख़ारिच ने बौखलों की तरह स्टीयरिंग घुमाते हुए बाहर झाँककर देखा और किसी से चिल्लाकर कुछ कहा...

"तुम्हारा काम बड़ा मुश्किल है।"

"काम है... हर काम की तरह काम है।"

"लेकिन, तुमसे इतना सब चलता कैसे है?"

"आदमी धीरे-धीरे आदी हो जाता है।"

मेरी आँखों के आगे एक-एक कर सारे दृश्य आने और अपने आप बदलने लगे—पहले एक्सक्वेटर का टब आया, फिर पत्थरों के अम्बार के अम्बार ट्रक में भरे गये, फिर सड़क की पट्टी दौड़ती हुए बगल से गुजरी, फिर पुल के किनारे की भीड़ नज़र आई, फिर निलछरा-हरा पानी सामने हरहराया, फिर पीले बुलबुले उठे, और फिर एक्सकवेटर का टब सामने आ गया। पर, सारी तस्वीरें इतनी तेजी से कौंधीं कि मेरी

कनपटी झनझनाने लगी और सिर घूमने लगा।

जख़ार जख़ारिच बोला—"सबसे बड़ी बात यह है कि आज हम बिना मानकों के काम कर रहे हैं और कोई हमारे इस काम का रेकार्ड नहीं रख रहा। तुम्हें जानना चाहिए कि ड्राइवर भी कैसे बीहड़ लोग होते है! मामूली तौर पर, अगर तुम एक खेप अलग से न जोड़ो तो वह काम में हाथ लगाना तो दूर रहा उँगली से छूकर नहीं देगा। पर, ज़रा इस समय तो देखो उसी ड्राइवर को! हर आदमी जल्दी से जल्दी, तेज से तेज ट्रक हाँकना चाहता है, और भरसक ज़्यादा से ज़्यादा काम करना चाहता है। पर, किसी को पता न चल पायेगा कि हर ड्राइवर ने अलग-अलग कितना काम किया आज! यह तो सारे कामगारों का मिलाजुला काम है! लेकिन, इसपर भी लोग जान छोड़ काम खींचे जा रहे हैं। तुम बतला सकते हो कि भला क्यों? तुम बतला सकते हो कि क्यों इनमें से हर आदमी अपने आप आगे आया है और उसने चौबीस घण्टे बराबर काम करने की सोची है? हाँ, हर आदमी ने सोची है... एक ऐसा नहीं है जिसका नाम पीछे रह जाने वालों में लिया जा सके! तुम इस बात का मतलब समझते हो? अगर उनसे कहा जाये कि अपनी ट्रकें ले जाओ और इनसे नदी के ऊपर बाँध बना दो तो मेरा पूरा विश्वास है कि जाने कितने लोग इसके लिए भी राजी हो जायेंगे।"

मुझे भी लगा कि हाँ, राजी हो जायेंगे। पर, मैं ठीक-ठीक सोच-समझ कुछ न पाया—मेरा दिमाग़ तो धचकों के कारण परेशान रहा। आख़िरकार मैं ट्रक से पुल पर कूद आया...

"आ-हा, अब हाथ आ पाये हो तुम!" किसी ने चीखकर कहा। मैं मुड़ा तो मैंने अपने को मीशा ओलखोन्स्की की पकड़ में पाया। गौर किया तो उसके हाथ में नाप का टेप-फ़ीता देखा। वह बोला—"देख रहे हो, क्या कुछ हो रहा है? देखते हो न? साइबेरिया अब भी किसी काम का नहीं है न? बोला, कहो तो, तुम्हें वहीं छोड़ आऊँ?"

उसकी आँखें, चंगेज खाँ जैसे पुरखों से वसीयत में मिली, पशुता से जलती लगीं, और किसी हद तक मेरी हिम्मत भी छूट गयी। पर, यह क्षण जैसे आया वैसे ही चला गया। मीशा की आँखें खुशी से चमकने लगीं और वह खुद उल्लास से भरकर चीखने लगा—"जानते हो, धारा की रफ़्तार बढ़ गयी है! म्याँ छुइ-मुई, इसका मतलब समझते हो? नहीं, तुम कुछ नहीं समझते, तुम कुछ नहीं समझ सकते!"

और, मेरा ख़्याल छोड़ वह दौड़ता चला गया। मैंने पुल के किनारे से हरी गहराइयों पर निगाह डाली। देखा कि फ़्लडलाइटों के पानी की घनी परतें भेदते ही रंग-बिरंगी रोशनियाँ झिमिलाने लगती हैं और पानी जगर-मगर कर उठता है। वैसे तल मुझे नज़र न आया। लगभग आधी रात का समय लगा। थकान से चूर-चूर हो जाने के कारण लड़खड़ाता, और पूरे ध्यान से ट्रकों के पहियों से अपने को अलग ही अलग रखता। मैं जैसे-तैसे पुल से बाहर आया और पत्थरीले किनारे पर भहरा पड़ा। इसी समय भीड़ में खड़े लोगों की आवाज़ कानों में पड़ी—"घन... अब घन आ रहे हैं!"

मोर्चा ठना रहा–

सचमुच का मोर्चा तो अब ठना। इसके पहले जो कुछ हुआ उसे तो फ़ौजी समझ-बूझ की कार्रवाही भर समझिए। तो, इस समय क्रेन गरजे और ट्रकों की दूसरी क़तार सामने आई। कंकरीट का पहिला घन पानी में गिरा तो बन्दूक के दगने की सी आवाज़ हुई। फेन ऊँचा उछला। जैसे किसी ने घन को उलटकर ऊपर की ओर लोकाया ओर फिर धार उसे यों बहा ले गयी, ज्योंकि वह महज दियासलाई की डिबिया हो। किनारे खड़े लोगों के मुँह से कराह निकल गयी—तो अंगारा कंकरीट का घन तक बहा ले गयी!

अब बड़े, छोटे, चौकोर और लम्बोतरे घन पानी से टकराने लगे और टकराहट का यह तार इस तरह छिड़ा, जैसे कि तोपों से गोलों पर गोले बराबर दागे जा रहे हों। तमाम ट्रकें सिर्फ़ घन लाने के काम में लगा दी गयीं। लेकिन, मझधार में क्या हो रहा है, यह कहना नामुमकिन रहा। छलिया पानी धोखा देने की कोशिश करता और आपकी तरह में घन पड़ा दिखता, पर आप निगाहें गड़ाकर देखते तो मालूम होता कि यह तो महज रोशनी का खिलवाड़ है। खर, तो तोपों से गोलों पर गोले छूटते रहे। आधी रात जाने कब की बीत गयी। लगभग सारी की सारी बस्ती किनारे बनी रही। भीड़ में मुझे अपने सभी जाने-पहचाने मिले—ओक्त्याब्रीना, अपने वोवका के साथ वाल्या सेरेदा, कुबिशकिन, गाल्या और तमारा, आदि-आदि। सभी अत्यधिक उत्तेजित लगे और वहाँ से घर जाने की बात किसी के भी होठों पर न आई।

इसी समय लाल स्याही में छपे कुछ इश्तहार चारों ओर बाँटे गये। इसके पहले उड़ती-उड़ती ख़बर कानों में पड़ी कि पुल का एक केबुल कट गया है। लगा कि अगर कहीं पुल बह गया तो सारा खेल खत्म समझो—उसपर यह कि पुल पर के एक आदमी की जान की खैर नहीं!

निलछरा-हरा पानी... निलछरा-हरा पानी कैसा मनोहर!...

अचानक ही आगे खड़े लोगों में से कोई चिल्लाया—"नज़र आ रहा है!... वह देखो, घन ऊपर ही नज़र आ रहा है!" लोग उत्तेजना से हाँफने लगे।

मालूम हुआ कि आख़िरी घन नीचे नहीं गया, और, पता नहीं किस जादू से, नदी के बीचोबीच सतह पर ही बना रह गया। सवाल उठा कि आख़िर किस चीज़ ने इसे इस तरह साध रखा है—आख़िर यह कैसा करिश्मा है? पर, बात मेरी समझ मे आ गयी कि घनों की बाड़ तल तक पहुँच गयी है, यह घन टूटे हुए दाँत की तरह उभर आया है और अब पानी इसके चारों ओर चक्कर काट रहा और झाग उगल रहा है। मैंने नज़र दौड़ाकर पानी में हिलते-डुलते घन को देखना चाहा। मन ने कहा—"कहीं मृग-स्वप्न की तरह यह हवा न हो जाये?" पर, नहीं, घन बना रहा, और बराबर जहाँ का तहाँ बना रहा।

लोग घन पर घन गिराते गये और पुल ऊपर ही ऊपर उठता गया। होते-होते ऐसा लगने लगा जैसे कि बीचोबीच, बाहर की ओर निकले, टूटे दाँतवाली पानी की गोलाकार पहाड़ी के ऊपर बिछा हो। पानी की सतह ऊपर ही ऊपर उठती गयी। ज़ोर पड़ा तो केबुल रहे-रहे चरमराने लगे। अंगारा बाड़ के ऊपर लोटने लगी और धार दूसरी ओर के प्रपात में गिरने लगी।

"दूसरा घन! वह देखो, वह दूसरा घन!"

"सुनो, सुनो, कान लगाकर सुनो! अंगारा स्टेशन से होकर बहने लगी है!"

लड़ाई फिर भी चलती रही–

हमारे कंकरीटवाले हिस्से में बड़ी शान्ति और सन्नाटा था। पेतका ने एक खम्भे में हड़बड़ी में जो लालटेन टाँग दी थी, उसकी मद्धिम-मद्धिम रोशनी चारों ओर पड़ रही थी। कुछ भेदभरी छायायें, जाने कौनसे जादू-टोने करती, इधर-उधर आ-जा रही थीं। ट्रकें कंकरीट का मलबा ला-लाकर ज़मीन में बने चौकोर गढ़ों में उड़ेल रही थीं। वहाँ कंकरीट जमती जा रही थी।

प्रधान कार्यालय से खबर आई थी कि हज़ार घनों की ज़रूरत और पड़ेगी—बाँध का काम अगले चौबीस घण्टों के पहले खत्म न होगा। वैसे तो अंगारा ने मोड़ ले लिया है, परन्तु इसपर भी पानी घटता-बढ़ता रहेगा और ट्रकें घन पानी में उसी तरह गिराती रहेंगी...

"दोब्री वेचेरे*, तोन्या!"

"तुम सो नहीं रहे न? तड़का जाने कब का हो गया। बेवक़ूफ़ कहीं के, ज़रा सा आराम क्यों नहीं कर लेते? आठ बजे काम का चार्ज हम से ले रहे हो... है न?"

लेकिन, ऐसी रात में भला मैं सो कैसे सकता हूँ?"

इसी समय दाशा बीच में फट पड़ी—"तोल्या, बड़े अच्छे हो तुम, मेरा यह वाइब्रेटर तो साध लो ज़रा-सा... काहिलो, तुम आँखें फैला-फैलाकर सारा कुछ देखते रहे हो और हम हैं कि हमें बाँध की झाँकी तक नहीं मिली है... पाँच मिनट लगेंगे... साध लो न!"

"अच्छा-अच्छा!"

"लेकिन, तुम यह, तुम वह, काम क़ायदे से करना... वाइब्रेटर पुराना है, तोड़-ताड़ मत देना।"

थोड़ी दूर पर ट्रकों की हेडलाइटों और फ़्लडलाइटों से फूटनेवाली किरनें धुएँ का बादल काटतीं, और वही तोपों पर तोपें दगतीं। धुआँ, चमक और दौड़ते झपटते लोगों के आकार देखकर ऐसा लगता जैसे कि बहुत ज़ोर की आग लग गयी हो।

तोन्या और मैं अगल-बगल काम करते और सूराखों में वाइब्रेटर झुकाते। कंकरीट

---

* गुड ईवनिंग।

में हरकत होती, बुलबुले फूटते और फिर कंकरीट जम जाती।

"अगर सब कुछ पहले से बन-बना गया होता तो जीवन नीरस होता, क्या ख़्याल है?"

"ऐसा कभी हो नहीं सकता," तोन्या ने उत्तर दिया।

"लेकिन, यह अच्छा है?"

"अच्छा है।"

"इसमें सच्चाई है?"

"सच्चाई है।"

"भला तुम्हें कैसे मालूम कि मैं किस चीज़ के बारे में बातें कर रहा हूँ?"

"मालूम है, क्योंकि मैं भी वही बात सोच रही हूँ... मैंने तो तुमसे खुद भी एक बार इसकी बात चलाई थी।"

उसने मुझसे कभी इस क़िस्म की कोई बात न की थी। लेकिन इसपर भी मुझे ऐसा लगा जैसे कि सचमुच उसने की हो और जैसे कि हम दोनों जाने कब से उसपर बहस करते रहे हों—जैसे कि बहस की कोई बात न तो सुनी गयी हो, और न देखी गयी हो, पर बहस फिर भी गरमागरम रही हो।

"तोन्या, आज तुम्हारा व्यक्तित्व एक है—नाच की शामों की तोन्या और ब्लॉक की तोन्या दो नहीं हैं—सारे कुछ से एक इकाई ढलती है।"

तोन्या ने मुझपर निगाह डाली, और मैं दोनों को एक दूसरे की ओर खींचने वाले वशीकरण के प्रति जागरूक हो उठा। मुझे लगा कि जागरूक वह भी है—चाहती वह भी है, पर डरती है—अगर मैं उसे अपनी बाँहों में कस लूँ तो मुँह से एक शब्द न कहेगी—बस, मेरी आँखों की गहराइयों में निगाहें पैराती चली जायेगी; और, अगर मैं उसे चूम लूँ तो...

मैं लहराता हुआ उसकी ओर बढ़ा, और मैंने कोहनी के ऊपर से उसका हाथ थाम लिया—हाथ बहुत गरम और जानदार लगा...

"तोन्या, तोल्या! कहाँ हो तुम लोग?"

दाशा तख़्तों पर दौड़ती हमारी ओर आती नज़र आई। उसके पीछे-पीछे अपने वोवका को हाथ के सहारे घसीटती वाल्या सेरेदा दिखी। उसके स्वर सुनाई पड़े—"यह ठुनकना बन्द करो... बन्द करते हो कि दो-चार हाथ जमा दूँ तुम्हारे चूतड़ों पर... तुम्हारा मन चाहे तो सारे दिन पड़े सोते रहना... माँ को तो काम पर जाना होगा! माँ तुम्हारे साथ मटरगश्ती करती नहीं रह सकती, और अब ज़रा भी नहीं रुक सकती... लड़कियो, कोई ट्रक जल्दी ही आयेगी इधर या नहीं? वोवका के साथ मैं घर जा रही हूँ.... चाची से 'दोस्विदानिया'* कह देना।"

---

* अलविदा—गुड बाई।

तोन्या लपकती हुई अनमने और आहत से वोवका के पास पहुँची और कुछ इधर-उधर करने की कोशिश में अपने रूमाल से उसकी नाक पोंछने लगी। दाशा ने पहले मेरी ओर सन्देहभरी दृष्टि से देखा, फिर तोन्या पर एक नज़र डाली, और कटे-कटे से ढंग से बोली—"अब तुम जा सकते हो... मुझे जो देखना था, मैंने देख लिया।"

मेरे सीने में जैसे कुछ बजने लगा। मैं अगली ट्रक के आते ही केबिन में जा बैठा और वाल्या और वोवका मेरे पीछे-पीछे चढ़ आये। वैसे मुझे बड़ी खुशी हुई कि वोवका की नाक के बहने के कारण वाल्या का ध्यान मेरी ओर से बँटा रहा। मैंने दूर निगाह गड़ाई और दहकते आसमान और कंकरीटवाले हिस्से में टँगी एक अकेली लालटेन को एकटक देखने लगा। सड़क दूहों और बाँसों के बीच चक्कर खाने लगी, और चमक कभी बायें लौ देने लगी तो कभी दायें।

दास्तान चलती है–

वाल्या और वोवका लकड़ी के एक बड़े मकान की पहिली मंजिल के कोने के छोटे कमरे में रहते थे। कमरे में एक पलँग, बच्चे की एक चारपाई एक छोटी मेज और एक कुर्सी भी जैसे-तैसे ही अट पाती थी। सो कपड़े और सिलोलाइड के खिलौने इधर-उधर बिखरे पड़े थे। मेज पर ढेर की ढेर किताबों के साथ एक शीशा रखा हुआ था। इसके अलावा वहाँ थे रोटी के कुछ टुकड़े और दवा की कुछ बोतलें, और बस!

वैसे मेरे अन्दर जाने की कोई खास ज़रूरत न थी पर इनकार करने का हिआव मेरा न हुआ। दूसरी ओर अन्दर आकर एक प्याला चाय पीने का आग्रह वाल्या ने इस तरह किया, जैसे कि कोई बड़ी बात उसपर निर्भर हो, या जैसे कि कोई बहुत महत्वपूर्ण बात वह मुझे बतलाना चाहती हो!

"यह है मेरा घर... घर क्या है, महल है, क्यों? माफ़ करना कि चीज़ें इस तरह ऊबड़-खाबड़ ढंग से उल्टी-सीधी पड़ी हुई हैं। पर, मैं करूँ तो करूँ क्या! मुझे घर ठीक-ठाक करने का समय ही नहीं मिलता। दिन भर वोवका 'दूयेत्स्की साद'* में रहता है, और मैं काम पर रहती हूँ। बस, शाम को साने आते हैं हम यहाँ।"

"वाल्या, तुम्हारे परिवार के लोग हैं?"

"नहीं, सब के सब मर गये, मैं दुनिया में अकेली हूँ।"

"अकेली?"

"हाँ, अकेली हूँ, पर मैं इसके लिए आँसू नहीं बहाती। आख़िर आँसू बहाने से फ़ायदा? अगर मैं इस तरह हर छोटी-बड़ी चीज़ पर ढरका बहाने लगूँ तो आँखों का पानी चुक जाये, और मुझे घोड़ो की तरह बाल्टी में मुँह डालकर पानी पीना पड़े...

* किण्डरगार्डेन—शिशु सदन।

वोवका, कंघी मुँह से बाहर निकालो... तुम्हें मेरा बेटा पसन्द है, तोल्या?... राजा बेटे, इधर आओ, लाओ, तुम्हारी नाक पोंछ दूँ। ठीक, दुबारा पोंछो!... आओ... इधर आओ, अपनी माँ के पास आ जाओ... बड़ा राजा है मेरा बेटा... बड़ा मुन्ना है!... इधर बैठ जाओ!"

उसने हम सबके लिए चाय उड़ेली, खुद एक घूँट पी, और बैठे-बैठे क्षण भर को विचारों में डूब गयी—"तो, हम दोनों अकेले रहते हैं... वोवका के पापा के बिना... यह मामला है... तुम्हारे भाई-बन्दों में भी एक से एक छँटे हुए होते हैं... हम लड़कियाँ बेवक़ूफ़ होती हैं... औरत बड़ी आसानी से मर्द पर यक़ीन कर लेती है और अपना सब कुछ उसे दे देती है... और, मर्द... तोल्या, यों ही चलते-फिरते ढंग से किसी लकड़ी को न चूमना... यह कोई मज़ाक नहीं है। और, अगर किसी लड़की से प्यार करना तो उसके साथ क़ायदे का व्यवहार करना... उसे दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक नहीं देना... मेरी बात मानना, ऐसा कभी न करना... देखो, ऐसा कभी न करना!"

यह बात उसने इतने आवेश और ज़ोर से कही कि मैं चौंक उठा।

"मेरी बात समझते हो... समझते हो न?"

"हाँ, समझता हूँ!"

"ओह, वोवका तुमने मेजपोश पर चाय फैला दी! क्यों?... क्या बात है? नहीं पीना चाहते? तो न पियो? सोना चाहते हो? ठीक, तो चाचा से 'स्पोकोइनोई नोची'* कर लो।"

वोवका शरारत करने लगा। रह-रहकर नाक छिनकता और लिटाया जाता तो सोता नहीं। रटता—"माँ... मोटरें! माँ, मोटरें!"

"बेचारा-बेचारा, बहुत उत्तेजित है, अब नहीं सोयेगा," वाल्या घबराहट से बोली, "यह चीज़ों से बड़ी जल्दी असर लेता है, और बहुत असर लेता है।"

बाँध के आसपास का प्रकाश खिड़की से नज़र आता रहा। तोपों की सी गरज यहाँ तक सुनाई पड़ती रही। मन ने कहा—"कहीं हवा की सनसनाहट तो नहीं है यह?"

"तो, तुम सोना नहीं चाहते?" वाल्या बेटे से बोली, "मैंने तो कहा कि चलो, जल्दी घर चलें, पर तुमने एक नहीं सुनी... तुम भला कहाँ के सुनने वाले! अच्छा, सुनो, मैं तुम्हें सफ़ेद बछड़े की कहानी सुनाती हूँ।"

"मैं छफ़ेद बछले की तहानी नई थुनूँगा!"

"तो फिर क्या सुनोगे?"

"मैं अन्दाला की तहानी थुनूँगा।"

"अंगारा ती कहानी तुम्हें दो बार तो सुना चुकी हूँ।"

"एत बाल औल थुना दो!"

वाल्या, चारपाई को हल्के-हल्के हिलाते हुए, बेटे को सुन्दरी अंगारा, बूढे बैकाल,

---

* गुड-नाइट।

योद्धा येनिसेई और भयानक शामन-चट्टान की दास्तान सुनाने लगी।

कहानी खत्म हो गयी, पर वोवका फिर भी नहीं सोया।

"औल," जिद करते हुए बोला।

"बस, कहानी खत्म हो गयी, अब सो जाओ..... मेरे लाल!"

"अबी तहानी ततम नई उई!"

"नहीं, बेटे, खत्म हो गयी। मैंने पूरी सुना दी।"

"पूली नई थुनाई।"

"अच्छा तो निचले होकर लेट जाओ और सुनो।"

कहानी मैंने भी सुनी, और बाद में याद से लिख ली.... कहानी यों है :

कहानी का अन्त

"और इस तरह अंगारा और येनिसेई हज़ारों-हज़ार साल तक जीते रहे।

"वे हमेशा खुश रहते—ऐसे खुश सिर्फ़ वे लोग रहते हैं जो बहुत-बहुत खुबसूरत होते हैं और साथ ही बहादुर भी होते हैं। वे पहाड़ों के बीच पड़े लचकदार पलँग के गुदगुदे बिस्तर पर आलस से लेटे रहते। सवेरा होते ही पानी की बौछारों का खिलवाड़ करते और अंगारा अपने रंग-बिरंगे फेन के हीरे दूर-दूर तक बिखरा देती।

"लेकिन, एक दिन एक बूढ़ा उनके पास आया और बोला—'खुशी न तो आलस से इस तरह पड़े रहने में है और न फेन के हीरे बिखराने में है। मैं जानता हूँ कि सच्ची और दुनिया की सबसे बड़ी खुशी किस बात में है। चाहती हो तुम कि उस खुशी का भेद मैं तुम्हें बतला दूँ, वह खुशी मैं तुम्हें दे दूँ?"

यह बात सुनते ही अंगारा हँसने लगी और अपनी गहरी काली मूँछों के बीच येनिसेई मुस्कराने लगा कि किसी में इतनी हिम्मत कि उन्हें जीने की सीख दे और बतलाये कि जीना इस तरह चाहिए!

फिर तो और जाने कितने-कितने लोग किनारे आये और बड़ी-बड़ी चट्टानें पानी में फेंकने लगे। अंगारा क्रोध से उमड़ने, उबलने और चट्टानों को इस तरह बहा ले जाने लगी जैसे कि वे सिर्फ़ रोयें हों। लेकिन, लोग कि पानी में पत्थर फेंकते ही तो रहे। अंगारा में बड़ा ज़ोर था, पर लोग उससे भी ज़्यादा ज़ोरदार पड़े। अंगारा बड़ी बहादुर थी, पर लोग उससे भी ज़्यादा बहादुर निकले। अंगारा दिल की बड़ी पोढ़ी थी पर लोग दिल के उससे भी ज़्यादा पोढ़े साबित हुए।

"और आख़िरकार लोगों ने अंगारा और येनिसेई को मज़बूर कर दिया तो अंगारा और येनिसेई लोगों के लिए बदन लचाने लगे—उनके लिए गरमी, रोश्नी और सुख गढ़ने लगे।

"और इसके बाद एक जादू हुआ—अंगारा और येनिसेई को लगा कि हम जिस

खुशी को अब तक खुशी समझते रहे हैं, वह तो सचमुच बड़ी छिछली है। सच तो यह है कि न तो अब तक हमने ज़िन्दगी देखी है, और न सच्ची खुशी के सही मतलब समझे हैं।

"इसका कारण यह है कि सच्ची खुशी न तो वहाँ होती है जहाँ हम सोचते हैं और न वह होती है जो हम समझते हैं। सच्ची खुशी तो जीतोड़ मेहनत से कमाई और सिरजी जाती है।

"मेरे लाल, तुम बड़े होगे तब मेरी बात का मतलब समझोगे--ज़िन्दगी में आसानी से मिलनेवाली खुशी के पीछे न भागना--आसानी से मिलनेवाली खुशी न दुनिया में कहीं होती है और न कभी होगी।

"इसलिए कि ज़िन्दगी है काम, ज़िन्दगी है मेहनत; और इस काम और इस मेहनत से ही सुख का सिरजन होता है। साथ ही यह भी है कि जो काम नहीं करता और केवल हीरे बिखराता रहता है, वह ज़िन्दगी में कभी कुछ नहीं समझता।

"क्योंकि काम करना, और मेहनत से गरमी, रोशनी और सुख गढ़ना ही दुनिया की सबसे बड़ी खुशी है।

छोटी-मोटी घटनाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से–

आख़िरकार लम्बे इन्तज़ार के बाद तनख़्वाह का दिन आया। पिछली बार अस्पताल में रहने के कारण मैं अपने रूबल न ले सका था, इसलिए इस बार दुगुनी रकम मिली। वैसे भी रूबलों के मामले में इधर मुझे किसी तरह की कोई तकलीफ न हुई थी क्योंकि जख़ार जख़ारिच की जेब हमेशा गरम रहती थी, और मैं ज़रूरत पड़ने पर कभी भी उधार ले सकता था जहाँ तक जख़ार जख़ारिच का सवाल है वह अकेला था और काफ़ी कमाता था इसीलिए जिस-तिस की मदद के लिए हाथ हमेशा खुला रखता था। चार बच्चों की माँ, कपड़े धोने वाली वह औरत उसके कपड़े धो देती और वह उसका खर्च चलाता। पेतका फ़ोटो की धुलाई के रसायनों के लिए उसे बेहयाई से दुहता रहता। यानी, अगर कभी ऐसा समय आये कि निर्माण-स्थल का फ़ोटो इतिवृत्त प्रकाशित हो तो सारी दुनिया को समझना चाहिए कि इस महान कार्य में आदि से अन्त तक रकम जख़ार जख़ारिच की लगी है।

और, अगर लोग कर्ज अदा करते और रूबल जख़ार जख़ारिच को लौटालते तो उसे हमेशा ही बड़ा ताज्जुब होता। कहता--"लो, मुझे नहीं याद पड़ता कि तुमने मुझसे कभी भी कुछ भी उधार लिया है!"

तो, मुझे दो बार की तनख्वाह एक बार में मिली तो मेरा मन खुशी से नाचने लगा। पर, परेशानी भी मुझे खासी हुई, क्योंकि नोटों की इतनी बड़ी गड्डी मैंने अपने हाथ में पहले कभी न साधी थी। यों नोट हाथ में रखना भद्दा लगा और पतलून की जेब में

रक्खे तो जेब इस तरह फूल गई कि और बेहूदा लगने लगा।

लेकिन, पहिला काम तो मैंने यह किया कि निकोलाई, लड़कियों और जख़ारिच का क़र्ज उतारा। लड़कियों को तो यही याद न रहा कि सौ रूबल की उस रकम में दस रूबल किसने दिये थे, अतएव सवाल उठा कि यह आख़िर मैं किसे दूँ? इसके बाद तीन सौ रूबल मैंने माँ के नाम रवाना किये। अन्त में, खाने और दूसरी चीज़ों के लिए रकम अलग कर देने के बाद मेरे पास चार सौ रूबल बच रहे।

मैंने एक घड़ी खरीदने का निश्चय किया। मेरे पास घड़ी कभी न रही थी और घड़ी वालों को देखकर मेरे मन में सदा ही डाह की भावना उठती थी। वीक्तोर जब से पाँचवें दर्जे में था तबसे उसके पास घड़ी थी। यहाँ जख़ारिच, तोन्या, लेओनीद, सभी के पास घड़ियाँ थीं। जाड़ा अभी दूर था इसलिए कोट की खरीद का सवाल आगे के लिए टाला जा सकता था। बस, तो मैं घड़ी खरीदने के लिए चल पड़ा।

मीशा ओलखोंस्की को इर्कूत्स्क में कुछ अपना काम था, अतएव वह अपने आप आगे आया और उसने मेरे साथ इर्कूत्स्क जाने और घड़ी के चुनाव में मेरी मदद करने का वायदा किया। हम 'ओरयोल' नाम की बड़ी मोटर-नाव में बैठे और रस्सों की गेंडुरियों और आग बुझाने की बाल्टियों के बीच भी हर तरह आराम का अनुभव करने लगे।

दैत्याकार क्रेनों के छः परिचित ढाँचे धीरे-धीरे धुन्ध में घुलते और दूर ही दूर होते चले जा रहे थे। स्टेशन की इमारत का अधिकांश हिस्सा पानी में डूब गया था। जो बचा था वह फेन की टोपियाँ लगाये पानी के ऊपर बिछा सा था, और दूर से सपाट सा लग रहा था। साँचा पुल पानी के ज़ोर के कारण झनझना और कँपकँपा रहा था। कुओं के मुँह पर तख़्ते रख दिये गये थे, क्योंकि अगर कोई भूल-चूक से उनमें गिर पड़ता तो बहकर चक्करदार चैम्बरों और घूमते हुए चक्कों के बीच पहुँच जाता, यानी बेचारे की जान चली जाती।

एक ओर मछलीमारी का तमाशा चल रहा था। मछली के शिकार के शौकीन पानी के निकासी के फाटकों की कारनिसों से सट जाते, सिर से पैर तक फेन से नहा उठते, और घर के बने जाल से मछलियाँ पकड़ते। यह मछलियाँ विस्मय और कमज़ोरी से टूटी हुई होतीं।

पानी का निलछरा हरा रंग ग़ायब हो गया था। नदी की भूरी, गन्दली, हहराती धार ने पेड़ों की जड़ें उखाड़ कर घास साफ़ कर एक नया रास्ता बना लिया था और पिछले एक सप्ताह से वह बराबर नीचे जमी मिट्टी रेत और कूड़ा-करकट बहाये लिये जा रही थी। किसी नदी के जीवन में इतना बड़ा उलट-फेर कोई मज़ाक की बात नहीं! ऐसे में भला क्या अचरज कि नदी के पानी में वह दमक, वह चमक और वह ठण्डक अब न रह गई थी!

मुझे याद है कि मैं बच्चा था तो एक गाँव में अपनी दादी के यहाँ रहता था। उस

समय हम सारे बच्चे एक खेल खेलते थे, जिसे 'बाँध बाँधना' के नाम से पुकारते थे। इसके लिए हम कछार में चले जाते, टोपियों और मुट्ठियों में भर-भरकर या लकड़ी के टुकड़ों पर रख-रखकर रेत लाते और सोते के किनारे जमा करते। इसके बाद हम धार के इस पार से बहुत से पत्थर फेंकते और रेत के पहाड़ को उस पर घसीटते। बाँध की मजबूती के लिए हम पैरों से उसकी कुटाई करते और इस तरह सोते की धार जकड़ जाती और फैलकर एक बड़ी गढ़ैया में बदल जाती। हम कैसे खुश होते, कैसे उछलते-कूदते, चीखते-चिल्लाते, और कैसे घुटने घुटने भर 'गहरा पानी' मँझाते फिरते!

खुशी! भला इससे बड़ी खुशी और क्या हो सकती है कि आप सचमुच किसी बड़ी चीज़ में हिस्सा ले रहे हैं, आपके हाथों का बना कंकरीट का ढाँचा ऊपर ही ऊपर उठता जा रहा है और हहराती हुई अंगारा के ऊपर आपके कदम मजबूती से जमे हुए हैं! हाँ, इतनी बड़ी दुनिया में फ़िक्र है तो सिर्फ़ एक कि चलकर एक शानदार घड़ी खरीदी जाये!...

"मीश्का, आदमी तुम अद्‌भुत हो, पर स्तिल्यागा* हो।"

इस पर मीशा ने अपने नये सूट और मोटे क्रेप के तल्लोंवाले जूतों पर ऊपर से नीचे तक एक निगाह डाली और अचानक ही गालियाँ बरसाने लगा—"गधे कहीं के! उल्लू के पट्ठे! बस यह बेसिर-पैर की, बेवक़ूफ़ी से भरी बातें कर आती हैं तुम्हें! तुम्हारा ख़्याल है कि कोई आदमी अगर ठीक-ठाक, कायदे के कपड़े पहिने तो वह स्तिल्यागा है? स्टाइल के पीछे दौड़ना तो आज की सामाजिक समस्या है। ज़रा किसी कपड़ों से कसे-लिपटे लौण्डे से पूछो कि यह सारी शानदार चीज़ें उसे मिलीं कहाँ से, और किसने उनकी कीमतें भरीं? जीवन में आख़िर उसका उद्देश्य क्या है? स्तिल्यागा वह नहीं होता जो रबड़ के तल्लोंवाले जूते पहिनता है, बल्कि वह होता है, जिसकी आत्मा रबड़ की बनी होती है।"

"मीश्का, तुम्हारा मुँह क्या है, बस पूछो मत! जब भी ज़बान चलती है तो जैसे किसी थीसिस के लिए भाषण देते चले जाते हो। मेरा ख़्याल है कि इस मामले में कुछ मज़बूर हो तुम और हमेशा ही मज़बूर रहोगे। चाहते हो कि मैं तुम्हें उठाकर पानी में लोका दूँ?"

"अच्छा, ज़रा सम्हाल कर... मेरा सूट मुस जायेगा!"

"क्या कहने हैं, 'स्तिल्यागा बहादुर' डर गये न! खैर, जाने दो, यह बतलाओ कि घड़ी मुझे कौन सी खरीदनी चाहिए?..."

हमने आधा दिन दुकानों में इधर-उधर दौड़ने में ही बिता दिया। सारी पुरानी घड़ियाँ घूम-घूमकर देख डालीं, और बेरहमी से एक-एक कनडम कर दी; सोने की घड़ी खरीदने का ख़्याल भी दिमाग़ से उतार दिया, क्योंकि एक तो, ऐसी घड़ी पूँजीवाद के अस्तित्व का प्रमाण होती, दूसरे उसकी कीमत भी काफ़ी लगती, यानी कोई हज़ार से ऊपर रूबल

* छैला।

गिनने पड़ते। जेबी घड़ी पहले के, बने-बनाये संस्कार सी लगी। 'ज्वेज्दा' बहुत सस्ती और ज़रूरत से ज़्यादा सादी लगी तो 'पोबेदा' पुराने फैशन की। 'कामा', 'मयाक' और ऐसी ही दूसरी घड़ियाँ ठाठ की समझ में आई, पर उनमें किसी चीज़ की, किसी ज़रूरी चीज़ की कमी मालूम पड़ी। आख़िरकार हमने 'मोस्कवा' खरीद ली। कीमत पूरे चार सौ रूबल-16 नग, छोटा, सुनहरा डायल, चमकती हुई हरी सुइयाँ, हरे अंक, और बीच में सेकेंड की सुई यानी एक अच्छी-खासी, छोटी-मोटी स्टॉप-वाच! घड़ी 'दूसरी घड़ी फैक्ट्री में तैयार की गई थी। फैक्ट्री मास्को के लेनिनग्राद मार्ग पर है। अगर आप 12 या 20 नवम्बर की ट्रॉलीबस से डायनामो स्टैडियम जायें तो कण्डक्टर ऐलान करेगा—"बेलोरूसी स्टेशन... अगला स्टॉप होगा 'दूसरी घड़ी फैक्ट्री'!"

तो, घड़ी लगाने पर ऐसा अनुभव हुआ, जैसे कि अपने किसी सगे-सम्बन्धी की झाँकी मिल गई हो। घड़ी मास्को से आई थी। लगा कि इसके पुर्जे किसी लड़की ने जोड़े होंगे। इस समय वह या तो जल्दी-जल्दी कैण्टीन की ओर लपक रही होगी या किसी मेत्रों के एक्सक्लेटर पर खड़ी नीचे उतर रही होगी। उसे भला क्या चिन्ता कि वह घड़ी जो कभी उसके हाथ में थी इस समय किसकी कलाई में बँधी हुई है।

बिल्कुल यही हालत हमें अपनी लगी कि स्टेशन पूरा होते ही हम यहाँ से चले जायेंगे और यह बाँध, बाँध के ऊपर की यह सड़क और पास की दीवार बनी-बनाई छोड़ जायेंगे। लोग इस सड़क से गुजरेंगे, इस दीवाल का स्पर्श अनुभव करेंगे, पर उन्हें कहाँ ख़्याल आयेगा कि उसे भला पाटा किन हाथों ने है और इस पर भला निशान किसकी उँगलियों के हैं!

मेरा दिमाग़ मास्को के लाल चौक में स्थित ऐतिहासिक संग्रहालय की ओर दौड़ गया। मैंने कभी वहाँ नव-पाषाण युग की मिट्टी की तश्तरियों के टुकड़े देखे थे। चीज़ों का इस समय तो मुझे कुछ अधिक ध्यान नहीं, पर एक चीज़ ने मेरे मस्तिष्क पर उस समय बड़ा प्रभाव डाला था—यह थे एक घड़े पर अंकित, सात हज़ार वर्ष पहले के किसी आदमी की उँगलियों के निशान...

...उसी शाम को हमने अपने हॉस्टल के कमरे में एक शानदार पार्टी रचा डाली। तमारा और तोन्या को खास तौर पर दावत देकर बुलाया। जख़ार जख़ारिच रात की पाली में काम करने के कारण आ नहीं सका।

उसकी कमी बड़ी खली। लेओनीद अपना ग्रामोफोन ले आया। पर, मीशा को उसका एक रेकार्ड न भाया और वह 'टांगों', 'वाल्ज' और 'फाक्सट्रॉट' के रेकार्डों का बक्शे का बक्शा उठा लाया। इससे उसका 'सितल्यागा' होना पूरी तरह साबित हो गया! भला इससे बड़ा सबूत इसका और क्या हो सकता था!? जहाँ रूसी लोकगीतों की बात है, वह तो बहुत बाद में, पार्टी के क़रीब-क़रीब खत्म होने के समय हमने गाये।

पेतका ने जश्न की मेज की चारों ओर जमे हम सबके चेहरे अजर-अमर कर दिये;

वैसे उसने हमें आगाह ज़रूर किया कि मैंने अपने कैमरे में इधर कुछ सुधार किया है, पर सुधार अभी प्रयोग की स्थिति में है, इसलिए रोशनी के काफ़ी होने पर भी हो सकता है कि फ़ोटो न आये।

जहाँ तक मेरी बात है, मुझे सबसे अधिक चिन्ता इस बात की रही कि कोट की बायीं आस्तीन कहीं बहुत नीचे तक न लटक आये। मैंने घड़ी से सजा हाथ हर समय मेज पर ही रक्खे रहने की कोशिश की। हमने सिगरेटें बड़ी फूँकी। नतीजा यह हुआ कि पार्टी खत्म होते-होते कमरे में गरमी और घुटन हो गई, तोन्या उठकर बरसाती में चली गई।

मैं उसके पीछे-पीछे बाहर आया, बिल्कुल पास पहुँचा और... अपने हाथ उसके गले में डालकर मैंने उसे चूम लिया।

वह विश्वास के साथ मेरे सीने से चिपक गई, और बड़ी ही कोमल लगी। जैसे अपनी रक्षा के सारे हथियार उसने डाल दिये। रात की ठण्डक से उसका शरीर ज़रा-ज़रा कँपकँपाने लगा। पर अचानक ही वह सिसकने लगी। मुझे इसकी आशा तो सपने में भी न हो सकती थी, इसलिए मैं थोड़ा चौंका। परन्तु, दूसरे ही क्षण मुझे लगा कि कोई बात नहीं हैं, और मैं चुपचाप खड़ा रहा। लड़की रोती रही, जैसे कि कोई दर्द एक ज़माने से उसने अपने दिल में दबा रखा हो, जैसे कि ज़िन्दगी ने उसके साथ बेरहमी बरती हो। हाँ, रोते समय वह मेरे कन्धे बराबर हल्के-हल्के सहलाती रही।

इसी समय मीशा ओलखोन्स्की बाहर निकलकर बरसाती में आया, जमुहाई ली और तारों भरे आसमान पर एक नज़र डाली। बोला—"हूँः, तो तुम यहाँ हो... ठीक... बहुत ठीक!"

और, वापस चला गया।

वीक्तोर का पत्र मिला—

"कहो, प्यारे!

आख़िर यह बतलाओ कि तुम मेरे ख़त का ज़वाब क्यों नहीं देते? कुछ बड़े सिद्धान्त-विद्धान्त बना लिये हैं—आख़िर मामला क्या है? कुछ जीवनी-वीवनी गढ़ रहे हो? खैर, यह तो रहा मजाक। वैसे अगर अपने ज़हीन 'बड़े मियाँ' की बात दोहराऊँ तो हमारी आज की इस दुनिया में अछूती ज़मीनों या साइबेरिया जैसी जगहों से जीवनी के लिए मसाला बड़ा मिलता है, कायदे का मिलता है, और सीधे दिल में उतर जाने वाला मिलता है।

हाँ, तोल्या इस मानी में तुम अपनी जगह सही हो सकते हो। आदमी को इस ज़िन्दगी में बाजी बड़ी लगानी चाहिए और भावुकता में नहीं पड़ना चाहिए। अगर यह बात तुम्हारी समझ में आ गई तो तुम्हारा इतना भला होगा कि कहा नहीं जा सकता।

ज़िन्दगी एक बियाबान जंगल है, और लोग या तो भेड़ियें हैं या गीदड़ हैं। अगर तुम निगाह उठाकर बाहर न देखो या धार के उल्टे बहो तो तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े हो जायें, और ऐसे हो जायें कि बात कुछ न लगे। इसलिए भेड़िये की तरह गुर्राओ पर बेकार मुँह न फैलाओ।

किसे फिक्र है ईमानदारी की, सच्चाई की और 'आने वाले कल को खूबसूरत बनाने, की! लोग अपनी जेबें और घर भरने में लगे हुए हैं! मेरा ख़्याल है कि यह बात इस समय तक तुम्हारी समझ में ज़रूर आ गई होगी। कामगार—सचमुच क्या कहने हैं तुम्हारे इस कामगार के?

तुम्हारे यह शेखीबाज कामगार 'आने वाले कल को खूबसूरत बनाने' के ख़्याल को ठेंगे पर मारते हैं। वे चिन्ता करते हैं सिर्फ़ रूबलों की, फ्लैट की, ठाठ के खान की और पीने के लिए वोदका की। यह तो जानवरों की सी ज़िन्दगी हुई। जब सोचता हूँ कि तुम मिलने पर कैसी-कैसी मजेदार कहानियाँ सुनाओगे तो मन ललचाकर रह जाता है। आशा है कि भेंट जल्दी ही होगी—है न?

दो शब्द मेरे—अपने बारे में। वैसे दाँतों पसीने आ गये, पर मैंने वाणिज्य-विद्यालय का मोर्चा मार लिया। वैतर और मुत्ती इस खुशी से फूले नहीं समाते। मुझे स्कूटर दिलाने का वायदा किया है उन्होंने। स्कूटर बुरी चीज़ नहीं—फिर यह कि सत्ता भी होता है। तुम वापस आओगे तो हम उसे दौड़ा-दौड़ाकर रगड़ मारेंगे—ठीक है न! मैंने दुकानों में जहाँ-तहाँ नज़र दौड़ाई है कि कहाँ क्या है! तुम्हें एक भेद की बात बतलाऊँ—वैतर लम्बा हाथ मारने की घात में हैं... इस समय जाल बुन रहे हैं... अगर बात बन गई तो पौ बारह समझो। स्कूटर की रकम आसानी से खड़ी हो जायेगी।

इस बीच मैंने 'यौजा' टेप-रेकॉर्डर मुहैया कर लिया है और इस समय रेडियो से जाज-संगीत की रेकार्डिंग करता रहता हूँ। तोल्या, मेरी बात सुनो—यह 'बूगी-वूगी तो इतिहास के पहले के ज़माने की बकवास है। इस वक्त तो लोग 'रॉक-एण्ड-रोल' के पीछे दीवाने हैं। सुनता हूँ कि छाकर रह जाता है!... मास्को में अब क्रेप-सोल जूते मिलने लगे हैं—सपने से लगते हैं! मैं विलायती कपड़े का एक सूट बनवाने जा रहा हूँ। यानी, किस्सा-कोतह यह कि इंसान की तरह रहने और दिखने का जमाना आ गया है।

लगे हाथों यह भी सुन लो, यार, कि अपनी शादी करने के ख़्याल में हूँ। सोचता हूँ कि चलो, कर ही डालो—ऐसा न हो कि, लोगों के कहने के हिसाब से बेहतर की खोज में बदतर गले पड़े। यूना राजी लगती है। वैसे यह है कि हमेशा की तरह उसके चारों तरफ़ प्रेमियों की भीड़ अब भी लगी रहती है। यों, तुम समझो कि मैं भी अब इन मामलों में उतना कोरा नहीं रहा... तुम मेरे इस पत्र से परेशान तो नहीं होंगे?

अच्छा, दोस्त, खुश रहो। लेकिन ईश्वर के लिए एक छोटा सा पत्र तो लिख ही दो। सचमुच मैं यह जानने के लिए तड़प रहा हूँ कि आख़िर तुम्हारे हालचाल क्या

हैं, वहाँ तुम्हारी कट कैसी रही है! कोशिश करो और जल्दी से जल्दी लौट आओ। तुम्हारे आने की खुशी में ठाठ के जलसे किये जायेंगे और इन जलसों में 'हँसी से लोटपोट हो जाने वाले लोगों का जमघट' रहेगा। ऐसे लोगों की चर्चा चोरों के किसी गीत में आई है और ऐसे गीत आजकल हमारी मण्डली में अक्सर ही लोग अलापते हैं। विलायती सा माल है—'ए पापिनी मुस्का, यह न भूल कि तूने मुझे प्यार किया है।'

ज़िन्दगी खेल है, तोल्या। अपना समय बरबाद न करो। जवानी पर लगाकर उड़ी जा रही है। उससे पूरा फायदा उठा लो।

तुम्हारा वीक्तोर—"

जहाज़ी तन जहाज़ पर छोड़ते हैं—

सुबह हुई तो भयानक समाचार सुनने को मिला कि जख़ार जख़ारिच का देहान्त हो गया।

मालूम हुआ कि दूसरी पाली पर जाने के पहले वह अपनी गाड़ी के इंजन की जाँच-परख कर रहा था कि दम निकल गया।

डिस्पैचर ने देखा कि दूसरी सभी ट्रकें चली गईं, पर जख़ारिच की 'माज' जहाँ की तहाँ खड़ी है। इस पर आवाज़ लगाई कि आख़िर बात क्या है? पर कोई ज़वाब नहीं मिला। फिर लोग गाड़ी के पास आये तो देखते क्या है कि बूढ़ा अपने स्टीयरिंग पर बैठा है, लेकिन उसका सारा बदन ठण्डा पड़ चुका है—दिल ज़वाब दे गया है।

उस दिन हमारा दरवाज़ा एक क्षण को भी बन्द न हुआ। हमें तो सपने में भी गुमान न था कि जख़ारिच के मिलने वाले और दोस्त इतने हैं। लोग खबर सुनते और घबड़ाते हुए दौड़े चले आते। उनमें कुछ तो ऐसे होते जिनकी शक्लों से भी हम परिचित न होते। वे सवालों की झड़ी लगा देते। पर, हम ज़वाब क्या देते, हमें मालूम ही क्या था!

अन्त में तय पाया गया कि जख़ार जख़ारिच की लाश हॉस्टल वापस न ले जायी जाये बल्कि किसी ड्राइवर को भेजकर उसका सूट मँगवा लिया जाये और शव मोटरखाने के वाचनालय में रख दिया जाये।

और, मेरे और पेतका के वहाँ पहुँचने के पहले ही लोगों ने कुछ मेजें घसीटीं, जोड़ीं और जख़ारिच को उन पर लिटा दिया। हम पहुँचे तो हमने देखा कि वह उसी तरह गम्भीर लग रहा है और उसके गँठीले हाथ अटपटे ढंग से सीने पर रखे हुए हैं। तकिये की लौ देती सफ़ेदी की पृष्ठभूमि में उसके बाल फिर एक बार दूधिया लगे।

वाचनालय की सारी कुर्सियाँ कोने में खिसका दी गईं, तो जगह अँधेरे और उदासी से भर गई। आने-जाने वाले लोगों के पैरों की रगड़ हवा में गूँजती रही। गार्ड-ऑफ-ऑनर दिया गया। कोई रोया नहीं।

कोने में ट्रेड यूनियन के व्यवस्थापक कुछ ड्राइवरों से, जख़ारिच की लाश की सजावट के लिए, लाल कपड़े गद्दों और ताबूत की बात फुसफुसाकर करने लगे।

"तख़्ते मरम्मतवाले विभाग से ले आये जायें। मैंने सारा इन्तज़ाम कर लिया है। और, नेखोदा, देखो, ट्रक तुम चलाओगे... खूब अच्छी तरह साफ़ कर लेना... किनारे के पल्ले गिरा दिये जायेंगे, और गाड़ी निचले गेयर में रखी जायेगी।"

"मुझे पता है..."

"अच्छा, झण्डे का क्या होगा?.."

पेतका और मैं कुछ देर तक चुपचाप खड़े रहे, जैसे कि हमारा किसी चीज़ से कोई सम्बन्ध ही न हो, जैसे कि हमारी बात पूछने वाला कोई न हो। हमारा 'डैड' अब हमारा न रह गया था... वह वैसे तो मेज पर पड़ा था, पर 'डैड' अब 'डैड' कहाँ था! हम बहुत भारी मन से, लड़खड़ाते हुए घर चले आये।

अन्त्येष्टि दूसरे दिन हुई। जख़ार जख़ारिच की अन्तिम यात्रा देखने के लिए बड़ी भीड़ जमा हुई, पर, फिर रोया कोई नहीं।

क्लब के गैर-पेशेवर ऑरकेस्ट्रा पर मौत की धुनें बजती और रह-रहकर बेसुरी हो जाती रहीं। सहसा ही आसमान में बादल घिर आये। नम हवा झण्डा उड़ाने और ट्रक का लाल कपड़ा फड़फड़ाने लगी। हवा के कारण कपड़ा उल्टा... ड्राइवर पैदल चलने वाले लोगों की धीमी रफ़्तार से ट्रक न चला सका। नतीजा यह हुआ कि मुर्दनी के जुलूस का तार अक्सर ही टूट गया, लोग पीछे रह गये और गाड़ी धीमी किये जाने के लिए चीखने चिल्लाने लगे। फाटक के पास खड़े लोगों में कानाफूसी शुरू हुई।

"किस विभाग का आदमी है?"

"किसी विभाग का नहीं। गाड़ी खाने का है। ख़्याल है, एक बार कुछ पाइप लाया था एक आदमी?"

"अच्छा, तो यह वह है!"

"हाँ, वही है।"

"यह है ज़िन्दगी... आदमी जीता रहता है, जीता रहता है कि देखते-देखते प्राण पखेरू उड़ जाते हैं।"

पहाड़ों के बीच एक छोटी कब्रगाह थी—केन्द्र के निर्माताओं ने इसे चालू किया था। दूह थे ऐसे ही कोई एक दर्जन। साइबेरिया के वीराने में साँसे लेती ऐसी कब्रगाहें और भी हैं, और वहाँ भी उल्लास से भरपूर हृदयों और खोज की भावना से ओतप्रोत मस्तिष्कोंवाले लोग चिरनिद्रा में निमग्न हैं। मैं ऐसी कोई भी कब्रगाह देखता हूँ तो मेरा मन अजब-सी उदासी से भर उठता है, और मुझे एक पुराने कामगार की बात याद आ जाती है कि निर्माता आते हैं और काम पूरा कर वापस जाते है तो अपने पीछे अपना निर्माण ही नहीं छोड़ जाते बल्कि एकाध दर्जन क़ब्रें भी छोड़ जाते हैं। जहाज़ी तन जहाज़ पर छोड़ते हैं, और निर्माता निर्माण-स्थलों में।

जख़ार जख़ारिच का बिस्तर लोग ले गये तो लोहे का खाली पलँग कोने में पड़ा रह गया। पेतका और मैं बुझे-बुझे से कमरे में इधर–उधर टहलते, और उस कोने को देखने से जान-बूझकर बचते रहे। जख़ार जख़ारिच के नाम पर रह गया बस एक खाली सूटकेस, एकदाढ़ी बनाने वाला सेट और पुस्तकालय की एक पुस्तक : जिन खोजा तिन पाइयाँ।' पुस्तक वह पढ़ रहा था, पर खत्म न कर पाया था।

जो कुछ हुआ था, जो घटना घटी थी, उसका सही-सही मतलब समझने में मुझे कई दिन लग गये।

इसके कई दिन बाद मैं एक बार अपनी पाली खत्म कर थकान से बुरी तरह चूर-चूर घर लौटने लगा तो मालूम हुआ कि मैं भहरा पड़ूँगा। अतएव सुस्ताने के लिए, सीढ़ी के पास के घास से मढ़े ढाल पर बैठ गया।

सूरज डूब रहा था। पश्चिम में उसके यश सी लाली छिटकी हुई थी। कामगारों के दल के दल काम खत्म कर लपकते हुए अपने घरों की ओर बढ़े चले जा रहे थे। नीचे ट्रकें घरघरा और खड़खड़ा रही थीं। हर ओर गर्द और लोहा गमक रहा था। निर्माण स्थल में जगह-जगह हर दिन की सी चहल-पहल थी। लोगों की आवाज़ें कानों में पड़ रही थीं। ऐसे में बैठे-बैठे जख़ार जख़ारिच का ख़्याल हो आया।

जख़ारिच... यह आदमी तो ज़िन्दगी में जैसे पूरी तरह घुल गया था। उसने कोई रकम न खड़ी की और अपने पीछे किसी तरह का कोई माल-मता न छोड़ा। क्रान्ति के ज़माने में उसने हथियारबन्द गाड़ी चलाई, फिर उसने कारखाने बनाये, इसके बाद लेनिनग्राद घेर लिया गया तो उसने गाड़ियों में लादकर तोपों के गोले लेनिनग्राद पहुँचाये, और अंगारा में उलटे–और, बस ऐसे ही कामों के नाम उसने अपनी सारी ज़िन्दगी लिख दी।

मन ने कहा कि नीचे कंकरीट की दीवालें हैं, और उनके बीच के नये मार्ग से नदी बही चली जा रही है। इसके लिए बड़ी मेहनत और बड़ा काम किया गया है, पर कौन है जो इस काम में से जख़ारिच का हिस्सा अलगायेगा और कहेगा कि यह योग उसका है? लेकिन, इससे कुछ नहीं, योग तो उसका है। निर्माण स्थल पर कितना काम किया उसने! यह केन्द्र उसका स्मारक है। इससे उसकी याद हमेशा हरी बनी रहेगी!

और, ऐसे नामहीन, विशाल और सजीव स्मारक देश भर में फैले हुए हैं। क़ब्रगाह का वह ढूह क्या है, वह तो कुछ भी नहीं है। मात्र एक प्रतीक है। जख़ार जख़ारिच वहाँ नहीं है। वह है दुनिया की चहल-पहल में। वह है दुनिया के बढ़ते हुए तेज़ क़दमों में।

क्या मैं जख़ार जख़ारिच कभी नहीं बन सकता? मीश्का ओलखोन्स्की या लेओनीद तो बन सकते हैं। इसी तरह दिमीत्री स्त्रेपेतोव, इवान बुगाई और वास्योक भी उसका अनुकरण कर सकते हैं... पर, उस मक्खीचूस ग्रिगोरी का हश्र क्या होगा?... या, उस

ढीले-ढाले चोर ल्योश्का का क्या होगा? वह कौन सा स्मारक छोड़ जायेगा अपने पीछे? शायद चाय पीने के चुराये हुए एक दर्जन गिलास, और एक गड्डी ताश, और बस! और, हाँ, ज़मीन के नीचे गड़े 'खजाने' की तरह हाथ लग जाने वाली सुख-समृद्धि की भावना से फूले-फूले फिरने वाले उस वीक्तोर का अन्त आख़िर क्या होगा?

एक बार और–

मुसाफिर, टूरिस्ट या आर्टिस्ट, अगर तुम्हें कभी मौका मिले और तुम इर्कूत्स्क पनबिजलीघर, देखने आओ, उसकी शक्ति से चलने वाली गाड़ी में बैठो, या उसकी टरबाइनों की सिरजी बिजली में कोई किताब पढ़ो तो याद रखना कि अंगारा के धरातल को तीस मीटर ऊँचा उठा देने वाली उसकी भूरी दीवारें, खम्भे, और बँधियाँ हमने, हम कंकरीट मास्टरों ने, अपने इन्हीं हाथों से बनाई हैं।

लेओनीद ने ज़मीन खोदी और बोर्डिंग की व्यवस्था की; कुबिशकिन ने इस्पात का साँचा तैयार किया, फ़ोटोग्राफर पेतका ने बिजली के तार खींचे; जख़ार जख़ारिच ने सड़क बनाने के लिए गाड़ी में लाद-लादकर कंकड़ियाँ पहुँचाई, साथ ही हँसमुख लड़कियों ने कंकरीट के बीच वाइब्रेटर चलाया, तोन्या ने उसे होज-पाइप से सींचा, और दाशा ने बड़े प्यार से उस पर किरमिच बिछाई।

गरमी में प्यास ने हमारे कंठ में काँटे बाये और जमाकर बर्फ़ बना देने वाले जाड़े ने हमें किस-किस तरह सताया! हम रातों को अलाव के पास सिकुड़े-मुकुड़े बैठे रहे। हमने साँचा पुल पर टब-टबकर कंकरीट उलटी। हमने अपना बोर्डिंग गिरा कर नये सिरे से बनाया। हमें ध्वज इनाम में मिले। हमने बच्चों को दास्तानें सुनाई। हम एक सेब के लिए तरसते और हाथ के दर्द से हाय-हाय करते रहे।

यह रहा हमारा जीवन। मैं 'मेरे' के बजाय 'हमारा' का प्रयोग कर रहा हूँ, क्योंकि मैं सच्चा निर्माता बन गया हूँ, और अपने को अपने दूसरे साथियों से अलग कर अपनी बात सोच ही नहीं सकता।

हमारा स्टेशन जल्दी ही पूरा होने वाला है। हम यहाँ से अपने डेरे उठाने की तैयारी में हैं। समय आते ही लाल बालों वाला निकोलाई अपनी मुड़ने वाली कुर्सियाँ कन्धों पर लादेगा, वाल्या शिशु-सदन से अपना वोवका लेगी, और हम यहाँ से रवाना हो जायेंगे। मैं अपने लम्बी मंजिल पर आगे बढ़ चलूँगा। कहना न होगा कि मेरा यह रास्ता मास्को से शुरू हुआ था।

'इंजन उड़ो हवा की गति से,
धीमी करो न चाल!'

शायद हम यहाँ से ब्रात्स्क पनबिजलीघर जायेंगे। वहाँ दिमीत्री स्त्रेपेतोव, इवान बुगाई और वस्योक ने पहले से अपने खेमे गाड़ रखे हैं, वे वहाँ सनोवर क़े पेड़ गिरा

और लम्बे-चौड़े लट्ठे घसीट-घसीटकर यहाँ से वहाँ पहुँचा रहे हैं। कंकरीट का काम अभी वहाँ चालू नहीं हुआ, पर हमारे वहाँ पहुँचते ही चालू हो जायेगा।

दिमीत्री, हम फिर एक दूसरे से मिलेंगे। इवान बुगाई, हम इंस्टीट्यूट में एक साथ पढ़ेंगे, और तुम्हारी किताबें आगे भी काम की साबित होंगी। साथियों, तुम्हारे पते मेरे पास नहीं हैं, मैं सिर्फ़ तुम्हारे नाम जानता हूँ, लेकिन मेरा पक्का विश्वास है कि हमारी मुलाकात एक दूसरे से होगी, और ज़रूर होगी, क्योंकि हम निर्माताओं का पथ ही ऐसा है। काम के सिलसिले में एक की भेंट दूसरे से हो ही जाती है।

लेकिन, वीक्तोर, मेरा ख़्याल नहीं कि ज़िन्दगी के किसी चौराहे पर मेरा रास्ता कभी तुम्हारे रास्ते से हाथ मिला पायेगा। वाणिज्य-विद्यालय की पढ़ाई खत्म करने के बाद भी तुम यहाँ कभी नहीं आओगे। तुम्हारे स्नेहशील पापा तुम्हें राजधानी में काम दिलाने के लिए कुछ उठा न रखेंगे। तुम जंगल में गुर्रानेवाले भेड़िये की तरह जिओगे और असली ज़िन्दगी कभी न जान समझ पाओगे। तुम्हारे लिए मेरे मन में दर्द है। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम्हें हुआ क्या, और जो तुम हो, वह तुम्हें बनाया किसने? यह कमीनापन, यह बुजदिली आख़िर आई कहाँ से? वीक्तोर, तुम बेवक़ूफ़ हो, टकसाली काठ के उल्लू हो, और साथ ही मेरे दुश्मन हो!

हाँ, इस समय मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि हम एक दूसरे के दुश्मन हो गये हैं। मैं तुम्हें पत्र नहीं लिख सका, क्योंकि ज़िन्दगी की दुश्वारियों से साँस नहीं मिली। लेकिन, तुम्हारा पहिला ही पत्र मन भर का पत्थर बनकर मेरे सीने पर जम गया। तो, कभी न सोचना कि तुम्हारे उस बियाबान जंगल में तुम्हारी भेंट मुझसे कभी भी हो सकेगी! और, अपनी माँ से कह देना कि अब मुझसे देवदार की बोंड़ी की उम्मीद न रखें।

वीक्तोर, मैं तुम्हें ज़वाब संक्षेप में नहीं दे सकता। यही कारण है कि मैंने यह डायरी लिखी है। यह है तुम्हारे खतों का मेरा ज़वाब। इसमें जितनी ही सच्चाई है, उतनी ही ईमानदारी और उतना ही दर्द। और अगर तुम इसे चुनौती मान लोगे तो भी कुछ गलत न करोगे। मैं तुम्हें काफ़ी कायदे से आगाह किये दे रहा हूँ।

हम तुम्हारे जैसे लोगों को अपने रास्ते से अलग करने जा रहे हैं। हमारी लड़ाई तो अब शुरू हो रही है, और हमारी पीढ़ी के लड़ाई के मैदान में कदम ज़माने का श्रीगणेश अभी-अभी हुआ है।

हम जख़ार जख़ारिच का कार्यभार सम्हालने जा रहे हैं सुनते हो, गाँवों में बँगलियाँ बनवानेवालो! सुनते हो, गढ़ैयों के सामने खड़े होकर डर से थरथरानेवालो, छुइमुई के पौधों, सुनते हो!

हाँ, मुझे लगता है कि मैं सयाना हो रहा हूँ, क्योकि अब चीज़ें मेरी समझ में आने लगी हैं। मेरा ख़्याल है बारूद की महक नाक में बसा लेने के बाद ही लोग सचमुच विकास करते हैं। नहीं, खटमलो, और बुजदिलो, ज़िन्दगी तुम्हारी नहीं है! ज़िन्दगी

उनकी है जो व्यक्तिगत धनवैभव से अधिक और बड़ा भी कुछ गढ़ते हैं। वे दुनिया की जान हैं। धरती उन पर गौरव करती है। वे न हों तो तुम्हारा कहीं अता-पता न चले और वे ही हैं जो तुम्हें कूड़ा-करकट की तरह बुहारकर एक ओर को फेंक देंगे। उनके दिलों में सूरज दमकता है। उनके बल्ले मजबूत और कसे हुए हैं उनके हाथों में फफोले हैं और उन फफोलों से खून रिसता है। यह हाथ और यही हाथ शानदार ज़िन्दगी सिरजेंगे, और कोई चीज़ और कोई भी आदमी उनके आड़े आ नहीं सकता। यह ज़िन्दगी ज़िन्दगी होगी।

दूसरी डायरी का श्रीगणेश

यह ज़िन्दगी के रास्ते–

मैंने मन ही मन सोचा—बहुत देर बैठ लिये! घर पर कपड़े धोने को पड़े हैं, और, फ़ोटोग्राफर महोदय ने चिन्ता न की होगी तो, खाना अलग से तैयार करना पड़ेगा!

बस, तो मैं तेज कदम बढ़ाता हॉस्टल की ओर चल पड़ा।

"हे, पुराने दोस्त हो, सलाम तो लेते जाओ!" किसी ने दूर से चिल्लाकर कहा, "ज़िन्दगी कैसी चल रही है, साहबजादे?"

मैंने देखा तो सोने के दाँत दमकते दीखे, यानी इस तरह चिल्लानेवाला आदमी मेरा पुराना परिचित 'ठग' निकला और इस समय सिर से पैर तक लकदक नज़र आया—बदन पर बिल्कुल नया सूट, सिर पर फेल्ट कैप और पैरों में कीमती जूते।

मैंने मुस्कराते हुए पूछा—"किसी पार्टी में जा रहे हो?"

"पार्टी ही कह लो। अपने ही घर में कुछ धूमधाम है। बच्चा हुआ है, सो औरतों ने सामान लेने को बैरंग कर दिया है मुझे!"

उसके हाथ की सींक की कँडिया में कोई 16-18 बोतलें दिखलाई पड़ी। मैं व्यंग्य से बोला—"बच्चों के लिए दूध खरीदने जा रहे हो?"

"क्या कहने हैं! बहुत तेज हो साहबजादे!" वह खुद मजा लेते हुए हँसा और मेरे कंधे पर हाथ मारते हुए बोला, "आओ, चलो!"

"नहीं, नहीं इस तरह नहीं, कपड़े ठीक नहीं हैं।"

"कपड़ों की फिक्र मत करो! हम सब काम करते हैं। आओ, चलो!... एक लौंडिया है... लौंडिया क्या है, आडू है बिल्कुल," वह फुसफुसाते हुए बोला, "होंठ तो ऐसे हैं कि..."

"नहीं, धन्यवाद! मेरा जी नहीं है। बहुत थका हुआ हूँ।"

"खैर, जैसी तुम्हारी मर्जी... दर्द की बात है कि तुम चलते नहीं... इससे कुछ नहीं, फिर मौका आयेगा, और हमें फिर एक साथ काम करना पड़ेगा... अच्छा, खुश रहो ... फिर मुलाकात होगी!"

"हाँ... हम जल्दी ही एक दूसरे से मिलेंगे!"

घर पहुँचा तो खुशी हुई। मालूम हुआ कि पेतका ने थोड़ा-बहुत खाना तैयार कर लिया है। कोने में निगाह गई तो देखा कि पलँग पर बिस्तर लगा हुआ है, बिस्तर पर

ताजा, दूधिया लिनेन चमचमा रहा है और एक नई मूर्ति विराजमान है।

यानी, जख़ार जख़ारिच की जगह एक उक्रइनी आ गया—कद लम्बा, भौंहें काली, रंग साँवला। और, यही नहीं आते ही धुआँधार उक्रइनी में पूरी तरह उमड़ चला—"बुरा हो इन कैमरा फ़ोटोग्राफरों का! वह अपने फ़ोटो डिवलप करना शुरू करते हैं तो एक ही रास्ता बचता है कि आदमी उठे और जान बचाकर घर से भाग खड़ा हो!"

"अच्छा, अच्छा अब ज़रा चैन से बैठो," पातगोभी का शोरबा गले के नीचे उतारते हुए पेतका बोला, "वसील, देखो, मेरी बात सुनो। अगर तुम अपनी यह बकबक बन्द नहीं करोगे तो मैं रंगीन फ़ोटोग्राफी चालू कर दूँगा और तुम्हें ज़हर देकर घोट डालूँगा।"

"तुम मुझे जहर दोगे, शैतान की सूरत? मैं खुद तुम्हें ज़हर दे दूँगा!"

"मैं कहता हूँ कि यह बकवास बन्द करो, और पहले अपनी नाक पोंछो।"

"तुम खुद अपनी नाक पोंछो। अगर तुम्हें यह ओटोफ़ोटो धोने हों तो गलियारे में चले जाओ और इन डेवलपरों और फिक्सरों में डूब जाओ, मेरी बला से! पर, इन खिड़कियों के पर्दे मत गिराओ... कहे देता हूँ!"

"तुम आख़िर हो कौन?... बड़े आये दूसरों के घरों में घुसकर अपना कानून चलानेवाले! हमने तुम्हें यहाँ से उठाकर बाहर न फेंक दिया तब कहना!"

"तुम मुझे उठाकर बाहर फेंक दोगे? ज़रा कोशिश तो करो, आओ, देखूँ ज़रा मैं भी!"

पेतका अपनी आस्तीनें चढ़ाने लगा। पर, खैरियत हुई कि मैंने समय से बीच-बचाव कर लिया। पेतका अपना शोरबा खाता रहा। दूसरी ओर, वसील अपना रोना रोते हुए बोला—"अब तक तीन कमरे बदल चुका हूँ, पर हर बार कहीं न कहीं से फ़ोटोग्राफर आ टकराता है। और, मैं हूँ कि मुझे रोशनी चाहिए, शान्ति चाहिए। मैं टेक्नीकल स्कूल के दाखिले की तैयारियाँ कर रहा हूँ।"

लेकिन, पाँच मिनट बाद ही वह किसी और बात को लेकर शोर मचाने लगा। बोला—"तुम सब के सब काहिल हो, सुअर हो! कमरे को तुमने कबाड़खाना बना रखा है। उस पर खुशी से फूले भी नहीं समाते! यह तुम्हारे पतलून यहाँ मेज पर क्या कर रहे हैं? कपड़ों की आलमारी में जगह नहीं है क्या?"

उसने कमरे की घुटन को लेकर हमें बुरा-भला कहा और पूछा—"तुम लोग अपने जूते दरवाज़े के बाहर क्यों नहीं रखते?"

इसपर पेतका ने मेरी ओर देखा और मैंने पेतका की ओर—"क्या ख़्याल है?"

वसील ने कपड़े उतारे, कम्बल से सिर ढका ओर लेट रहा। पर, दूसरे ही क्षण [illegible]कर बिस्तर पर बैठ गया। हम इस तरह घबड़ा गये कि कुछ न पूछिए! मगर, [illegible] गाल बजाने और बकबक करने। इस तरह हमें पता चला कि वह बढ़ई है, [illegible] काम के लिए कई प्रमाण पत्र मिल चुके हैं और इस समय पत्र-व्यवहार की [illegible] तैयारियाँ कर रहा है। उसने हमें अपनी पाठ्य-पुस्तकें और नोट-बुकें दिखलाई

और बोला-"उक्रइन में मेरी प्रेमिका है... लड़की ऐसी है कि दुनिया में उसका कोई ज़वाब नहीं..." साथ ही पुराने पेत्रीव्त्सी में रहने वाली अपनी बूढ़ी माँ का पत्र उसने हमें पढ़कर सुनाया। पत्र इस प्रकार था—"प्यारे बेटे, मैं थोड़ी सी पोर्क और तीन दर्जन अण्डे तुम्हारे लिए भेज रही हूँ। जानते हो, मैं हर समय रोती रहती हूँ। मेरा मन डरता ही रहता है कि कहीं तुम झटक न जाओ!"

"पोर्क कहाँ है?" पेतका ने पूछा।

"पोर्क... पोर्क तो जाने कब की पेट में पहुँच चुकी।"

"माँ पोर्क फिर तो भेजेंगी न?"

"ज़रूर, ज़रूर!"

सो, इस गधे वसील ने फिर कुछ ऐसी बातें कीं कि हमारे सिर चक्कर खाने लगे और मन मथ उठे। इसके बाद ही हमने बिजली बुझा दी, पर नींद किसी को न आई। हमें अँधेरे में गुमसुम पड़े रहे कि अन्त में पेतका ने मौन तोड़ते हुए पूछा—"अर्जी के साथ-साथ और कौन-कौन से क़ागज़ात भेजने चाहिए?"

वसील अपने पलँग से इस तरह उछला जैसे कोई बम फूट पड़े। नंगे पैरों झपटते हुए स्विच के पास पहुँचा; बिजली जलाई और कमरे के बीचोबीच खड़ा होकर उबल चला-

"बुरा हो तुम सबका, अब तक तुम लोग रहे कहाँ? तुम बिजली मिस्त्री हो, है न? अगर तुम आगे की पढ़ाई-लिखाई नहीं करोगे तो कौन करेगा? जब तक जवानी है लिख-पढ़ लो। बाद में किताबों में मन लगाना मुश्किल हो जायेगा! उठो, आवारा कहीं के, इतने रास्ते खुले पड़े हैं तुम्हारे सामने और तुम हो कि कुछ करने धरने के बजाय अपने गढ़े में पड़े गँधा रहे हो! उठो, अभी अर्जी लिखो! उठो, मैं कुछ कह रहा हूँ न!"

उसने झटके से पेतका का कम्बल खींच लिया, और तकिये सिर के नीचे से घसीट लिये। पेतका ने पलकें भाँजीं और अपनी खोपड़ी खुजलाई। फिर दोनों ही मेज के पास आ बैठे और पेतका के भविष्य की योजना बनने लगी। सौभाग्य से मेरी पारी उस दिन न आई।

लेकिन इस पर भी तरह-तरह के विचार मेरे दिमाग़ में चक्कर काटते रहे, और मैं सुबह तक पड़ा जागता रहा। मैंने मन ही मन कहा—"अज़ीब ही रहा न कि स्कूल की पढ़ाई खत्म की तो चारो ओर अँधेरा ही अँधेरा लगा, और कहीं आशा की एक किरन नज़र न आई। पर, इस समय मैं देख रहा हूँ और ज़िन्दगी के सारे रास्ते मेरे लिए खुले पड़े हैं! आख़िर मेरी इन आँखों में कौन सा नया जादू जग गया, और मेरे सारे के सारे व्यक्तित्व में कौन सा नया परिवर्तन हो गया? निश्चय ही ज़िन्दगी भर कंकरीट मास्टर बने रहने का मेरा कोई इरादा नहीं! अगले साल मैं निर्माण-इंस्टीट्यूट में दाखिले के लिए अर्जी दूँगा और पत्र-व्यवहार की पढ़ाई शुरू कर दूँगा। तब तक व्यावहारिक कार्य

का अनुभव मुझे काफ़ी हो जायेगा, और इम्तहान की तैयारी करने और जर्मन माँजने को जाड़े का समय मिल जायेगा।"

फिर सोचा—"मैं अपनी पाठ्य-पुस्तकें मुहैया करूँगा और एलार्म-घड़ी खरीदूँगा। साथ ही काम से न थकने की आदत डालूँगा। पाली के काम के बाद काम का दूसरा दिन शुरू होना चाहिए। शामों को अध्ययन करूँगा। नई किताबें और अखबार पढूँगा और सिनेमा देखूँगा। सुबह तड़के उठने की बान डालूँगा और छः घण्टे से अधिक न सोऊँगा!"

मन ने संकल्प किया—"पढ़ाई करनी है, और ज़रूर करनी है और, अगले कई वर्षों तक पढ़ाई का यह क्रम चलाना है!"

मेरा मन उमँगा कि मैं उसी क्षण पलँग छोड़कर उठ खड़ा होऊँ और दौड़कर कापियाँ और स्याही वगैरह खरीद लाऊँ। मेरा जी सहसा ही इन चीज़ों के लिए कलप-कलप उठा...